पुष्प क्रमांक-1

दिगम्दरत्व और दिगम्बर मुनि

प्रस्तावना :

पण्डित रतनचंद भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ एम. ए बी एड,

जयपुर (राज)

प्रकाशक :

श्री रघुवरदयाल जैन स्मृति ग्रन्थमाला

B-2/22 सोपिंग सेन्टर

सफदरजंग एनक्लेव

नई दिल्ली 110 029

संस्करण 1000
१ नवम्बर १९९१

मूल्य : स्वाध्याय

फोटोटाइपसैटिंग : प्रिन्टोमैटिक्स जयपुर

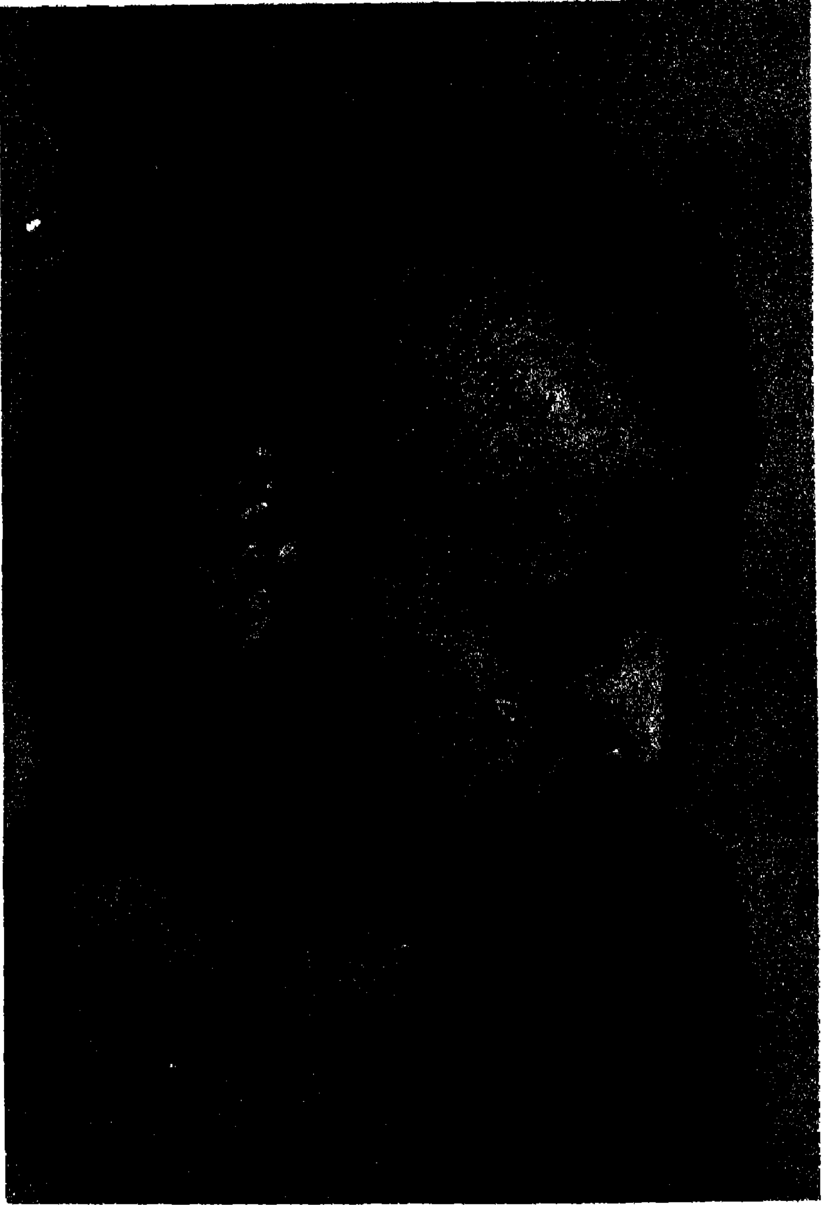
मुद्रक:
बाहुबली प्रिंटर्स
लालकोठी
जयपुर-15
फोन - 62480



समर्पण

परमपूज्य 108 सन्त शिरोमणि
आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के
कर-कमलों में
सादर समर्पित।

खेमचन्द जैन
एवं
- (डॉ.)सत्यप्रकाश जैन
दिल्ली



दिगम्बर जैनाचार्य १०८ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

108 आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय

जन्म	-	विक्रम सम्वत 2003 आश्विन शुक्ला पूर्णिमा
जन्म-स्थान	-	सदलगा, जि. बेलगाँव (कर्नाटक)
बाल्यावस्था का नाम	-	श्री विद्याधर
पितृ नाम	-	श्री मल्लप्पा जी (सम्प्रति मुनि श्री मल्लिसागर जी)
मातृ नाम	-	श्री श्रीमती जी (सम्प्रति आर्यिका समयमती जी)
भाई :	-	आचार्य श्री के अतिरिक्त तीन भाई श्री योगसागर जी, श्री समयसागर जी के नाम से मुनि व्रत धारण कर आत्म कल्याण में प्रवृत्त हैं।
मुनि दीक्षा	-	आषाढ़ सुदी 5 सम्वत 2025 तदनुसार 30 जून 1968 ई. अजमेर।
आचार्य श्री के गुरु	-	परम पूज्य स्वर्गीय 108 आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज।
आचार्य पद	-	मगसिर कृष्ण 2 सम्वत 2029 ई तदनुसार 29 नवम्बर 1972 ई नसीराबाद (उ.प्र.) में प्राप्त
भाषाओं तथा विद्याओं में वैदुष्य:	-	संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मराठी, हिन्दी, अंग्रेजी एवं कन्नड़

श्रीगुरु हैं उपगारी ऐसे.....

श्रीगुरु हैं उपगारी ऐसे, वीतराग गुनधारी वे ।।टेक।।
स्वानुभूति रमनी संग क्रीड़ें, ज्ञान सम्पदा भारी वे ।।१।।
ध्यान पिंजरा में जिन रोको, चित खग चंचलचारी वे ।।२।।
तिनके चरन सरोरुह ध्यावै, 'भागचन्द' अघटारी वे ।।३।।

प्रकाशकीय

मेरे पूज्य पिता स्व. श्री रघुवरदयालजी जैन के जीवन पर उनके दादा स्व श्री बलदेवप्रसाद जी, पिता स्व. श्री श्रीपाल जी एव स्व माता सूखादेवी के धार्मिक सस्कारों का विशेष प्रभाव था।

मेरे पिता के दादा श्री एवं पिता श्री की दोनों पीढियाँ धार्मिक-भावनाओं से ओत-प्रोत थी ही, उनका धर्माचरण भी अनुकरणीय था। वे धर्म के प्रति समर्पित थे।

मेरे पिताश्री पर उन्हीं के धार्मिक संस्कारों का अप्रतिम प्रभाव था फलस्वरूप उनका सम्पूर्ण जीवन धर्ममय रहा आप मूलत भिण्ड निवासी हैं और भिण्ड के मुमुक्षुमंडल स्थापित करने का अधिकाश श्रेय आपको ही जाता है। आप वर्षों तक प्रतिवर्ष, वर्ष में दो-तीन बार गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों का लाभ लेने के लिए सोनगढ गये।

भिण्ड में 105 क्षु. मनोहरलालजी वर्णी के द्वारा चातुर्मास करने से उनके सानिध्य का पूरा-पूरा लाभ भी पिता श्री ने लिया तथा उनके आध्यात्मिक प्रवचनों से प्रभावित होकर कई चातुर्मास उन्होंने भी वर्णी जी के कराये।

पू. पिताश्री सम्वत् 1976 में कुण्डलपुर में पूज्य गुरुवर 108 आचार्य विद्यासागर जी महाराज के सम्पर्क में आये। उस समय आचार्य श्री एकदम नवयुवक होते हुए भी ज्ञान व वैराग्य की दृष्टि से वर्तमान सभी मुनिराजों में अग्रगण्य हो गये थे। पिताश्री उनके इस अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व से बहुत ही प्रभावित हुए और समय-समय पर उनके सानिध्य का लाभ भी वे लेते रहे।

आप का चित्त उदारता से ओत-प्रोत था, समय-समय पर सभी क्षेत्रों मे यथाशक्ति दान देने के साथ-साथ अतिशय क्षेत्र आहार जी, पपौरा जी एव भिण्ड मे भी आपने जिनालयों का निर्माण कराया एव कई बार सम्पूर्ण भारत के तीर्थ स्थानों की यात्रा की। जो कुछ भी यत्किंचित धार्मिक सस्कार मुझ में और मेरे अग्रज आदरणीय श्री खेमचन्द्र जी जैन में दिखाई देते हैं वे भी उन्ही के धार्मिक सस्कारों का प्रभाव है। उन्ही की पावन प्रेरणा से मैं पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर महाराज से जुड़ा हू।

यद्यपि लौकिक शिक्षा के लिए होस्टल में रहने तथा डाक्टर का व्यवसाय होने के कारण मेरे कदम डगमगा गये, मेरा प्रारम्भिक जीवन सदाचार की दृष्टि से अच्छा नहीं रह सका। आधुनिक वातावरण के प्रभाव से मैं थोडा सा भटक गया। बाजारू खान-पान के साथ सिगरेट और सुरापान जैसी खोटी आदतें भी मुझ में घर कर गई थीं। पर पूज्य आचार्य विद्यासागरजी के सम्पर्क में आने से उनके निमित्त से अब मैं सभी दुर्व्यसनों से सम्पूर्ण तया मुक्त हूं। और समय से पूर्व ही सेवा निवृत होकर अपने शेष जीवन को मैने अध्यात्म के लिए समर्पित कर दिया हैं इसका सम्पूर्ण श्रेय पूज्य आचार्य श्री को ही जाता है। अत मैं उनके इस ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता।

एतदर्थ मैं उनका जितना उपकार मानूं थोड़ा है। सभी साधर्मी प्रस्तुत ग्रन्थ से दिगम्बरत्व व दिगम्बर मुनि का यथार्थ स्वरूप समझकर अपना कल्याण करें यही मेरी भावना है।

पिता श्री की स्मृति में इस ग्रन्थमाला का शुभारंभ किया है। इसके द्वारा मैं जिनवाणी की सेवा करता रहूँ ऐसी मेरी भावना है-

- डॉ. सत्यप्रकाश जैन
(निवासी भिण्ड प्रवासी देहली)
प्रकाशक · श्री रघुवरदयाल स्मृति ग्रन्थमाला
दिल्ली

धन-धन जैनी साधु अबाधित.....

धन-धन जैनी साधु अबाधित, तत्त्वज्ञान विलासी हो ।।टेक।
दर्शन-बोधमयी निजमूरति, जिनको अपनी भासी हो ।
त्यागी 'अन्य समस्त वस्तु में, अहंबुद्धि दुःखदासी हो ।।१।।
जिन अशुभोपयोग की परणति, सत्तासहित विनाशी हो ।
होय कदाच शुभोपयोग तो, तहं भी रहत उदासी हो ।।२।।
छेदत जे अनादि दुःखदायक, दुर्विधि बन्ध की फाँसी हो ।
मोह-क्षोभ-रहित जिन परणति, विमल मयंक कला-सी हो ।।३।।
विषय-चाह-दव-दाह खुजावन, साम्य सुधारस-रासी हो ।
'भागचन्द' ज्ञानानन्दी पद, साधत सदा हुलासी हो ।।४।।

अन्तर्भावना

अनेक झंझावतों के बीच एक टिमटिमाते छोटे से दीपक की भावना हुई, उसके मन में भाव जगा - "जितनी भी मेरी प्रगट सामर्थ्य थी, मैंने अपने मंदमंद प्रकाश से स्वपर का मार्गदर्शन किया, अपना उत्तरदायित्व निभाया। मैं स्वयं जलकर अपना एवं अपने आसपास के अंधकार को दूर करने का प्रयास करता रहा।

अब मेरी जीवन ज्योति बुझ रही है। मैं चाहता हूं कि मेरी बुझने से पहले दूसरा दीपक जलने लगे और इसी तरह दीपक से दीपक जलता रहे। प्रत्येक दीपक अपना प्रकाश पुंज छोड़ कर ही जावे। मेरे पीछे भी धर्म के संस्कारों की ज्योति जलती रहे, प्रकाश फैलता रहे।

जब एक सामान्य सा जड़ दीपक भी स्वयं अंधकार खोकर दूसरों को प्रकाश देता है तो जीव तो ऐसा ज्ञान का दीपक है, जिसका स्वभाव ही मिथ्यात्व व अज्ञान को नष्ट करना एवं ज्ञान देना है। स्वपर का प्रकाशन करना है। पर मेरे पीछे ऐसे ज्ञायक स्वभाव का सहारा लेगा कौन ? यह काम करेगा कौन ? उस दीपक के सामने यह एक समस्या थी, एक प्रश्न था।

इस प्रश्न के उत्तर में उसी दीपक के अंतर से आवाज आई -"भले ही मैं जा रहा हूँ, पर मैं अपने पीछे अपने "सत्यप्रकाश" को जो छोड़े जा रहा हूं। वह शुद्धात्म के सहारे से अवश्य ही धर्म का प्रकाश करके मेरा स्वप्न साकार करेगा, मेरा अधूरा काम पूरा करेगा।

संभवतः उस दीपक का वह आत्मविश्वास सच ही था। यदि दीपक से उत्पन्न हुआ प्रकाश ही दीपक की भावना पूरी नहीं करेगा तो और कौन करेगा ? मुझे विश्वास है कि मेरा प्रकाश भी इसमें अपना परम सौभाग्य समझेगा और उसे समझना भी चाहिए। प्रकाश का तो काम ही अंधकार दूर करना है। इसके सिवाय सत्यप्रकाश का और काम ही क्या है ?

दीपक की प्रेरणा से प्रकाश ने अपने कर्तव्य को पहचाना, इससे दीपक का आत्मा तो संतुष्ट हुआ ही प्रकाश - सत्यप्रकाश भी धन्य हो गया।

वह ज्ञानदीप और कोई नहीं मेरे पूज्य पिता रघुवरदयाल जैन ही थे, जिन्होंने मुझ (सत्यप्रकाश) जैसे पुत्र पर ऐसा आत्मविश्वास प्रगट किया। जैसा उन्होंने मेरा नामकरण किया था, वैसा ही सत्यप्रकाश बनने की सदाप्रेरणा भी दी। पर जब तक काललब्धि व होनहार नहीं आती तब तक न तो अनुकूल निमित्त ही मिलते हैं और न वैसा उद्यम ही होता है। कहा भी है --

तादृशी जायते बुद्धि, व्यवसायोऽपि तादृशः।
सहायाः तादृशः सन्ति, यादृशी भवितव्यता।।"

बस यही कारण था कि मैं अपने जीवन के प्रारंभ में कुछ समय के लिए रास्ता भटक गया। मेरे पिताश्री इससे निराश नहीं हुए और उन्होंने मुझे परमपूज्य आचार्य विद्यासागर

जैसे विषय के सागर में गोता लगाने की प्रेरणा दी।

इस समय तक मेरी भाग्य रेखायें बदल चुकी थीं। आचार्य श्री उस समय कुण्डलपुर में विराजमान थे। पिताश्री की प्रेरणा से मैं वहाँ गया। वहाँ आचार्य श्री के प्रवचनों से मेरे जीवन की दिशा ही बदल गई। सचमुच मेरे आत्मा की शल्यक्रिया ही हो गई। मैं जो अनेक कुर्व्यसनों से आकंठ निमग्न हो गया था, वहाँ से निर्व्यसनी होकर लौटा। मेरे कदम अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ने लगे।

अब तक मेरा नाम जो केवल नाममात्र सत्यप्रकाश था, अब मुझे ऐसा लगने लगा कि मैं शीघ्र ही अपने इस नाम को सार्थक कर लूंगा।

तभी पूज्य आचार्यश्री के प्रति मेरी श्रद्धा हो गई। जिसके निमित्त से जिसका जीवन बदलता है, सही दिशा मिलती है, उसके अनन्य उपकार को जीवन में कभी भुलाया नहीं जा सकता, भूलना भी नहीं चाहिए। उनके द्वारा रचित छन्द द्वारा ही मैं उनसे यह प्रार्थना करता रहता हूँ कि -

अधीर हूँ मुझे धीर दो, सहन करूँ सब पीर।
चीर चीर कर चिर लिखूँ अन्तर की तस्वीर।
आचार्यश्री ने भी मानों मेरे लिए ही यह पद्य लिखा --
तन मिला तो तप करो, करो कर्म का नाश।
रवि शशि से भी अधिक हो, तुम में दिव्यप्रकाश।"

यद्यपि आचार्य श्री का यह संदेश उत्तम है पर मुझे ऐसा लगता है कि बाह्य में शारीरिक स्वास्थ्य की प्रतिकूलता के कारण एवं अन्तर में वर्तमान पुरुषार्थ की कमी के कारण इस जन्म में तो मेरी इस भावना की पूर्ति संभव नहीं है, पर मैं भावना भाता हूँ कि अगले जन्मों में शीघ्र ही मुझे यह शक्ति व योग्यता प्राप्त हो, ताकि मैं तत्वज्ञान पूर्वक दिगम्बरत्व को अंगीकार करके आत्मा की पूर्ण साधना कर सकूं। मैं एक बार पुनः आचार्य श्री को नमन करता हुआ अपनी बात से विराम लेता हूँ।

-- सत्यप्रकाश जैन

प्रस्तावना

पण्डित रतनचंद भारिल्ल, जयपुर

दिगम्बर मुनि पाँचों इन्द्रियो के विषयों से विरक्त, अतीन्द्रिय आनन्द स्वरूप आत्मा में अनुरक्त, सभी प्रकार के आरंभ व परिग्रह से रहित निरन्तर ज्ञान ध्यान एवं तप में निमग्न रहते हैं।

दिगम्बर मुनियों के हृदय में सब जीवों के प्रति पूर्ण समता भाव होता है। उनकी दृष्टि में शत्रु-मित्र, महल-मशाल कंचन-काँच, निन्दा-प्रशंसा आदि में [illegible] अन्तर नहीं होता। वे पदपूजक और अस्त्र-शस्त्र प्रहारक में सदा [illegible] भाव धारण करते हैं।

दिगम्बर मुनि पूर्ण स्वावलम्बी और स्वाभिमानी होते है। उन्हें किंचित् भी पराधीनता स्वीकार नहीं हैं। जब अर्द्धरात्रि में सारा जगत मोह की नींद मे [illegible] विषयवासनाओं मे मग्न होकर मुक्ति के निष्कटक पथ मे [illegible] होता है, तब दिगम्बर मुनि अनित्य-अशरण आदि बारह [illegible] से संसार, शरीर व भोगों की असारता का एव [illegible] स्वरूप का चिन्तनमनन करते हुए आत्मध्यान में मगन रहने का पुरुषार्थ करते रहते हैं। काम-क्रोध-मद-मोह आदि विकारो पर विजय प्राप्त करते हुए अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त करते रहते हैं।

वे नवजात शिशुवत् अत्यन्त निर्विकारी होने से नग्न ही रहते हैं। उन्हें वस्त्र धारण करने का विकल्प ही नहीं आता अतः लज्जा ही अनुभव नहीं होती। जिस तरह काम वासना से रहित बालक माँ बहिन के समक्ष लजाता नहीं है, शरमाता नहीं है एव सकोच भी नही करता ठीक इसी तरह मुनि भी पूर्ण निर्विकारी होने के कारण लज्जित नहीं होते

छटवें सातवें गुणस्थान की भूमिका में वस्त्र ग्रहण करने का मन में विकल्प ही नहीं आता। सज्वलन क्रोध मान माया लोभ के सिवाय अनन्तानुबन्धी आदि तीनों कषायों की चौकडी का अभाव हो जाने से उन के पूर्ण निर्ग्रन्थ दशा प्रकट हो गई है। इस तरह जब उनके मन में ही, आत्मा में ही कोई ग्रन्थि (गांठ) नहीं रही तो तन पर वस्त्र की गाठ कैसे लग सकती है?

वैसे सवस्त्र व निर्वस्त्र के पक्ष-विपक्ष में अनेकों तर्क दिये जा सकते है, उनके लाभ अलाभ गिनाये जा सकते है। पर वे सब कुतर्क होंगे, क्योंकि वस्तु का स्वरुप में कोई तर्क नहीं चलता। वस्तु का स्वरुप तो तर्क वितर्क से परे है। अग्नि गर्म व पानी ठंडा क्यों है ? नारी के मूछें व मोरनी के पंख क्यों नहीं होते ? इसके पीछे तर्क खोजने की जरुरत नहीं है। हॉं, वैज्ञानिक व मनोवैज्ञानिक कारणों की खोज अवश्य की जा सकती है, पर वस्तुस्वरूप में तर्क-वितर्कों की कतई आवश्यकता नहीं है। लौकिक दृष्टि से भी साधुओं को सामाजिक सीमाओं में नहीं घेरा जा सकता है, क्योंकि वे लोकव्यवहार से अतीत हो चुके है व्यवहारातीत हो चुके है। वे तो वनवासी सिंह की तरह पूर्ण स्वतंत्र स्वावलम्बी और अत्यन्त निर्भय होते है। इसी कारण वे मुख्यतया बनवासी ही होते हैं।

यदि कोई पवित्रभाव से दिगम्बर जैन मुनियों के नग्न होने के कारणों को खोजना करना चाहे, मीमासा करना चाहे तो जान सकता है, एतदर्थ निम्नांकित बिन्दु द्रष्टव्य है -

नग्नता निर्दोषता, निर्भयता, निशकता, निर्पेक्षता, निर्विकारता, निश्चिन्तता निर्लोभिता की सूचक है। अर्थात् वे निर्दोष हैं निर्भय हैं निशक है, निर्पेक्ष है, निर्विकार हैं, निश्चिन्त है, निर्लोभी हैं-अत नग्न है। तथा पूर्ण स्वाधीन है, संयमी है, सहिष्णु है, अत नग्न है।

वस्त्र विकार के प्रतीक है, पराधीनता के कारण है, भय, चिन्ता तथा आकुलता उत्पन्न कराने में एवं ममता, मोह बढाने में निमित्त है-अत. मुनि नग्न ही रहते हैं।

2-3 वर्ष के छोटे बालकों में काम विकार नही होता तो उसे नग्न रहने में लज्जा नही आती, उसी प्रकार मुनियों को व उन्हें देखने वालो को भी लजजा नही आती-अत: मुनि नग्न ही रहते हैं।

जो इन्द्रियों को जीतता है, वही जितेन्द्रिय है। मुनियों ने इन्द्रियों को जीत लिया है-अत वे जितेन्द्रिय है। नग्नता जितेन्द्रियता की सूचक है।

जिसे अखण्ड आत्मा को प्राप्त करना हो उसे अखड स्पर्शन इन्द्रियको जीत ही लेना चाहिए। अखण्ड आत्मा का अभिलाषी अखण्ड इन्द्रिय को जीतता है। नग्नता स्पर्शन इन्द्रिय की जीत की पहचान है। जिस तरह शरीर में लगी छोटी सी फांस भी उस हृयवेदना का कारण बनती है, उसी तरह एक वस्त्र का भी परिग्रह असीम दु ख का कारण है ओर जब दिगम्बर मुनि को

जितेन्द्रिय होने से वस्त्रादि की आवश्यकता का अनुभव ही नहीं होता तो वह वस्त्रादि परिग्रह रखकर अनावश्यक दुःख को आमंत्रण ही क्यों देगा ?

जब व्यक्ति को एक वस्त्र की झंझट छूट जाने से हजारों अन्य झंझटों से सहज ही मुक्ति मिल जाती हो, तो वह बिना वजह वस्त्र का बोझा ढोये ही क्यों ? एक लगोटी के स्वीकार करते ही पूरा का पूरा परिग्रह माथे मढ़ जाता है।

उदाहरणार्थ-लगोटी धारी साधु को दूसरे ही दिन लंगोटी बदलने के लिए दूसरी लंगोटी चाहिए, फिर उसे धोने के लिए पानीसाबुन, रखरखाव के लिए पेटी, पानी के लिए बर्तन, बर्तन के लिए घर, घर के लिए घरवाली, घरवाली के भरण-पोषण केलिए धंधा-व्यापार कहाँ तक अन्त आयेगा इसका ? पूजन की पंक्ति में ठीक ही कहा है -

"फांस तनक सी तन में साले, चाह लंगोटी की दुःख भाले"

सवस्त्र साधू पूर्ण अहिंसक, .निर्मोही और अपरिग्रही रह ही नहीं सकता। अयाचक, स्वाधीन व स्वावलंवी भी नही रह सकता। वह लज्जा परीषहजयी भी नहीं हो सकता, क्योंकि वस्त्र के प्रति अनुराग एवं ममता बिना वस्त्र का शरीर पर बहुत काल तक रहना एवं उसे बदलना सभंव नहीं है और राग एवं ममत्व ही तो भावहिंसा, मोह और परिग्रह के लक्षण हैं।

अन्नपान (भोजन) के पक्ष में भी कदाचित कोई यही तर्क दे सकता है, पर आहार लेना अशक्यानुष्ठान है। आहार के बिना तो जीवन ही सभव ही नहीं है पर वस्त्र के साथ यह समस्या नही है।

दूसरे भोजन यदि स्वाभिमान के साथ निर्दोष व निरन्तराय न मिले तो छोड़ा भी जा सकता हे, छोड़ भी दिया जाता हे, पर वस्त्र के साथ ऐसा होना संभव नहीं है। उसे तो हर हालत में धारण करना, बदलना ही होगा एवं रख रखाव की व्यवस्था भी करनी ही होगी। अत वस्त्र धारण करने में दीनता-हीनता एवं पराधीनता की संभावना अधिक है।

दिगम्बरत्व मुनिराज का भेष या ड्रेस नहीं है, जिसे मानमाने ढंग से बदला जा सके। वह तो उसका स्वाभिवक रुप है, स्वरूप है। अपने मन को इसकी स्वाभाविकता स्वीकृत है, एतदर्थ एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक आर्कमिडीज की उस घटना का स्मरण किया जा सकता है, जिसमें वह सारे नगर में नंगा

घूमा था। उसके बारे में कहा जाता है कि-वह एक वैज्ञानिक सूत्र की खोज में बहुत दिनों से परेशान था। दिनरात उसी के सोच विचार में डूबा रहता था। एक दिन बाथरूम में नग्न होकर स्नान कर रहा था कि अचानक उसे उस अन्वेषणीय सूत्र का समाधान मिल गया, जिससे उसके हर्ष का ठिकाना न रहा। वह भावविभोर हो स्नान घर से वैसा नंगा ही निकलकर नगर के बीच से गुजरता हुआ दौड़ता-दौड़ता राजा के पास जा पहुँचा। उसे नग्न देखकर राजा को आश्चर्य हो रहा था और हंसी भी आ रही थी। पर उसके लिए वह अस्वाभाविक नहीं था। ऐसी धुन के बिना कोई भी शोध-खोज सम्भव नहीं है। चाहे वह ज्ञान-विज्ञान की हो या सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा की हो।

आर्कमिडीज भी अपने धुन का धुनिया था। राजा क्या कह रहा है, क्या कर रहा है, इसकी परवाह किए बिना वह तो अपनी ही कहे जा रहा था। अपनी उपलब्धि के गीत गाये जा रहा था। अपनी नग्नता पर उसका ध्यान ही नहीं था, दिगम्बरमुनि भी एकसे ही अपने आत्मा की शोध-खोज में इतने मग्न रहते हैं कि उन्हें कपड़े की ग्रंथी लगाने की न तो आवश्यकता होती है, ना शुध होती है और ना ही फुरसत। अतः वे पूर्ण निग्रन्थ ही रहते हैं।

दिगम्बरत्व की स्वाभाविकता, सहजता और निर्विकारता के साथ उसकी अनिवार्यता से अपरिचित कतिपय महानुभवो को मुनि की नग्नता में असभ्यता और असामाजिकता दृष्टिगोचर होती है। अत ऐसे लोग नग्नता से नाक भौं सिकोड़ते रहते हैं, घृणा का भाव भी व्यक्त करते रहते हैं, पर उन्हें नग्नता को निर्विकारता की दृष्टिकोण से देखना चाहिए।

हाँ, केवल तन से नग्न होने का नाम दिगम्बनत्व नहीं है, रागद्वेष व कामादि विकारों से रहित होने के साथ नग्न होना ही सच्चा दिगतम्बरत्व है। ऐसी नगनता अपने में कभी अशिष्टता नहीं हो सकती, लज्जाजनक नहीं हो सकती। निर्विकारी हुए बिना नग्नता निश्चित ही निंदनीय है। नग्नता के साथ निर्विकार होना अनिवार्य है।

हिन्दु धर्म के प्रसिद्ध पौराणिक पुरुष शुक्राचार्य के कथानक से यह बात अत्यन्त स्पष्ट है कि तन से नग्नता के साथ मन का निर्विकारी होना कितना आवश्यक है, अन्यथा जो नग्नता पूज्य है वही निंद्य भी हो जाती है। कहा जाता है कि--शुक्राचार्य युवा थे, पर शिशुवत निर्विकारी थे। अतः सहजभाव से नग्न रहते थे। एक दिन वे एक तालाब के किनारे जा रहे थे, वहाँ

देवकन्यायें निर्वस्त्र होकर स्नान व जलक्रीडा कर रही थी, शुक्राचार्य को देखकर वैसे ही स्नान करती रही, जरा भी नहीं लजाई वे एक दूसरे की नग्नता से जरा भी प्रभावित नहीं हुए।

थोडी देर बाद उन्हीं के वयोवृद्ध पिता वहां से निकले उन्हें देखते ही सभी देव कन्यायें लजा गई वे न केवल लजाई बल्कि क्षुब्ध भी हो गई। जलक्रिड़ा को जलाजंलि देकर हड-बड़ में निकली और सबने अपने-अपने वस्त्र पहन लिए और लज्जा से अपनी सब सुध-बुध खो बैठीं।

एक नंगे युवा को देखकर तो लजाई नही और एक वृद्ध व्यक्ति को देखकर लजा गई, जरा सोचिए इसका क्या कारण हो सकता है ?

बस यही न कि तन से नंगा युवक मन से भी नगा था, निर्विकारी था और उसके पिता अभी मन से पूर्ण निर्विकारी नही हो सके थे यह बात नारियों के निगाह से छिपी नहीं रहीं। रह भी नहीं सकती। कोई कितना भी छिपाये, विकार तो सिरपर चढ़कर बोलता है। "मुखाकृति कह देत है, मैंले मन की बात।"

नग्नता से नफरत करने का अर्थ है कि हमें अपना निर्विकारी होना पसद नही है। पापी रहना एवं उसे वस्त्रों से छुपाये रहना ही पसद है। शरीर में हरे भरे घावों को खुला रखना भी तो मौत को आमत्रण देना है, अत यदि मन में विकार के घाव हैं तो तन को वस्त्र से ढकना भी अनिवार्य है।

जिनभावना के बिना अर्थात् निर्विकारी हुए बिना मात्र नग्नता तो कलक ही है। अत. तन की नग्नता के साथ मन की नग्नता अनिवार्य है। इसीलिए तो कहा है कि "सम्यग्ज्ञानी होय, बहुरि दृढ़चारित्र लीजै"

बिना आत्मज्ञान के भी कभी-कभी व्यक्ति मुनि व्रत अगीकार कर लेता है, जिससे कोई लाभ नहीं होता। आचार्य कुदकुद भाव पाहुड की गाथा 68 में स्वयं लिखते है.-

णग्गो पावह दु:खं णग्गो संसार सागरे भभइ।
णग्गो न लहहि बोहि जिणभावण वज्जिओ सुइरं।।

जिन भावना से रहित केवल तन नग्न व्यक्ति दु ख पाता है, वह ससार सागर में ही गोते खाता है, उसे बोधि की प्राप्ति नहीं होती। अत तन से नग्न होने के पहले मन से नग्न अर्थात् निर्विकारी होना आवश्यक है।

जिनागम के सिवाय अन्य जैनेतर शास्त्रों एवं पुराणों में भी दिगम्बर मुनियों के उल्लेख मिलते है जो इस प्रकार हैं.-

रामायण में दिगम्बर मुनियों की चर्चा है--सर्ग 14 के 22वें श्लोक में राजा दशरथ जैन श्रमणों को आहार देते बताये गये है भूषण टीका में श्रमग का अर्थ स्पष्ट दिगम्बर मुनियों का उल्लेख मिलता है।

हिन्दु धर्म के प्रसिद्ध पुराण श्रीमद्भभागवत और विष्णु पुराण में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का ही दिगम्बर मुनि के रुप में उल्लेख मिलता है। इसी तरह वायुपुराण एवं स्कंध पुराण में भी दिगम्बर जैन मुनियों का अस्तिन्व दर्शाया गया है।

बौद्धशास्त्रों में भी ऐसे उल्लेख मिलते हैं जो भगवान महावीर से पहले दिगम्बर मुनियों को होना सिद्ध करते हैं।

ईसाई धर्म में भी दिगम्बरत्व को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि आदम और हव्वा नंगे रहते हुए कभी नहीं लजाये और न वे विकार के चंगुल में फंसकर अपने सदाचार से हाथ धो बैठे। परन्तु जब इन्होंने पापपुण्य का वर्जित (निषिद्ध) फल खा लिया तो वे अपनी प्राकृत दशा खो बैठे और संसार के साधारण प्राणी हो गये।

इसप्रकार हम देखते हैं कि इतिहास एवं इतिहासातीत श्रमण एवं वैष्णव साहित्य के आलोक में उपर्युक्त तथ्यों को उजागरकरने वाली "दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि" नामक प्रस्तुत पुस्तक में अपने नाम के अनुरूप ही विषयवस्तु का प्रतिपादन किया गया है। विद्वान लेखक ने मुख्यत इतिहास (ईसा पूर्व आठवी सदी) और इतिहासातीत (वेदों पुराणों में उल्लिखित भगवान ऋषभदेव का काल-एक अज्ञान अतीत) के आलोके में, दिगम्बरत्व और दिगम्बरमुनि का अस्तित्व और औचित्य सिद्ध किया है।

लेखक ने अनादिकाल से चली आ रही दिगम्बरत्व की पुन:स्थापना के लिए उसकी उपयोगिता, एवं अनिवार्य आवश्यकता की सिद्धि नें न केवल श्रमण संस्कृति को आधार बनाया, बल्कि वैष्णव, शैव, इस्लाम ईसाई, यहूदी आदि सभी भारतीय एव भारतेतर धर्म, दर्शनों एवं दार्शनिकों के चिंतन के आधार पर दिगम्बरत्व की अनिवार्य आवश्यकता पर भी प्रकाश डाला है। और यत्रंतत्रं उल्लिखित प्रमाणों के आधार पर आत्मा की साधना एव मुक्ति की प्राप्ति में दिगम्बरत्व को ही परम उत्कृष्ट साधन सिद्ध किया है। यहाँ तक कहा गया है कि दिगम्बर मुनि हुए बिना मोक्ष की साधना, एवं कैवल्यप्राप्ति संभव ही नही है।

लगभग पचास वर्ष पहले किसी प्रान्त विशेष में ऐसी परम पवित्र नग्नता के आधार पर दिगम्बरमुनियों के विहार करने पर प्रश्नचिन्ह लगाने का असफल प्रयास किया गया था, उनकी नग्नता पर कुतर्क किए गये थे, उसी के परिणामस्वरूप इस शोध-खोजपूर्ण पुस्तक का उद्‌भव हुआ था।

आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। इस उक्ति के अनुसार इस अति उपयोगी पुस्तक का अविष्कार हो गया। पुस्तक निःसंदेह दिगम्बरत्व की सुरक्षा और उसमें आस्था उत्पन्न कराने के लिए वे जोड बन गई है। इसके रहते कोई व्यक्ति दिगम्बरत्व पर कभी भी किसी प्रकार की आशंका व्यक्त नहीं कर सकता।

इस दृष्टि से इस पुसतक का अपना अलग ही महत्व है। दिगम्बरत्व की पुनःस्थापना के क्षेत्र में इसका जो अमूल्य योगदान है, उसकी कोई मिसाल नहीं हो सकती।

इस प्रयोजन से ऐसी पुस्तकों के प्रचार-प्रसार की भी जरुरत है। इससे किन्हीं-किन्हीं जैनेतरों के मन में दिगम्बर मुनिराजों एव मूर्तियों की नग्नता के प्रति जो लज्जा का भाव है, वह तो निकलेगा ही दिगम्बरत्व के प्रति आस्था भी उत्पन्न होगी। तथा जिसे अपनी अज्ञानता से नग्नता में निर्लज्जता दिखाई देती होगी, उसका वह भ्रम भी भंग हो जायेगा।

डॉ सत्यप्रकाश जैन ने अपने पिताश्री की पुणयस्मृति में स्थापित "श्री रघुवरदयाल स्मृति ग्रंथमाला" का शुभारंभ इस पुस्तक के प्रकाशन से आरभ किया है, यह उनकी दिगम्बरत्व के प्रचार-प्रसार में उनकी रुचि एवं सद्‌भावना को भी प्रदर्शित करती है।

यद्यपि डॉ. जैन से मेरा बहुत पुराना परिचय नही है, पर जब से उनसे मेरी भेंट हुई, मैं उनके कई सद्‌गुणों से प्रभावित हुआ हूँ। एक तो वे अत्यन्त स्पष्टवादी हैं, दूसरी उनका जीवनखुली किताब की तरह है, जिसमें कोई दुरावछिपाव नहीं है। धर्म व धर्मात्माओं के प्रति उनका पूर्ण समपर्ण है। देव-शास्त्र-गुरु के प्रति उनमें श्रद्धाभक्ति तो है ही, सत्य तत्व का समझने की भी उनमें भारी जिज्ञासा है। इसमें उनके पिताश्री द्वारा दिये गये संस्कारों एवं प्रेरणा का ही सर्वाधिक योगदान है।

दिगम्बर जैन समाज इस कृति के लेखक का तो ऋणी रहेगा ही, साथ ही प्रकाशक संस्था भी अनेकश. धन्यवाद का पात्र है इति। शुभ।

पण्डित रतनचंद भारिल्ल



स्व० रघुवर दयाल जी जैन
जन्म स्थान : ग्राम रानीपुरा, जिला- भिण्ड , (म. प्र)
जन्म तिथि : अगहन सुदी पचमी, स. १६७१
पुण्य तिथि : कार्तिक वदी १२, सं. २०४६, तदनुसार, २६ अक्टूबर १६८६

नमः सिद्धेभ्यः ।

दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि

[1]

दिगम्बरत्व !

(मनुष्य की आदर्श स्थिति)

"मनुष्य मात्र की आदर्श स्थिति दिगम्बर ही है। आदर्श मनुष्य सर्वथा निर्दोष - विकारशून्य होता है।"

--- म. गांधी।

"प्रकृति की पुकार पर जो लोग ध्यान नहीं देते, उन्हें तरह-तरह के रोग और दु.ख घेर लेते हैं; परन्तु पवित्र प्राकृतिक जीवन बिताने वाले जंगल के प्राणी रोगमुक्त रहते हैं और मनुष्य के दुर्गुणों और पापाचारों से बचे रहते हैं।"

-- रिटर्न टु नेचर।

दिगम्बरत्व प्रकृति का रूप है। वह प्रकृति का दिया हुआ मनुष्य का वेष है। आदम और हव्वा इसी रूप में रहे थे। दिशायें ही उनके अम्बर थे-वस्त्र विन्यास उनका वही प्रकृतिदत्त नग्नत्व था। वह प्रकृति के अंचल में सुख की नींद सोते और आनन्द रेलियां करते थे। इसलिये कहते हैं कि मनुष्य की आदर्श स्थिति दिगम्बर है। नग्न रहना ही उसके लिए श्रेष्ठ है। इसमें उसके लिये अशिष्ता और असभ्यता की कोई बात नहीं है, क्योंकि दिगम्बरत्व अथवा नग्नत्व स्वयं अशिष्ट अथवा असभ्य वस्तु नहीं है। वह तो मनुष्य का प्राकृत रूप है ईसाई मतानुसार आदम और हव्वा नगे रहते हुये कभी न लजाये और न वे विकार के चंगुल में फंसकर अपने सदाचार से हाथ धो बैठे। किन्तु जब उन्होंने बुराई-भलाई, पाप पुण्य का वर्जित फल खा लिया, वे अपनी प्राकृत दशा को खो बैठे-सरलता उनकी जाती रही। वे संसार के साधारण प्राणी हो गये, बच्चे को लीजिये, उसे कभी भी अपने नग्नत्व के कारण लज्जा का अनुभव नहीं होता और न उसके माता-पिता अथवा अन्य लोग ही उसकी नग्नता पर नाक भों सिकोड़ते हैं। अशक्त रोगी की परिचर्या स्त्री धाय करती है - वह रोगी अपने कपड़ों की सर सभाल स्वय नहीं कर पाता, किन्तु स्त्री धाय रोगी की सब सेवा करते हुए जरा भी अशिष्टता अथवा लज्जा अनुभव नहीं करती। यह कुछ उदाहरण हैं जो इस बात को स्पष्ट करते है कि नग्नत्व वस्तुत कोई बुरी चीज नहीं है। प्रकृति भला कभी किसी जमाने में बुरी हुई भी है ? तो फिर मनुष्य नगेपन से क्यों झिझकता है ? क्यों आज लोग नगा रहना समाज मर्यादा के

लिये अशिष्ट और घातक समझते हैं ? इन प्रश्नों का एक सीधा सा उत्तर है--"मनुष्य का नैतिक पतन चरम सीमा को आज पहुंच चुका है - वह पाप में इतना सना हुआ है कि उसे मनुष्य की आदर्श-स्थिति दिगम्बरत्व पर घृणा आती है। अपनेपन को गवाकर पाप के पर्दे में कपड़ों का ओढ़ लेना ही उसने श्रेष्ठ समझा है।" किन्तु वह भूलता है, पर्दा पाप की जड़ है-वह गंदगी का ढेर है। बस, जो जरा भी समझ-विवेक-से काम लेना जानता है, वह गंदगी को अपना नहीं सकता और न वह अपनी आदर्श स्थिति दिगम्बरत्व से चिढ़ सकता है।

वस्त्रों का परिधान मनुष्य के लिये लाभदायक नहीं है और न वह आवश्यक ही है। प्रकृति ने प्राणीमात्र के शरीर का गठन इस प्रकार की है कि यदि वह प्राकृत वेष में रहे तो उसका स्वास्थ्य निरोग और श्रेष्ठ हो तथा उसका सदाचार भी उत्कृष्ट रहे। जिन विद्वानों ने उन भील आदिकों को अध्ययन की दृष्टि से देखा है, जो नंगे रहते हैं, वे इसी परिणाम पर पहुचे हैं कि उन प्राकृत वेष में रहने वाले "जगली" लोगों का स्वास्थ्य शहरों में बसने वाले सभ्यताभिमानी "सज्जनों" से लाख दर्जा अच्छा होता है और आचार-विचार में भी वे शहरवालों से बढ़े-चढ़े होते हैं। इस कारण वे एक वस्त्र परिधान की प्रधानता-युक्त सभ्यता को उच्च कोटि पर पहुचते स्वीकार नहीं करते।[1] उनका यह कथन है भी ठीक, क्योंकि प्रकृति की होड़ कृत्रिमता नहीं कर सकती। म गाँधी के निम्न शब्द भी इस विषय में द्रष्टव्य हैं -

"वास्तव में देखा जाय तो कुदरतने चर्म के रूप मे मनुष्य को योग्य पोशाक पहनाई है। नग्न शरीर कुरूप देख पड़ता है, ऐसा मानना हमारा भ्रम मात्र है। उत्तम-उत्तम सौन्दर्य के चित्र तो नग्न दशा में ही देख पड़ते हैं। पोशाक से साधारण अंगों को ढक कर हम मानों कुदरत के दोषों को दिखला रहे हैं। जैसे जैसे हमारे पास ज्यादा पैसे होते जाते हैं वैसे ही वैसे हम सजावट बढ़ाते जाते हैं। कोई किसी भांति और कोई किसी भांति रूपवान बनना चाहते हैं और बनठन कर काच में मुह देख प्रसन्न होते हैं कि "वाह मैं कैसा खूबसूरत हूं।" बहुत दिनों के ऐसे ही अभ्यास से अगर हमारी दृष्टि खराब न हो गई हो तो हम तुरन्त देख सकेंगे कि मनुष्य का उत्तम से उत्तम रूप उस की नग्नावस्था में ही है और उसी में उस का आरोग्य है।"[2]

---

1 Having given some study to the subject,
I may say that Rev J. T. Wilkinson's remarks upon the superior morality of the races that do not wear clothes is fully borne out by the testimony of th[illegible] ers It is true that wearing of clothes goes with a higher state [illegible] and to the extent with civilisation, but it is on the other hand attended by a lower state of health and morality so that no clothed civilisation can expect to attain to a high rank "
- "Daily News, London" of 18the April 1913

2 आरोग्य पृ. ४७

इस प्रकार सौन्दर्य और स्वास्थ्य के लिये दिगम्बरत्व अथवा नग्नत्व एक मूल्यमई वस्तु है, किन्तु उसका वास्तविक मूल्य तो मानव समाज में सदाचार की सृष्टि करने में है। नग्नता और सदाचार का अविनाभावी सम्बन्ध है। सदाचार के बिना नग्नता कौड़ी मोल की नहीं है। नंगा मन और नंगा तन ही मनुष्य की आदर्श स्थिति है। इस के विपरीत गन्दा मन और नंगा तन तो निरी पशुता है। उसे कौन बुद्धिमान स्वीकार करेगा।

लोगों का ख्याल है कि कपड़े-लत्ते पहनने से मनुष्य शिष्ट और सदाचारी रहता है। किन्तु बात वास्तव में इस के बर-अक्स है। कपड़े लत्ते के सहारे तो मनुष्य अपने पाप और विकार को छुपा लेता है। दुर्गुणों और दुराचार का आगार बना रह कर भी वह कपड़े की ओट में पाखण्डरूप बना सकता है, किन्तु दिगम्बर वेष में वह असम्भव है। श्री शुक्राचार्य जी के कथानक से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि शुक्राचार्य युवा थे, पर दिगम्बर वेष में रहते थे। एक रोज वह वहा से जा निकले जहां तालाब में कई देव कन्यायें नंगी होकर जल क्रीड़ा कर रही थी। उनके नंगे तन ने देव रमणियों में कुछ भी क्षोभ उत्पन्न न किया। वे जैसी की तैसी नहाती रहीं और शुक्राचार्य अपने निकले चले गये। इस घटना के थोड़ी देर बाद शुक्राचार्य के पिता वहां आ निकले। उन को देखते ही देवकन्यायें नहाना धोना भूल गई। झटपट वे जल के बाहर निकलीं और अपने वस्त्र उन्होंने पहन लिये। एक नंगे युवा को देख कर तो उन्हें ग्लानि और लज्जा न आई, किन्तु एक वृद्ध शिष्ट-से -दिखते "सज्जन" को देख कर वे लजा गईं। भला इस का क्या कारण है ? यही न कि नगा युवा अपने मन में भी नंगा था-उसे विकार ने नहीं आघेरा था। इस के विपरीत उसका वृद्ध और शिष्ट पिता विकार से रहित न था। वह अपने शिष्ट वेष (1) में इस विकार को छिपाये रखने में सफल था, किन्तु दिगम्बर युवा के लिए वैसा करना असंभव था। इसी कारण वह निर्विकारी और सदाचारी था। अत. कहना होगा कि सदाचार की मात्रा नंगे रहने में अधिक है। नंगेपन - दिगम्बरत्व का वह भूषण है। विकार भाव को जीते बिना ही कोई नंगा रहकर प्रशंसा नहीं पा सकता। विकारी होना दिगम्बरत्व के लिये कलंक है। न वह सुखी हो सकता है और न उसे विवेक-नेत्र मिल सकता है। इसीलिये भगवद् कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं-

णग्गो पावइ,दुक्खं णग्गो संसार सागरे भमइ।
णग्गो ण लहई बोहिं, जिण भावणंजिओ सुदूरं।।[3]

भावार्थ - "नगा दु ख पाता है, वह ससार सागर में भ्रमण करता है, उसे बोधि विज्ञान दृष्टि प्राप्त नहीं होती, क्योंकि नगा होते हुए भी वह जिन भावना से दूर है। इसका मतलब यही है कि जिन भावना से युक्त नग्नता ही पूज्य है-उपयोगी है। और जिन भावना से मतलब रागद्वेषादि विकार भावों को जीत लेना है। इस प्रकार नगा रहना उसी के लिये उपादेय है जो रागद्वेषादि विकार भावों को जीतने में लग गया है-प्रकृति का होकर प्राकृत वेष में रह रहा है। ससार के पाप-पुण्य, बुराई-भलाई का जिसे भान तक नहीं है, वही

---

3 भाव पाहुड ६८ गाथा - अष्ट प\ २०६-२१०

दिगम्बरत्व धारण करने का अधिकारी है। और चूंकि सर्वसाधारण गृहस्थों के लिये इस परमोच्च स्थिति को प्राप्त कर लेना सुगम नहीं है, इसलिये भारतीय ऋषियों ने इसका विधान गृहत्यागी अरण्यवासी साधुओं के लिये किया है। दिगम्बर मुनि ही दिगम्बरत्व को धारण करने के अधिकारी हैं, यद्यपि यह बात जरूर है कि दिगम्बरत्व मनुष्य की आदर्श स्थिति होने के कारण मानव-समाज के पथ-प्रदर्शक श्री भगवान ऋषभदेव ने गृहस्थों के लिये भी महीने के पर्व दिनों में नंगे रहने की आवश्यकता का निर्देश किया था[4] और भारतीय गृहस्थ उनके इस उपदेश का पालन एक बड़े ज़माने तक करते रहे थे।

इस प्रकार उक्त वक्तव्य से यह स्पष्ट है कि दिगम्बरत्व मनुष्य की आदर्श स्थिति है - आरोग्य और सदाचार का वह पोषक ही नहीं जनक है। किन्तु आज का संसार इतना पाप-ताप से झुलस गया है कि उस पर एक दम दिगम्बर-वारि डाला नहीं जा सकता। जिन्हें विज्ञान-दृष्टि नसीब हो जाती है, वही अभ्यास करके एक दिन निर्विकारी दिगम्बर मुनि के वेष में विचरते हुए दिखाई पड़ते हैं उनको देखकर लोगों के मस्तक स्वयं झुक जाते हैं। वे प्रज्ञा-पुत्र और तपो धन लोक कल्याण में निरत रहते हैं। स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, ऊंच-नीच, पशु-पक्षी - सब ही प्राणी उन के दिव्य रूप में सुख-शांति का अनुभव करते हैं। भला-प्रकृति प्यारी क्यों नही हो। दिगम्बर साधु प्रकृति के अनुरूप हैं। उन का किसी से द्वेष नहीं - वे तो सब के हैं और सब उन के हैं - वे सर्वप्रिय और सदाचार की मूर्ति होते हैं। यदि कोई दिगम्बर होकर भी इस प्रकार जिन भावना से युक्त नहीं है तो जैनाचार्य कहते हैं कि उसका नग्न वेष धारण करना निरर्थक है - परमोद्देश्य से वह भटका हुआ है - इह लोक और परलोक, दोनों ही उस के नष्ट हैं।[5] बस, दिगम्बरत्व वही शोभनीय है जहा परमोद्देश्य दृष्टि से ओझल नही किया गया है। तब ही तो वह मनुष्य की आदर्श स्थिति है।

---

4 सागार. अ ६ श्लोक ६ व भमबु. पृ २०५-२०६।

5 "निरट्ठिया नग्गरुई उ तस्स, जे उत्तमट्ठं विवज्जासमेई,
इमे वि से नत्थि परे वि लोए, दुहओ वि से झिज्जइ तत्थ लोए। ४९।"
- उत्तराध्ययन सूत्र व्या २०

"In vain ho adopts nakedness, who errs about matters of paramount interest, neither this world nor the next will be his He is a loser in both respects in the world " - Js II P 106

(2)

धर्म और दिगम्बरत्व।

"णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं।
एक्को वि मोक्खमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे ॥ 10 ॥"

अर्थात – अचेलक–नग्नरूप और हाथों को भोजनपात्र बनाने का उपदेश जिनेन्द्र ने दिया है। यही एक मोक्ष–धर्म–मार्ग है। इसके अतिरिक्त शेष सब अमार्ग हैं।

"धम्मो वत्थु सहावो" – धर्म वस्तु का स्वभाव है और दिगम्बरत्व मनुष्य का निजरूप है, उसका प्रकृत स्वभाव है। इस दृष्टि से मनुष्य के लिये दिगम्बरत्व परमोपादेय धर्म है। धर्म और दिगम्बरत्व में वहां कुछ भेद ही नहीं रहता। सचमुच सदाचार के आधार पर टिका हुआ दिगम्बरत्व धर्म के सिवा और कुछ हो भी क्या सकता है ?

जीवात्मा अपने धर्म को गंवाये हुये है। लौकिक दृष्टि से देखिये, चाहे आध्यात्मिक से, जीवात्मा भवभ्रमण के चक्कर में पड़ कर अपने निज स्वभाव से हाथ धोये बैठा है। लोक में वह नंगा आया है। फिर भी समाज–मर्यादा के कृत्रिम भय के कारण वह अपने निजरूप – नग्नत्व – को खुशी खुशी छोड़ बैठता है। इसी तरह जीवात्मा स्वभाव में सच्चिदानन्द रूप होते हुये भी संसार की माया–ममता में पड़ कर उस स्वानुभवानन्द से वंचित है। इसका मुख्य कारण जीवात्मा की रागद्वेष जनित परिणति है। रागद्वेषमई भावों से प्रेरित होकर वह अपने मन–वचन और काय की क्रिया तद्वत् करता है। इसका परिणाम यह होता है कि उस जीवात्मा में लोक में भरी हुई पौद्गलिक कर्म–वर्गणायें आकर चिपट जाती हैं और उनका आवरण जीवात्मा के ज्ञान–दर्शन आदि गुणों को प्रकट नहीं होने देता। जितने अंशों में वे आवरण कम या ज्यादा होते हैं उतने ही अशों में आत्मा के स्वाभाविक गुणों का कम या ज्यादा प्रकाश प्रकट होता है। यदि जीवात्मा अपने निजस्वभाव को पाना चाहता है तो उसे इन सब की कर्म सम्बन्धी आवरणों को नष्ट कर देना होगा, जिनका नष्ट कर देना संभव है।

इस प्रकार जीवात्मा के धर्म–स्वभाव–के घातक उसके पौद्गलिक सम्बन्ध हैं। जीवात्मा को आत्म–स्वातंत्र्य प्राप्त करने के लिये इस पर–सम्बन्ध को बिल्कुल छोड़ देना होगा। पार्थिव संसर्ग से उसे अछूत हो जाना होगा। लोक और आत्मा – दोनों ही क्षेत्रों में वह एक मात्र अपनी उद्देश्य प्राप्ति के लिये सतत् उद्योगी रहेगा। बाहरी और भीतरी सब ही प्रपंचों से उसका कोई सरोकार न होगा। परिग्रह नाम मात्र को वह न रख सकेगा। यथा जातरूप में रह कर वह अपने विभावमई रागादि कषाय शत्रुओं को नष्ट करने पर तुल पड़ेगा। ज्ञान और ध्यान शस्त्र लेकर वह कर्म–सम्बन्धों को बिल्कुल नष्ट कर देगा। और तब वह अपने स्वरूप को पा लेगा ! किन्तु यदि वह सत्य मार्ग से जरा भी विचलित हुआ और बाल बराबर परिग्रह के मोह में उलझा, तो उसका कहीं ठिकाना नहीं ! इसीलिये कहा गया है कि– -

बालग्गोडिमत्तं परिग्गहगहण न होई साहूर्णं।
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णण्णं इक्कठाणम्मि ।। 17 ।।

भावार्थ :- बाल के अग्रभाग-नोक के बराबर भी परिग्रह का ग्रहण साधु के नहीं होता है। वह आहार के लिये भी कोई बरतन नहीं रखता-हाथ ही उसके भोजनपात्र हैं और भोजन भी वह दूसरे का दिया हुआ एक स्थान पर और एक वक्त ही ऐसा ग्रहण करता है जो प्रासुक है-स्वयं उसके लिये न बनाया गया हो !

अब भला कहिये, जब भोजन से भी कोई ममता न रक्खी गई-दूसरे शब्दों में जब शरीर से ही ममत्व हटा लिया गया तब अन्य परिग्रह दिगम्बर साधु कैसे रक्खेगा ? उसे रखना भी नहीं चाहिये, क्योंकि उसे तो प्रकृत रूप आत्मस्वातंत्र्य प्राप्त करना है, जो संसार के पार्थिव पदार्थों से सर्वथा भिन्न है ! इस अवस्था में वह वस्त्रों का परिधान भी कैसे रख सकेगा ? वस्त्र तो उसके मुक्ति-मार्ग में अर्गला बन जावेंगे। फिर वह कभी भी कर्म-बन्धन से मुक्त न हो पायेगा। इसीलिये तत्ववेताओं ने साधुओं के लिये कहा है कि-

जह जाव रूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गिहदि हत्तेसु।
जइ लेइ अप्पपबहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोदम् ।। 18 ।।

अर्थात् - मुनि यथाजातरूप है-जैसा जन्मता बालक नग्नरूप होता है वैसा नग्नरूप दिगम्बर मुद्रा का धारक है- वह अपने हाथ में तिलके तुष मात्र भी कुछ ग्रहण नहीं करता। यदि वह कुछ भी ग्रहण करले तो वह निगोद में जाता है !

परिग्रहधारी के लिये आत्मोन्नति की पराकाष्ठा पा लेना असम्भव है। एक लंगोटीवत् के परिग्रह के मोह से साधु किस प्रकार पतित हो सकता है, यह धर्मात्मा सज्जनों की जानी सुनी बात है। प्रकृति तो कृत्रिमता की सर्वाहुति चाहती है-तब ही वह प्रसन्न होकर अपने पूरे सौन्दर्य को विकसित करती है। चाहे पैगम्बर या तीर्थंकर ही क्यों न हो, यदि वह गृहस्थाश्रम में रह रहा है- समाज मर्यादा के आत्मिमुख बन्धन में पड़ा हुआ है-तो वह भी अपने आत्मा के प्रकृत रूप को नहीं पा सकता ! इसका एक कारण है। वह यह कि धर्म एक विज्ञान है। उनमें कहीं किसी जमाने में भी किसी कारण से रचमात्र अन्तर नहीं पड सकता है ! धर्म विज्ञान कहता है कि आत्मा स्वाधीन और सुखी तब ही हो सकता है जब वह पर-सम्बन्ध, पुद्गल के संसर्ग से मुक्त हो जावे। अब इस नियम के होते हुये भी पार्थिव वस्त्र-परिधान को रखकर कोई यह चाहे कि मुझे आत्मस्वातंत्र्य मिल जाय तो उसकी वह चाह आकाश-कुसुम को पाने की आशा से बढ़कर न कही जायेगी। इसी कारण जैनाचार्य पहले ही सावधान करते हैं कि--

ण वि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासण जइवि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ।। 23 ।।

भावार्थ - जिन शासन में कहा गया है कि वस्त्रधारी मनुष्य मुक्ति नहीं पा सकता है, जो तीर्थंकर होवे तो वह भी गृहस्थदशा में मुक्ति को नहीं पाते हैं - मुनि दीक्षा लेकर जब दिगम्बर वेष धारण करते हैं तब ही मोक्ष पाते हैं। अत- नग्नत्व ही मोक्षमार्ग है-बाकी सब लिंग उन्मार्ग है।

धर्म के इस वैज्ञानिक नियम के कायल संसार के प्रायः सब ही प्रमुख प्रवर्तक रहे हैं, जैसे कि आगे के पृष्ठों में व्यक्त किया गया है और उनका इस नियम - दिगम्बरत्व- को मान्यता देना ठीक भी है, क्योंकि दिगम्बरत्व के बिना धर्म का मूल्य कुछ भी शेष नहीं रहता - वह धर्मस्वभाव रह ही नहीं पाता है। इस प्रकार धर्म और दिगम्बरत्व का सम्बन्ध स्पष्ट है।

सम आराम विहारी साधुजन.....

सम आराम विहारी साधुजन, सम आराम विहारी ।।टेक।।
एक कल्पतरु पुष्पन सेती, जजत भक्ति विस्तारी ।।१।।
एक कण्ठविच सर्प नाखिया, क्रोध दर्पजुत भारी ।
राखत एक वृत्ति दोउन में, सब ही के उपगारी ।।२।।
व्याघ्रबाल करि सहित नन्दिनी, व्याल नकुल की नारी ।
तिनके चरन-कमल आश्रय तैं, अरिता सकल निवारी ।।३।।
अक्षय अतुल प्रमोद विधायक, ताकौ धाम अपारी ।
काम धरा विच गढ़ी सो चिरतें, आतमनिधि अविकारी ।।४।।
खनत ताहि लैकर कर मे जे, तीक्ष्ण बुद्धि कुदारी ।
निज शुद्धोपयोगरस चाखत, पर-ममता न लगारी ।।५।।
निज सरधान ज्ञान चरनात्मक, निश्चय शिवमगचारी ।
'भागचन्द' ऐसे श्रीपति प्रति, फिर-फिर ढोक हमारी ।।६।।

---

(3)

दिगम्बरत्व के आदि प्रचारक ऋषभदेव।

"भुवनाम्भोज मार्तण्डं धर्मामृत पयोधरम्।
योगि कल्पतरुं नौमि देवदेवं वृषध्वजम्। - ज्ञानार्णव

दिगम्बरत्व प्रकृति का एक रूप है। इस कारण उसका आदि और अन्त कहा ही नहीं जा सकता। वह तो एक सनातन नियम है, किन्तु उस पर भी इस परिच्छेद के शीर्षक में श्री ऋषभदेव जी को दिगम्बरत्व का आदि प्रचारक लिखा है। इसका एक कारण है। विवेकी सज्जन के निकट दिगम्बरत्व केवल नग्नता मात्र का द्योतक नहीं है, पूर्व परिच्छेदों को पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो गई है। वह रागादि विभाव भाव को जीतने वाला यथा जात रूप है और नग्नता के इस रूप का संस्कार कभी न कभी किसी महापुरुष द्वारा जरूर हुआ होगा। जैनशास्त्र कहते हैं कि इस कल्पकाल में धर्म के आदि प्रचारक श्री ऋषभदेव जी ने ही दिगम्बरत्व का सबसे पहले उपदेश दिया था।

यह ऋषभदेव अन्तिम मनु नाभिराय के सुपुत्र थे और वह एक अत्यन्त प्राचीन काल में हुये थे, जिसका पता लगा लेना सुगम नहीं है। हिन्दू शास्त्रों में जैनों के इन पहले तीर्थंकर को ही विष्णु का आठवां अवतार माना है और वहां भी इन्हें दिगम्बरत्व का आदि प्रचारक बताया है। जैनाचार्य उन्हें "योगिकल्पतरु" कहकर स्मरण करते हैं।

हिन्दुओं के श्रीमद्भागवत में इन्हीं ऋषभदेव का वर्णन है और उसमें उन्हें परमहंस-दिगम्बर-धर्मका प्रतिपादक लिखा है, यथा -

"एवमनुशास्यात्मजान् स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुशासनार्थं महानुभाव परमसुहृद् भगवानृषभ देव उपशमशीलानामुपरतकर्मणाम् महामुनीना भक्तिज्ञान वैराग्यलक्षणम् पारमहंस्यधर्ममुपशिक्षमाण: स्वतनयशतज्येष्ठं परमभावतं भगवज्जनपरायण भरत धरणीपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोवरित शरीर मात्र परिग्रह उन्मक्त इव गगनपरिधान प्रकीर्णकेश आत्मन्यारो पिता हवनीयो ब्रह्मावर्त्तात प्रवव्राज।। 29।। भागवतस्कंध 5 अ. 5

अर्थात - "इस भांति महायशस्वी और सबके सुहृद ऋषभ भगवान् ने, यद्यपि उनके पुत्र सब भांति से चतुर थे, परन्तु मनुष्यों को उपदेश देने के हेतु, प्रशान्त और कर्मबंधन से रहित महामुनियों को भक्तिज्ञान और वैराग्य के दिखाने वाले परमहंस आश्रम की शिक्षा देने के हेतु, अपने सौ पुत्रों में ज्येष्ठ परम भागवत, हरि भक्तों के सेवक भरत को पृथ्वी पालन के हेतु, राज्याभिषेक कर तत्काल ही संसार को छोड़ दिया और आत्मा में होमाग्नि का आरोप कर केश खोल उन्मत्त की भांति नग्न हो, केवल शरीर को संग ले, ब्रह्मावर्त से सन्यास धारण कर चल निकले।"

इस उद्धरण से ऋषभदेव का परमहंस-दिगम्बर-धर्म शिक्षक होना स्पष्ट है।

तथा इसी ग्रन्थ के स्कंध 2 अध्याय 7 पृ. 76 में इन्हें "दिगम्बर और जैनमत का चलाने वाला" उसके टीकाकार ने लिखा है।[6] मूल श्लोक में उन्हें दिगम्बरत्व को यतियों द्वारा वंदनीय बताया है -

नाभेरसौ वृषभ आससु देव सूनु-
र्योवै चचार समदृग् जड योगचर्याम्।
यत् पारमहंस्यमृषयः पदमामनन्ति
स्वस्थः प्रशांतकरणः परिमुक्त संगः ।।10।।

उधर हिन्दुओं के प्रसिद्ध योगशास्त्र "हठयोगप्रदीपिका" में सबसे पहले मंगलाचरण के तौरपर आदिनाथ ऋषभदेव की स्तुति की गई है और वह इस प्रकार है -[7]

श्री आदिनाथाय नमोऽस्तु तस्मै,
येनोपदिष्टा हठयोगविद्या।
विभ्राजते प्रोन्नतराज योग-
मारोढुमिच्छोरधिरोहिणीव ।।1।।

अर्थात् - "श्री आदिनाथ को नमस्कार हो, जिन्होंने उस हठ योग विद्या का सर्वप्रथम उपदेश दिया जो कि बहुत ऊंचे राजयोग पर आरोहण करने के लिये नसैनी के समान है।"

हठयोग का श्रेष्ठतम रूप दिगम्बर है। परमहंस मार्ग ही तो उत्कृष्ट योगमार्ग है। इसी से "नारद परिव्रजकोपनिषद्" में योगी परमहंसाख्यः साक्षान्मोक्षकसाधनम् इस वाक्य द्वारा परमहंस योगी को साक्षात् मोक्ष का एक मात्र साधन बतलाया है। सचमुच "अजैन शास्त्रों में जहां कहीं श्री ऋषभदेव - आदिनाथ - का वर्णन आया है, उनको परमहंस मार्ग का प्रवर्तक बतलाया है।"[8]

किन्तु मध्यकालीन साम्प्रदायिक विद्वेष के कारण अजैन विद्वानों को जैन धर्म से ऐसी चिढ़ हो गई कि उन्होंने अपने धर्मशास्त्रों में जैनों के महत्वसूचक वाक्यों का या तो लोप कर दिया अथवा उनका अर्थ ही बदल दिया।[9] उदाहरण के रूप में उपरोक्त (हठयोग प्रदीपिका) के श्लोक में वर्णित आदिनाथ को उसके टीकाकार शिव (महादेव जी) बताते हैं, किन्तु वास्तव में इसका अर्थ ऋषभदेव ही होना चाहिये, क्योंकि प्राचीन 'अमरकोषादि' किसी भी कोष ग्रन्थ में महादेव का नाम आदिनाथ नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त यह बात

---

6 जिनेन्द्रमत दर्पण, प्रथम भाग पृ. १०

7. "अनेकान्त" वर्ष १ पृ. ५३८

8 अनेकान्त, वर्ष १ पृ ५३६

9 श्री टोडरमल जी द्वारा उल्लिखित हिन्दू शास्त्रों के अवतरणों का पता आजकल के छपे हुये ग्रन्थों में नहीं चलता, किन्तु उन्हीं ग्रन्थों की प्राचीन प्रतियों में उनका पता चलता है, यह बात पं मक्खनलाल जी जैन अपने 'वेद पुराणादि ग्रन्थों में जैनधर्म का अस्तित्व' नामक ट्रैक्ट (पृ ४१-५०) में प्रकट करते हैं। प्रो. सरच्चन्द्रघोषाल एम ए. काव्यतीर्थ आदि ने भी हिन्दू 'पद्मपुराण' के विषय में यही बात प्रकट की थी। (देखो J G.XIV 90)

भी ध्यान देने योग्य है कि श्री ऋषभदेव के ही सम्बन्ध में यह वर्णन जैन और अजैन शास्त्रों में मिलता है – किसी अन्य प्राचीन मत प्रवर्तक के सम्बन्ध में नहीं–कि वह स्वयं दिगम्बर रहे थे और उन्होंने दिगम्बर धर्म का उपदेश दिया था। उस पर 'परमहंसोपनिषद्' के निम्न वाक्य इस बात को स्पष्ट कर देते हैं कि परमहंस धर्म के स्थापक कोई जैनाचार्य थे.–

"तदेतद्विज्ञाय ब्राम्हण पात्र कमण्डलुं कटिसूत्रं कौपीनं च तत्सर्वमप्सुविसृज्याय जातरूपधरश्चरे दात्मानिमन्विच्छेद यथाजातरूपधरो निर्द्वंद्वो निष्परिग्रहस्तत्वब्रम्हमार्गे सम्यक् संपन्न शुद्ध मानस प्राणसंधारणार्थं यथोक्तकाले पच गृहेषु करपात्रेणायाचिताहार माहरन् लाभोलाभे समोभूत्वा निर्मम शुक्लध्यानपरायणोध्यात्मनिष्ठ शुभाशुभकर्मनिर्मूलनपर परमहंस. पूर्णानन्दैकबोधस्तद्ब्रम्होहमस्मीति ब्रम्हप्रणवमनस्मरन् भ्रमर कीटकन्यायेन शरीरत्रयमुत्सृज्य देहत्याग करोति स कृतकृत्यो भवतीत्युपनिषद्[10]

अर्थात – "ऐसा जानकर ब्राम्हण (ब्रम्हज्ञानी) पात्र, कमण्डलु, कटिसूत्र और लगोटी इन सब चीजों को पानी में विसर्जन कर जन्मसमय के वेष को धारण कर – अर्थात् बिल्कुल नग्न होकर – विचरण करे और आत्मान्वेषण करे। जो यथाजातरूपधारी (नग्न दिगम्बर), निर्द्वंद्व निष्परिग्रह, तत्वब्रम्हमार्ग में भले प्रकार सम्पन्न, शुद्ध हृदय, प्राणधारण के निमित्त यथोक्त समय पर अधिक से अधिक पाच घरों में बिहार कर कर–पात्र में अयाचित भोजन लेने वाला तथा लाभालाभ में समचित्त होकर निर्ममत्व रहने वाला, शुक्लध्यान परायण, अध्यात्मनिष्ठ, शुभाशुभ कर्मों के निर्मूलन करने में तत्पर परमहस योगी पूर्णानन्द का अद्वितीय अनुभव करने वाला वह ब्रम्ह मैं हू, ऐसे ब्रम्ह प्रणव का स्मरण करता हुआ भ्रमरकीटक न्याय से (कीडा भ्रमरी का ध्यान करता हुआ स्वय भ्रमर बन जाता है, इस नीति से) तीनों शरीरों को छोडकर देहत्याग करता हे, वह कृत्कृत्य होता है, ऐसा उपनिषदों में कहा है।"

इस अवतरण का प्राय· सारा ही वर्णन दिगम्बर जैन मुनियों की चर्या के अनुसार है, किन्तु इसमें विशेष ध्यान देने योग्य विशेषण 'शुक्लध्यानपरायण' है, जो जैन धर्म की एक खास चीज है। "जैन के सिवाय और किसी भी योग ग्रन्थ में शुक्लध्यान का प्रतिपादन नहीं मिलता। पतंजलि ऋषि ने भी ध्यान के शुक्लध्यान आदि भेद नही बतलाये। इसलिए योग ग्रथों में आदि–योगाचार्य के रूप में जिन आदिनाथ का उल्लेख मिलता है वे जैनियों के आदि तीर्थंकर श्री आदिनाथ से भिन्न और कोई नही जान पडते।"[11]

"अथर्ववेद के जाबालोपनिषद् (सूत्र 6) में परमहस सन्यासी का एक विशेषण निर्ग्रन्थ भी दिया है[12] और यह हर कोई जानता है कि इस नाम से जैनी ही एक प्राचीनकाल से प्रसिद्ध है। बोद्धों के प्राचीनशास्त्र इस बात का खुला समर्थन करते हैं।[13] जैनधर्म के ही

10 अनेकान्त, वर्ष १ पृ ४३६–४४०

11 अनेकान्त, वर्ष १ पृष्ठ ४४१

12 "यथा जातरूपधरो निग्रन्थोनिष्परिग्रह " इत्यादि – दिमु पृ ८

13 जैकोबी प्रभृत विद्वानों ने इस बात को सिद्ध कर दिया है (Js Pt II Intro) 'भपा की प्रस्तावना तथा सजै देखो'

नग्न शब्द को उपनिषद्कार ने ग्रहण और प्रयुक्त करके यह अच्छी तरह दर्शा दिया है कि दिगम्बर साधु मार्ग का मूल स्रोत जैनधर्म है। और उधर हिन्दू पुराण इस बात को स्पष्ट करते ही हैं कि ऋषभदेव, जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर ने ही परमहंस दिगम्बर धर्म का उपदेश दिया था। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि श्री ऋषभदेव वेद-उपनिषद ग्रंथों के रचे जाने के बहुत पहले हो चुके थे। वेदों में स्वयं उनका और 16 वें अवतार वामन का उल्लेख मिलता है।[14] अतः निस्सन्देह भ. ऋषभदेव ही वह महापुरुष हैं जिन्होंने इस युग की आदि में स्वयं दिगम्बर वेष धारण करके सर्वज्ञता प्राप्त की थी[15] और सर्वज्ञ होकर दिगम्बर धर्म का उपदेश दिया था। वही दिगम्बरत्व के आदि प्रचारक हैं। ●

संत साधु बन के विचरू.....

संत साधु बन के विचरूँ, वह घड़ी कब आयेगी।
चल पडूँ मैं मोक्ष पथ में, वह घड़ी कब आयेगी ।।टेक।।
हाथ में पीछी कमण्डल, ध्यान आतम राम का।
छोड़कर घरबार दीक्षा, की घड़ी कब आयेगी ।।१।।
आयेगा वैराग्य मुझको, इस दुःखी संसार से।
त्याग दूँगा मोह ममता, वह घड़ी कब आयेगी ।।२।।
पांच समिति तीन गुप्ति, बाइस परिषह भी सहूँ।
भावना बारह जु भाऊँ, वह घड़ी कब आयेगी ।।३।।
बाह्य उपाधि त्याग कर, निज तत्त्व का चिंतन करूँ।
निर्विकल्प होवे समाधि, वह घड़ी कब आयेगी ।।४।।
भव भ्रमण का नाश होवे, इस दुःखी संसार से।
विचरूँ मैं निज आत्मा में, वह घड़ी कब आयेगी ।।५।

14 "विष्णुपुराण" में भी श्री ऋषभदेव को दिगम्बर लिखा है।
["Rishabha Deva .. naked, went the way of the great road" (महाप्रस्थानम्)" - Wilson's Vishnn Purana, Vol. II (Book II ch I) pp 103-104]

15 श्री मद्भागवत में ऋषभदेप को 'स्वयं भगवान् और कैवल्यपति' बताया है। (विको भा ३ प\ ४४४)

(4)

हिन्दू धर्म और दिगम्बरत्व।

"सन्यासः षड्विधो भवति: कुटिचक - बहूदक - हंस- परमहंस-
तुरिया - तीत - अवधूतश्चेति।" - सन्यासोपनिषद् 13

भगवान् ऋषभदेव जब दिगम्बर होकर वन में जा रमे, तो उनकी देखा देखी और भी बहुत से लोग नंगे होकर इधर-उधर घूमने लगे। दिगम्बरत्व के मूल तत्व को वे समझ न सके और अपने मनमाने ढंग से उदर पूर्ति करते हुये वे साधु होने का दावा करने लगे। जैनशास्त्र कहते हैं कि इन्हीं सन्यासियों द्वारा सांख्य आदि जैनेतर सम्प्रदायों की सृष्टि हुई थी।[16] और तीसरे परिच्छेद में स्वयं हिन्दूशास्त्रों के आधार से यह प्रकट किया जा चुका है कि श्री ऋषभदेव द्वारा ही सर्वप्रथम दिगम्बर धर्म का प्रतिपादन हुआ था। इस अवस्था में हिन्दू ग्रंथों में भी दिगम्बरत्व का सम्माननीय वर्णन मिलना आवश्यक है।

यह बात जरूर है कि हिन्दूधर्म के वेद और प्राचीन तथा वृहत् उपनिषदों में साधु के दिगम्बरत्व का वर्णन प्राय नहीं मिलता। किन्तु उनके छोटे-मोटे उपनिषदों एवं अन्य ग्रंथों में उसका खास ढंग पर प्रतिपादन किया गया मिलता है। "भिक्षुकउपनिषद्[17] - रहस्यमयनीय उपनिषद[18] याज्ञवल्क्य उपनिषद्" - "परमहंस-परिव्राजक-उपनिषद्" आदि में यद्यपि सन्यासियों के चार भेद (1) कुटिचक, (2) बहुदक, (3) हस, (4) परमहस - बताये गये हैं, परन्तु "सन्यासोपनिषद्" में उनको छै प्रकार का बताया गया है अर्थात् उपरोक्त चार प्रकार के सन्यासियों के अतिरिक्त (1) तुरियातीत और (2) अवधूत प्रकार के सन्यासी और गिनाये है।[19] इन छहों में पहले तीन प्रकार के सन्यासी त्रिदण्ड धारण करने के कारण त्रिदण्डी कहलाते हैं और शिखा या जटा तथा वस्त्र कौपीन आदि धारण करते है।[20] परमहस परिव्राजक शिखा और यज्ञोपवीत जैसे द्विजचिन्ह धारण नही करता और वह एक दण्ड ग्रहण करता तथा एक वस्त्र धारण करता है अथवा अपनी देह में भष्म रमा लेता है।[21]

---

16 आदिपुराण पर्व १८ श्लो.६२ व (Rishabh.p 112)

17 "अथभिक्षूणम् मोक्षार्थीनाम् कुटीचक - बहुदक - हस-परम-हंसाश्चेति चत्वार।"

18. "कुटिचको - बहुदको-हंस:परमहंस-इत्येति परिव्राजक. चतुर्विधा भवन्ति।"

19 "स सन्यास: षड्विधो भवति कुटीचक बहुदक हंस परमहंस तुरीयातीतावधूतश्चेति।"

20 "कुटीचक. शिखायज्ञोपवीती दण्डकमण्डलुधर कौपीनशाटीकन्थाधर पितृमातृगुर्वाराधनपर पिठरखनित्रशिक्यादिमात्रसाधनपर एकत्रान्नादनपर श्वेतोर्ध्वपुण्ड्रधारी त्रिदण्ड। बहुदक शिखादि कन्थाधरस्त्रिपुण्ड्रधारी कुटीचकवत्सर्वसमी मधुकरवृत्याकवलाशी। हंसो जटाधारी त्रिपुण्ड्रोर्ध्वपुण्ड्रधारी असंक्लृप्तमाधुकरान्नाशी कौपीनखण्डतुण्डधारी।

21 परमहंस शिखायज्ञोपवीत रहित पंचगृहेषु करपात्री एक कौपीनधारी शाटीमेकामेकं वैणवं दण्डमेकशाटीधरो वा भस्मोद्धूलन पर.।

हां, तुरियातीत परिव्राजक बिल्कुल दिगम्बर होता है और वह एकवास भिक्षा का पालन करता है।[22] अन्तिम अवधूत पूर्ण दिगम्बर और निर्ग्रन्थ है—वह सम्भवतः भिक्षा की भी परवाह नहीं करता।[23] तुरियातीत अवस्था में पहुंचकर परमहंस परिव्राजक को दिगम्बर ही रहना पड़ता है किन्तु उसे दिगम्बर जैन मुनि की तरह केशलुंच नहीं करना होता— वह अपना सिर मुड़ाता (मुण्ड) है और अवधूत पद तो तुरियातीत की चरम अवस्था है।[24] इस कारण इन दोनों भेदों का समावेश परमहंस भेद में ही गर्भित किन्हीं उपनिषदों में मान लिया गया है। इस प्रकार उपनिषदों के इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि एक समय हिन्दू धर्म में भी दिगम्बरत्व को विशेष आदर मिला था और वह साक्षात् मोक्ष का कारण माना गया था। उस पर कापालिक सम्प्रदाय में तो वह खूब ही प्रचलित रहा, किन्तु वहां वह अपनी धार्मिक पवित्रता खो बैठा, क्योंकि वहां वह भोग की वस्तु रहा। अस्तु:

यहां पर उपनिषदादि वैदिक साहित्य में जो भी उल्लेख दिगम्बर साधु के सम्बन्ध में मिलते हैं, उनको उपस्थित कर देना उचित है। देखिये "जाबालोपनिषत्" में लिखा है:-

"तत्र परमहंसानामसंवर्त कारुणिश्वेतकेतुदुर्वास ऋभुनिदाघजडभरत दत्तात्रेयरैवतक प्रभृतयोऽव्यक्तलिंगा अव्यक्ताचारा अनुन्मत्ता उन्मत्तवदाचरन्तस्त्रिदण्डं कमण्डलु स्वाहेत्यप्सु परित्यज्यात्मान मन्विच्छेत।। यथाजात रूपधरो निर्ग्रन्थो निष्परिग्रहस्तत्तद्ब्रह्ममार्गे सम्यकसंपन्न.- इत्यादि"।[25]

इसमें सवर्तक, आरुणि, श्वेतकेतु आदि को यथाजातरूपधर निर्ग्रन्थ लिखा है अर्थात् इन्होंने दिगम्बर जैन मुनियों के समान आचरण किया था।

"परमहंसोपनिषत्" में निम्न प्रकार उल्लेख है -

"इदमन्तरं ज्ञात्वा स परमहंस आकाशाम्बरो न नमस्कारो न स्वाहाकारो न निन्दा न स्तुतिर्यादृच्छिको भवेत्स भिक्षु।[26]"

सचमुच दिगम्बर (परमहंस) भिक्षु को अपनी प्रशंसा निन्दा अथवा आदर-अनादर से सरोकार ही क्या। आगे "नारदपरिव्राजकोपनिषत्" में भी देखिये.-

"यथाविधिश्चेज्जात रूपधरो भूत्वा जातरूपधरश्चरेदात्मानमन्विच्छेद्यथा जातरूपधरो निर्द्वन्द्वो निष्परि ग्रहस्तत्त्वब्रह्ममार्गे सम्यक् सपन्न। 86-तृतीयोपदेश।"[27]

---

22 सर्वतयागी तुरीयातीतो गोमुखवृत्त्या फलाहारी अन्नाहारी चेद्गृहत्रये देहमात्रावशिष्टो दिगम्बर कुणपवच्छरीर वृत्तिक.।

23 "अवधूतस्त्वनियमः पतिताभिशस्तवर्जनपूर्वकं सर्व वर्णैष्वजगर-वृत्त्याहार पर स्वरूपानुसंधानपर।..

24 "सर्वं विस्मृत्य तुरीया तीतावधूतवेषणाद्वैतनिष्ठापर प्रणवात्मकत्वेन देहत्यागं करोति य सोऽवधूत।'

25 ईशाद्य, पृष्ठ १३१

26 ईशाद्य, पृष्ठ १५०

27 ईशाद्य, पृष्ठ २६७-२६८

"तुरीय परमो हस. साक्षान्नारायणो यति. । एकरात्र वसेन्द्‌ग्रामे नगरे पञ्चरात्रकम् ।। 14 ।। वर्षाभ्योऽन्यत्र वर्षासु मासाश्च चतुरोवसेत् ।. मुनि कौपीनवासाः स्यान्नग्नो वा ध्यान अपरः (32) जातरूपधरों भूत्वा . दिगम्बर ।–चतुर्थोपदेश ।[28]

इन उल्लेखों में भी परिव्राजक को नग्न होने का तथा वर्षाऋतु में एक स्थान में रहने का विधान है। "मुनिः कौपीनवासा" आदि वाक्य में छहों प्रकार के सारे ही परिव्राजकों का "मुनि" शब्द से ग्रहण कर लिया गया है। इसलिये उनके सम्बन्ध में वर्णन कर दिया कि चाहे जिस प्रकार का मुनि अर्थात् प्रथम अवस्था का अथवा आगे की अवस्थाओं का। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि मुनि वस्त्र भी पहिन सकता है और नग्न भी रह सकता है, जिससे की नग्नता पर आपत्ति की जा सके। यह पहले ही परिव्राजकों के षड्भेदों में दिखाया जा चुका है कि उत्कृष्ट प्रकार के परिव्राजक नग्न ही रहते हैं और वह श्रेष्टतम फल को भी पाते हैं, जैसे कि कहा है –

"आतुरो जीवति चेत्क्रम सन्यास कर्तव्य आतुर कुटीचकयोर्भूलोक भुवर्लोको। वहूदकस्य स्वर्गलोक ।

हंसस्य तपोलोक । परम हंसस्य सत्यलोक । तुरीयातीतावधूतयो स्वस्मन्येव कैवल्य स्वरूपानुसंधानेन भ्रमर कीटन्यायवत ।[29]

अर्थात् –"आतुर यानी संसारी मनुष्य का अन्तिम परिणाम (निष्ठा) भूलोक है, कुटीचक सन्यासी का भुवर्लोक, स्वर्गलोक हंस सन्यासी का अन्तिम परिणाम है, परमहंस के लिये वही सत्यलोक है और कैवल्य तुरियातीत और अवधूत का परिणाम है।"

अब यदि इन सन्यासियों में वस्त्र परिधान और दिगम्बरत्व का तात्विक भेद न होता तो उन के परिणाम में इतना गहन अन्तर नही हो सकता। दिगम्बर मुनि ही वास्तविक योगी है और वही कैवल्य-पद का अधिकारी है। इसीलिये उसे "साक्षात् नारायण" कहा गया है। "नारद परिव्राजकोप निषद्" में आगे और भी उल्लेख निम्न प्रकार है -

"ब्रम्हचर्येण सन्यस्य् सन्यासाज्जातरूपधरो वैराग्य सन्यासी"[30]

"तुरीयातीतो गोमुख फलाहारी। अन्नाहारी चेद्‌गृह त्रये देहमात्रावशिष्टो दिगम्बर कुणपवच्छरीरवृत्तिक । अवधूतस्त्वनियमोऽ भिशस्तपतितवर्जनपूर्वक सर्ववर्णेष्वजगरवृत्याहारपर स्वरूपानुसधानपर । परमहंसादित्रयाणा न कटिसूत्र न कोपीन न वस्त्रम् न कमण्डलुर्न दण्ड सार्ववर्णैकभैक्षाटनपरत्व जातरूपधरत्व विधि ।

सर्व परित्यज्य तत्प्रसक्तम् मनोदण्डं करपात्र दिगम्बर दृष्टा। परिव्रजेदिभक्षु ।।1 ।।

अभय सर्वभूतेभ्यो दत्वा चरिति यो मुनि । न तस्य सर्वभूतेभ्यो भयमुत्पद्यते कचित (16) आशानिवृत्तो भूत्वा आशाम्बरधरो भूत्वा सर्वदामनोवाक्कायकर्मभि सर्वसंसारमुत्सृज्य प्रपञ्चावाङ्मुख स्वरूपानुसन्धानन भ्रमरकीटन्यायन मुक्तो भवतीत्युपनिषत। ।। पञ्चामोपदेश ।।"

---

28 ईशाद्य , पृष्ठ २६८-२६६

29 ईशाद्य , पृष्ठ ४१५ - संन्यासोपनिषत् ५६।

30 ईशाद्य , पृष्ट २६१

"दिगम्बरत्त् परमहंसस्य एक कौपीनं वा तुरीयातीतावधूतयोर्जातरूपधरत्वं हंस परमहंसयोरजिनं न त्वन्येषाम्।"---सप्तमोपदेश.[31]

वैसाब सन्यासी भेद एक अन्य प्रकार से किया गया है। इस प्रकार से परिव्राजक सन्यासियों के चार भेद यूं किये गए हैं- (1) वैराग्य सन्यासी, (2) ज्ञान सन्यासी, (3) ज्ञान वैराग्य सन्यासी और (4) कर्म सन्यासी। इन में से ज्ञान वैराग्य सन्यासी को भी नग्न होना पड़ता है:-[32]

"अथजातरूपधरा निर्द्वन्द्व निष्परिग्रहा: शुक्लध्यानपरायणा आत्मनिष्ठा: प्राणसंधारणार्थं यथोक्तकाले भैक्षमाचरन्त:

शून्यागारदेवगृहतृणकूटवल्मीकवृक्ष मूलकु लाल शालाग्निहोत्र शालानदी पुलिनगिरि कन्दर कुहर कोटर निर्झरस्थिण्डले तत्र ब्रम्हमार्गे सम्यक्सपन्ना शुद्धमानसा परमहंसाचरणेन सन्या सेन देहत्यागं कुर्वन्ति ते परमहंसा नामेत्युपनिषत्।"[33]

"तुरीयातीतोपनिषत्" में उल्लेख इस प्रकार है -

"सन्यस्य दिगम्बरो भूत्वा विवर्णजीर्णवल्कलाजिन परिग्रहमपि सत्यज्य तदूर्ध्वममन्त्रवदाचरन्क्षौराभ्यङ्गस्नानोर्ध्व पुण्ड्रादिक विहाय लौकिक वैदिक मप्युपसंहृत्य सर्वत्र पुरायापुण्यवर्जितो ज्ञानाज्ञानमपि विहाय शीतोष्ण सुखदु:ख मावमाने निर्जित्य वासनात्रयपूर्वक निन्दानिन्दागर्वमत्सर दम्भ दर्प द्वेष काम क्रोध लोभ मोह हर्षामर्षासूयात्म सरक्षणादिक दग्ध्वा इत्यादि।"[34]

"सन्यासोपनिषत्" में और भी उल्लेख इस प्रकार है -

"वैराग्य संन्यासी ज्ञान सन्यासी ज्ञान वैराग्य सन्यासी कर्मसंन्यासीति चतुर्विध्यमुपागत । तद्यथेति दृष्टानुश्रविक विषय वैतृष्ण्यमेत्य प्राक्पुरायकर्मविशेषात्संनयस्त स वैराग्य संन्यासी। क्रमेण सर्वमभ्यस्य सर्वमनुभूय ज्ञान वैराग्याभ्यां स्वरूपानुसंधानेन देहमात्रावशिष्ट: संन्यस्स जात रूपधरो भवति स ज्ञान वैराग्य संन्यासी।"[35]

'परमहंसपरिव्राजकोपनिषत' में भी दिगम्बर मुनियों का उल्लेख है :-

"शिखामुत्कृष्य यज्ञोपवीत छित्वा वस्त्रमपि भमौ वाप्सु वा विसृज्य ॐ भू: स्वाहा ॐ सुव: सवाहेत्या तेन जातरूपधरो भूत्वा स्वं रूप ध्यायन्पुन पृथक प्रणवव्याहृति पूर्वक मनसा वचसपि संन्यस्त मया. ।"

"यदालबुद्धिर्भवित्तदा कुटाच को वा बहूद को वा हंसो वा परमहंसो वा तत्रन्मन्त्रपूर्वक कटिसूत्र कोपीनं दण्डं कमण्डलु सर्वमप्सु विसृज्याथ जातरूपधरश्चरेत्।"[36]

31 ईशाद्य, पृष्ठ २६२।

32 क्रमेण सर्वमभ्यस्य सर्वमनुभूय ज्ञानवैराग्याभ्यां स्वरूपानुसंधानेन देहमात्रावशिष्ट: संन्यस्य जातरूपधरो भवति स ज्ञानवैराग्यसंन्यासी।"

- नारदपरिव्राजकोपनिषद् ११५११ तथा सन्यासोपनिषद्।

33 ईशाद्य., पृष्ठ ३६८,

34 ईशाद्य, पृष्ठ ४१०

35 ईशाद्य, पृष्ठ ४१२

36 ईशाद्य, पृष्ठ ४१८-४१६

"याज्ञवल्क्योपनिषद्" में दिगम्बर साधु का उल्लेख करके उसे परमेश्वर होना बताया है। जैसे कि जैनों की मान्यता है -

"यथाजातरूपधरा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहास्तत्त्वब्रह्ममार्गे सम्यक् संपन्न. शुद्धमानसा प्राणसंधारणार्थं यथोक्त काले विमुक्तो भैक्षमाचरन्नुदरपात्रेण लाभालाभौ समौ भूत्वा कर पात्रेण वा कमण्डलूदकयो भैक्षमाचरन्नुदरमात्र सग्रह ।. आशाम्बरो न नमस्कारो न दारपुत्राभिलाषी लक्ष्यालक्ष्यनिर्वर्तक परिव्राट् परमेश्वरो भवति।"[37]

"दत्तेत्रेयोपनिषद्" में भी है.-

"दत्तात्रेय हरे कृष्ण उन्मत्तानन्द दायक। दिगम्बर मुने बालपिशाच ज्ञानसागर।"[38]

"भिक्षुकोपनिषद्" आदि में संवर्तक, आरूणी, श्वेतकेतु, जड़भरत, दत्तात्रेय, शुक, वामदेव, हारीतिकी आदि को दिगम्बर साधु बताया है। "याज्ञवल्क्योपनिषद्" में इनके अतिरिक्त दुर्वासा, ऋभु, निदाघ को भी तुरियातीत परमहंस बताया है।[39] इस प्राकर उपनिषदों के अनुसार दिगम्बर साधुओं का होना सिद्ध है।

किन्तु यह बात नहीं है कि मात्र उपनिषदों में ही दिगम्बरत्व का विधान हो, बल्कि वेदों में भी साधु की नग्नता का साधारण सा उल्लेख मिलता है। देखिये "यजुर्वेद" अ 19 मंत्र 14 में है -[40]

"आतिथ्यरूपं मासरम् महावीरस्य नग्नहु ।
रुपमुपसदामेतस्त्रिस्रो रात्री सुरासुता।।"

अर्थ - (आतिथ्यरूप) अतिथि के भाव (मासर) महीनों तक रहने वाले (महावीरस्य) पराक्रमशील व्यक्ति के (नग्नहु) नग्नरूप की उपासना करो जिससे (एतत) ये (तिस्त्रो) तीनों (णत्री) मिथ्या ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूपी (सुर) मद्य (असुता) नष्ट होती है।

इस मन्त्र का देवता अतिथि है। इसलिये यह मत्र अतिथियो के सम्बन्ध में ही लग सकता है, क्योंकि वैदिक देवता का मतलब वाच्य है, जैसाकि निरुक्तकार का भाव है- "याते नोच्यते सा देवता ।" इसके अतिरिक्त "अथर्ववेद" के पन्द्रहवें अध्याय में जिन व्रात्य और महाव्रात्य का उल्लेख है, उनमें महाव्रात्य दिगम्बर साधु का अनुरूप है। किन्तु यह व्रात्य एक वेदवाह्यसम्प्रदाय था, जो बहुत कुछ निग्रन्थसम्प्रदाय से मिलता-जुलता था। बल्कि यूं कहना चाहिये कि वह जैन-मुनि और जैन तीर्थंकर ही का द्योतक है।[41] इस अवस्था में यह मान्यता और भी पुष्ट होती है कि जैनतीर्थंकर ऋषभदेव द्वारा दिगम्बरत्व का प्रतिपादन सर्वप्रथम हुआ था और जब उसका प्राबल्य बढ़ गया और लोगों का समझ पड़ गया कि

---

37 ईशाद्य , पृष्ठ ४२४

38. ईशाद्य., पृ ५४२

39 IHQ III, २४६-२६०

40 मालूल होता है कि इस मंत्र द्वारा वेदकारने जैने तीर्थंकर महावीर के आदर्श को ग्रहण किया है। दूसरे धर्मों के आदर्श को इस तरह ग्रहण करने के उल्लेख मिलते है। IHQ III 472-485

41 देखो भपा. प्रस्तावना पृ. ३२-४६।

परलोकपद पाने के लिए दिगम्बरत्व आवश्यक है तो उन्होंने उसे अपने शास्त्रों में भी स्थान दे दिया। यही कारण है कि वेद में भी इसका उल्लेख सामान्य रूप में मिल जाता है।

अब हिन्दू पुराणादि ग्रंथों में जो दिगम्बर साधुओं का वर्णन मिलता है, वह भी देख लेना उचित है। श्री भागवत पुराण में ऋषभ अवतार के सम्बन्ध में कहा है:-

"बर्हिषी तस्मिन्नेव विष्णु भगवान् परमर्षिभिः प्रसाद तो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मरुदेव्यां धर्मान् दर्शयतु कामो वातरशनानां श्रमणानां ऋषीणामूर्ध्व मन्थिनां शुक्लया तनु वावततार।"

अर्थ - "हे राजन्। परीक्षित वा यज्ञ में परम ऋषियों करके प्रसन्न हो नाभिके प्रिय करने की इच्छा से वाके अन्तपुर में मरुदेवी में धर्म दिखायवे की कामना करके दिगम्बर रहिवेवारे तपस्वी ज्ञानी नैष्टिक ब्रम्हचारी ऊर्ध्वरेता ऋषियों को उपदेश देने को शुक्लवर्ण की देह धार श्री ऋषभदेव नाम का (विष्णु ने) अवतार लिया।[42]

"लिंग पुराण" (अ.47 पृ. 68) में नग्न साधु का उल्लेख है।[43]

"सर्वात्मनात्म निस्थाप्य परमात्मा नमीश्वरं।
नग्नोजटो निराहारी चीरीध्वांत गतोहिस. ।। 22 ।।"

"स्कंधपुराण-प्रभासखंड" में (अ. 16 पृ 221) शिव को दिगम्बर लिखा है।[44]

"वामनोपि ततश्चके तत्र तीर्थावगाहनम्।
यादृग्रूप शिवोदृष्ट सूर्यबिम्बे दिगम्बर. ।। 94 ।।"

श्री भर्तृहरि जी "वैराग्यशतक" में कहते हैं -[45]

"एकाकी नि स्पृहः शान्तः पाणिपात्री दिगम्बरः।
कदाशम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षम. ।। 58 ।।"

अर्थ - "हे शम्भो। मैं अकेला, इच्छा रहित, शान्त, पाणिपात्र और दिगम्बर होकर कर्मों का नाश कब कर सकूंगा।" वह और भी कहते हैं -[46]

अशीमहि वयं भिक्षामाशावासो वसीमहि।
शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः ।। 90 ।।

अर्थ- "अब हम भिक्षा ही करके भोजन करेंगे, दिशा ही के वस्त्र धारण करेंगे अर्थात् नग्न रहेंगे और भूमि पर ही शयन करेंगे। फिर भला धनवालों से हमें क्या मतलब ?"

सातवीं शताब्दी में जब चीनी यात्री हुएनसांग बनारस पहुंचा तो उसने वहां हिन्दुओं के बहुत से नंगे साधु देखे। वह लिखता है कि "महेश्वर भक्त साधु बालों को बांध कर जटा बनाते हैं तथा वस्त्र परित्याग करके दिगम्बर रहते हैं और शरीर में भस्म का लेप करते

---

43 वैजै पृ ३।
44 वैजै पृ ६।
45 वैजै पृ ३४।
46 वैजै पृ. ४६।

है। ये बड़े तपस्वी हैं।"[47] इन्हीं को परमहंस परिव्राजक कहना ठीक है। किन्तु हुएनसांग से बहुत पहिले ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दि में जब सिकन्दर महान ने भारत पर आक्रमण किया था, तब भी नगे हिन्दू साधु यहाँ मौजूद थे।

अरस्तू का भतीजा स्यिडो कल्लिस्थेनस (Pseudo Kallisthenes) सिकन्दर महान् के साथ यहाँ आया था और वह बताता है कि "ब्राम्हणों का श्रम ाें की तरह कोई सघ नहीं।" उनके साधु प्रकृति की अवस्था में (State of nature) -नग्न नदी किनारे रहते है और नंगे ही घूमते हैं (Go about naked) उनके पास न चौपाहे हैं, न हल है, न लोहा-लकड है, न घर है, न आग है, न रोटी है, न सुरा है- गर्ज यह कि उने के पास श्रम और आनन्द का कोई सामान नहीं है। इन साधुओं की स्त्रिया गगा की दूसरी ओर रहती है, जिनके पास जुलाई और अगस्त में वे जाते हैं। वैसे जगल म रहकर वे बनफल खाते है।[48]

सन् 851 मे अरब देश से सुलेमान सौदागर भारत आया था। उसने यहा एक ऐसे नगे हिन्दू योगी को देखा था जो सोलह वर्ष तक एक आसन से स्थित था।[49]

बादशाह औरगजेब के जमाने में फ्रास से आये हुये डॉ बर्नियर ने भी हिन्दुओं के परमहस (नगे) सन्यासियों को देखा था। वह इन्हें "जोगी" कहता है और इनके विषय में लिखता है -[50]

"I allude particularly to the people called 'Jaugis', a name which signifies 'united to God' Numbers are seen, day and night, seated or lying on ashes, entirely naked, frequently under the large trees near talabs or tanks of water, or in the galleries round the Deuras or idol temples, Some have hair hanging down to the calf of the leg, twisted and entangled into knots, liks the coat of our shaggy dogs I have seen several who hold one & some who hold both arms, perpetually lifted up above the head· the nails of their hands being twisted, and longer than half my little finger, with which I measured them Their arms are as small & thin as the arms of persons who die in a decline, because in so forced & unnatural a position they receive not sufficient nourishment, nor can they be lowered so as to supply the mouth with food, the muscles having become contracted and the articulations dry & stiff Novices wait upon these fanaties & pay them the utmost respect, as persons

---

47 हुभा, पृ ३२०

48 AI, P 181

49 Elliot, I, P-4

50 Bernier, P 316

endowed with extraordinary sanctity. No Fury in the infernal regions can be conceived more horrible than the Jaugise with their naked and black skin, long hair, spindle arms, long twisted nails and fixed in the posture which I have mentioned."

भाव यही है कि बहुत से ऐसे जोगी थे जो तालाब अथवा मंदिरों में नंगे रात-दिन रहते थे। उनके बाल लम्बे-लम्बे थे। उनमें से कोई अपनी बाहें ऊपर को उठाये रहते थे। नाखून उनके मुड़कर दूभर हो गये थे जो मेरी छोटी अंगुली के आधे बराबर थे। सूखकर वे लकड़ी हो गये थे। उन्हें खिलाना भी मुश्किल था, क्योंकि उनकी नसें तन गई थीं। भक्त जन इन नागों की सेवा करते हैं और इनकी बड़ी विनय करते हैं। वे इन जोगियों से पवित्र किसी दूसरे को समझते नहीं और इनके क्रोध से भी बेहद डरते हैं। इन जोगियों की नंगी और काली चमड़ी है, लम्बे बाल है, सूखी बाहें है, लम्बे मुड़े हुए नाखून है और वे एक जगह पर ही उस आसन मे जमे रहते है जिसका मैंने उल्लेख किया है। यह हठयोग की पराकाष्ठा है। परमहंस होकर वह यह न करते तो करते भी क्या ?

सन् 1623 ई में पिटर डेल्ला वॉल्ला नामक एक यात्री आया था। उसने अहमदाबाद मेंवरमती नदी के किनारे और शिवालों में अनेक नागा साधु देखे थे, जिन की लोग बड़ी विनय करते थे।[51]

आज भी प्रयाग में कुम्भ के मेले के अवसर पर हजारों नागा सन्यासी वहा देखने को मिलते हैं--वे कतार बाँध कर शरह-आम नंगे निकलते हैं।

इस प्रकार हिन्दू शास्त्रों और यात्रियों की साक्षियों से हिन्दू धर्म में दिगम्बरत्व का महत्व स्पष्ट हो जाता है। दिगम्बर साधु हिन्दुओं के लिये भी पूज्य-पुरुष है। ●

धनि मुनि निज आतम हित कीना .....

धनि मुनि निज आतम हित कीना
भव असार तन अशुचि विषय विष, जान महाव्रत लीना ।।टेक
एक विहारी परीग्रह छारी, परिसह सहत अरीना ।
पूरव तन तपसाधन मान न लाज गना परवीना ।।१।।
शून्य सदन गिर गहन गुफा में, पद्मासन आसीना ।
परभावन तैं भिन्न आपपद, ध्यावत मोह विहीना ।।२।।
स्व-पर भेद जिनकी बुधि निज में, पागी वाहि लगीना ।
'दौल' तासपद वारिज रज से, किन अघ करे न छीना ।।३।।

1 पुरातत्व, वर्ष २ अंक ४ ४४०

[5]

इस्लाम और दिगम्बरत्व।

"I am no apostle of new doctrines", said Muhammad, "neither know I what will be done with me or you." ---- Koran XLVI

पैगम्बर हजरत मुहम्मद ने खुद फरमाया है कि "मैं किन्हीं नये सिद्धान्तों का उपदेशक नहीं हूँ और मुझे यह नहीं मालूम कि मेरे या तुम्हारे साथ क्या होगा ? सत्य का उपासक और कह ही क्या सकता है ?उसे तो सत्य को गुमराह भाइयों तक पहुँचाना है और उससे जैसे बनता है वैसे इस कार्य को करना पड़ता है। मुहम्मद साहब को अरब के असभ्यसे लोगों में सत्य का प्रकाश फैलाना था। वह लोग ऐसे पात्र न थे कि एकदम ऊचे दर्जे का सिद्धान्त उन को सिखाया जाता। उस पर भी हजरत मुहम्मद ने उनको स्पष्ट शिक्षा दी कि-

"The love of the world is the root of all evil "

"The world is as a prison and as a famine to Muslims, and when they leave it you may say they leave famine and a prison " - (Sayings of Mohammad)[52]

अर्थात --"संसार का प्रेम ही सारे पाप की जड है। ससार मुसलमान के लिए एक कैदखाना और कहत के समान है और जब वे इसको छोड देते है तब तुम कह सकते हो कि उन्होंने क़हत और क़ैद खाने को छोड दिया।" त्याग और वैराग्य का इससे बढिया उपदेश और हो भी क्या सकता है। हजरत मुहम्मद ने स्वय उसके अनुसार अपना जीवन बनाने का यथा सभव प्रयत्न किया था। उस पर भी उनके कम से कम वस्त्रों का परिधान और हाथ की अंगूठी उनकी नमाज में बाधक हुई थी।[53] किन्तु यह उनके लिये इस्लाम के उस जन्म काल में सभव नहीं था कि वह खुद नग्न होकर त्याग और वैराग्य-तर्के दुनिया-का श्रेष्ठतम उदाहरण उपस्थित करते। यह कार्य उनके बाद हुये इस्लाम के सूफी तत्ववेत्ताओं के भाग में आया। उन्होंने "तर्क" अथवा त्यागधर्म का उपदेश स्पष्ट शब्दों में यू दिया -

"To abandon the world, its comforts and dress,--all things now and to come, --conformably with the Hadees of the Prophet "[54]

अर्थात - "दुनियां का सम्बन्ध त्याग देना-तर्क कर देना-उसकी आशाइशों और पोशाक -सबही चीजों को अब की और आगे की-पैगम्बर सा की हदीस के मुताबिक।"

---

52 KK , P 738

53 Religious Attitude & Life in Islam, P 298 & K K.739

54 The dervishes - KK P 738

इस उपदेश के अनुसार इस्लाम में त्याग और वैराग्य को विशेष स्थान मिला। उसमें ऐसे दरवेश हुये जो दिगम्बरत्व के हिमायती थे और तुर्किस्तान में "अब्दल" (Abdals) नामक दरवेश मादरजात नंगे रहकर अपनी साधना में लीन रहते बताये गये[55]। इस्लाम के महान् सूफी तत्वेत्ता और सुप्रसिद्ध "मस्नवी" नामक ग्रन्थ के रचयिता श्री जलालुद्दीन रूमी दिगम्बरत्व का खुला उपदेश निम्न प्रकार देते हैं :-

1- "गुफ्त मस्त ऐ महतब बगुजार रव-अज़
बिरहना के तवां बुरदन गरव।" - (जिल्द 2 सफा 262)

2- "जामा पोशां रा नजर परगाज रास्त -
जामै अरियां रा तजल्ली जेवर अस्त।" - (जिल्द 2 सफा 382)

3- "याज़ अरियानान बयकसू बाज़ रव-
या चूं ईशां फारिग़ व वेजामा शव।"

4- "वरनमी तानी कि कुल अरियां शवी -
जामा कम कुन ता रह औसत रवी।।" - (जिल्द 2 सफा 383)[56]

इन का उर्दू में अनुवाद "इल्हामे मन्जूम" नामक पुस्तक में इस प्रकार दिया हुआ है-

1- मस्त बोला, महतब, कर काम जा -
होगा क्या नंगे से तू अहदे वर आ।

2- है नजर धोबी पै जामै-पोश की -
है तजल्ली जेवर अरिया तनी।।

3- या बिरहनों से हो यकसू वाकई -
या हो उन की तरह बेजामै अखी।

4- मुतलकन अरिया जो हो सकता नहीं -
कपडे कम यह है कि औसत के करी।।

भाव स्पष्ट है। कई तार्किक मस्त नंगे दरवेश से आ उलझा। उसने सीधे से कह दिया कि जा अपना काम कर- तू नंगे के सामने टिक नही सकता। वस्त्र धारी को हमेशा धोबी की फिक्र लगी रहती है, किन्तु नंगे तन की शोभा दैवी प्रकाश है। बस, या तो तू नंगे दरवेशों से कोई सरोकार न रख अथवा उन की तरह आजाद और नंगा होजा। और अगर तू एकदम सारे कपडे नहीं उतार सकता तो कम से कम कपडे पहन और मध्यमार्ग को ग्रहण कर। क्या अच्छा उपदेश है। एक दिगम्बर जैन साधु भी तो यही उपदेश देता है। इससे दिगम्बरत्व का इस्लाम से सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।

---

55 "The higher saints of Islam, called 'Abdals' generally went about perfectly naked as described by Miss Luey M Garnet in her excellent account of the lives of Muslim Dervishes, entitled Mysticism & Magic in turkey " - NJ. P. 10

56. जिल्द और पृष्ट के नम्बर "मस्नवी" के उर्दू अनुवाद "इल्हामें मन्जूम" (   ) के हैं।

और इस्लाम के इस उपदेश के अनुरूप सैकड़ों मुसलमान फकीरों ने दिगम्बर वेष को गतकाल में धारण किया था। उनमें अबुलकासिम गिलानी[57] और सरमद शहीद उल्लखनीय हैं।

सरमद बादशाह औरंगजेब के समय में दिल्ली में ही गुजरा है और उस के हजारों नंगे शिष्य भारत भर में बिखरे पड़े थे। वह मूल में कजाहॉन (अरमेनिया) का रहने वाला एक ईसाई व्यापारी था। विज्ञान और विद्या का भी वह विद्वान् था। अरबी अच्छी जानता था। व्यापार के निमित्त भारत में आया था। ठट्टा (सिंध) में एक हिन्दू लड़की के इश्क में पड़ कर मजनू बन गया।[58] उपरान्त इस्लाम के सूफि दरवेशों की संगति में पड़ कर मुसलमान हो गया। मस्त नंगा वह शहरों और गलियों में फिरता था। अध्यात्मवाद का प्रचारक था। घूमता-घामता वह दिल्ली जा डटा। शाहजहां का वह अन्त समय था। दारा शिकोह, शाहजहां बादशाह का बड़ा लड़का, उस का भक्त हो गया। सरमद आनन्द से अपने मत का प्रचार दिल्ली में करता रहा। उस समय फ्रान्स से आये हुए डॉ बरनियर ने खुद अपनी आंखों से उसे नंगा दिल्ली की गलियों में घूमते देखा था।[59] किन्तु जब शाहजहां और दारा को मार कर औरंगजेब बादशाह हुआ तो सरमद की आजादी में भी अड़ंगा पड़ गया। एक मुल्ला ने उसकी नग्नता के अपराध में उसे फांसी पर चढ़ाने की सलाह औरंगजेब को दी, किन्तु औरंगजेब ने नग्नता को इस दण्ड की वस्तु न समझा[60] और सरमद से कपड़े पहनने की दरख्वास्त की। इस के उत्तर में सरमद ने कहा-

"आँकस कि तुरा कुलाह सुल्तानी दाद,
मारा हम ओ अस्बाब परेशानी दाद,
पोशानीद लबास हरकरा ऐबे दीद,
बे ऐबा रा लबास अर्यानी दाद।"

यानी "जिस ने तुम को बादशाही ताज दिया, उसी ने हम को परेशानी का सामान दिया। जिस किसी में कोई ऐब पाया, उस को लिबास पहनाया और जिन में ऐब न पाये उन को नंगेपन का लिबास दिया।"[61]

---

57 KK , P 739 and NJ, PP 8-9

58 JG , XX PP 158-159

59 Bernier remarks "I was for a long time disgusted with a celebrated Falcire named Sarmet, who paraded the streets of Delhi as naked as when he came into the world etc " - (Berniers Travels in the Mogul Empire P 317)

60 Emperor told the Ulema that "Mere nudity cannot be a reason of execution" -- JG XX, P 158

61 जैम., पृष्ट ४

बादशाह इस सचाई को सुनकर खुश हो गया लेकिन सरमद उसके क्रोध से बच न पाया। अब के सरमद फिर अपराधी बनाकर लाया गया। अपराध सिर्फ यह था कि वह "कलमा" अधूरा पढ़ता है जिस के माने होते है कि "कोई खुदा नहीं है।" इस अपराध का दण्ड उसे फांसी मिली और वह वेदान्त की बातें करता हुआ शहीद हो गया। उसको फांसी दिये जाने में एक कारण यह भी था कि वह दाराका दोस्त था।[62]

सरमद की तरह न जाने कितने नंगे मुसलमान दरवेश हो गुजरे हैं। बादशाह ने उसे मात्र नंगे रहने के कारण सजा न दी, यह इस बात का द्योतक है कि वह नग्नता को बुरी चीज नहीं समझता था। और सचमुच उस समय भारत में हजारों नंगे फकीर थे। ये दरवेश अपने नंगे तन में भारी-भारी जंजीरे लपेट कर बड़े लम्बे लम्बे तीर्थाटन किया करते थे।[63]

सारांशतः इस्लाम मजहब में दिगम्बरत्व साधु पद का चिन्ह रहा है और उसको अमली शक्ल भी हजारों मुसलमानों ने दी है। और चूंकि हजरत मुहम्मद किसी नये सिद्धान्त के प्रचार का दावा नहीं करते, इसलिए कहना होगा कि *ऋषभाचल से प्रगट हुई दिगम्बरत्व-गंगा की एक धारा को इस्लाम के सूफि दरवेशों ने भी अपना लिया था।* ●

---

62 J G , Vol XX, P 159 "There is no God" said Sarmad omitting "but, Allah and Muhammad is His apostle "

63 "Among the vast number and endless variety of Falcires or Derviches . some carried a club like to Hercules, other had a dry & rough tiger-skin thrown over their shoulders Serveral of these Fakires take long pilgrimages, not only naked, but laden with heavy iron chains, such as are put about the legs of elephants." - Bernier P 317

[6]

ईसाई मजहब और दिगम्बर साधु !

"And he stripped his clothes also, and prophesied before Samuel in like manner, and lay down naked all that day and all that night. Wherefore they said, is Saul also among the Prophets"

- (Samuel XIX,-24)

"At the same time spake the Lord, by Isaiah the son of Amoz, saying, Go and loose the sack-cloth from off the loins, and put off the shoe from the foot. And he did so, walking naked and bare foot "

-- (Isaiah XX, 2)

ईसाई मजहब में भी दिगम्बरत्व का महत्व भुलाया नहीं गया है, बल्कि बड़े मार्के के शब्दों में उसका वहा प्रतिपादन हुआ मिलता है। इसका एक कारण है जिस महानुभाव द्वारा ईसाई धर्म का प्रतिपादन हुआ था वह जैन श्रमणों के निकट शिक्षा पा चुका था।[64] उसने जैनधर्म की शिक्षा को ही अलकृत भाषा में पाश्चात्य देशों में प्रचलित कर दिया। इस अवस्था में ईसाई मजहब दिगम्बरत्व के सिद्धान्त से खाली नही रह सकता। और सचमुच बाइबिल में स्पष्ट कहा गया है कि ---

"और उसने अपने वस्त्र उतार डाले और सैमुयल के समक्ष ऐसी ही घोषणा की ओर उस सारे दिन तथा सारी रात वह नगा रहा। इस पर उन्होंने कहा, क्या साल भी पैगम्बरों में से है ? (सैमुयल 19/24)

"उसी समय प्रभू ने अमोज के पुत्र ईसाइया से कहा, जा और अपने वस्त्र उतार डाल और अपने पैरों से जूते निकाल डाल। और उसने यही किया, नगा और नगे पैरों वह विचरने लगा।- (ईसाय्या 20/2)

इन उद्धरणों से यह सिद्ध है कि बाइबिल भी मुमुक्षु को दिगम्बर मुनि हो जाने का उपदेश देती है। और कितने ही ईसाई साधु दिगम्बर वेष में रह भी चुके हैं। ईसाइयों के इन नगे साधुओं में एक सेन्टमेरी (St Mary of Egypt) नामक साध्वी भी थी। यह मिश्रदेश की सुन्दर स्त्री थी, किन्तु इसने भी कपड़े छोड़कर नग्न-वेष में ही सर्वत्र विहार किया था।[65]

यहूदी (Jews) लोगों की प्रसिद्ध पुस्तक "The Ascension of Isaiah" (p 32) में लिखा है -

---

64 विको, भा ३ पृष्ट १२८

65 The History of European Morals, ch 4 & NJ, P 6

"(Those) who believe in the ascension into beaven withdrew and settled on the mountain:....

They were all prophets(Saints) and they had nothing with them and were naked."[66]

अर्थात -वह जो मुक्ति की प्राप्ति में श्रद्धा रखते थे एकान्त में पर्वत पर जा जमे. वे सब सन्त थे और उनके पास कुछ नहीं था और वे नंगे थे।

अपॉसल पीटर ने नगे रहने की आवश्यकता और विशेषता को निम्न शब्दों में बड़े अच्छे ढंग पर "Clementine Homilies" में दर्शा दिया है -

"For we who have chosen the futures thing, in so far as we possess more goods than these, whether they be clothings, or . any other thing, possess sins, because we ought not to have anything . *To all of us possessions are sins* The deprivation of these, in whatever way it may take place is the removul of sins"[67]

अर्थात्-क्योंकि हम जिन्होंने भविष्य की चीजों को चुन लिया है, यहां तक कि हम उनसे ज्यादा सामान रखते हैं, चाहे वे फिर कपड़े लत्ते हों या दूसरी कोई चीज पाप को रक्खे हुये हैं, क्योंकि हमें कुछ भी अपने पास नहीं रखना चाहिये। हम सब के लिये परिग्रह पाप है। जैसे भी हो वैसे इन का त्याग करना पापों को हटाना है।

दिगम्बरत्व की आवश्यकता पाप से मुक्ति पाने के लिये आवश्यक ही है। ईसाई ग्रथकार ने इसके महत्व को खूब दर्शा दिया है। यही वजह है कि ईसाई मजहब के मानने वाले भी सैकड़ों दिगम्बर साधु हो गुजरे हैं।

66 NJ, P 6

67 Ante Nicene Christian Library, XVII, 240 & NJ, P 7

[7]

दिगम्बर जैन मुनि !

"जधजादरूवजादं उप्पाडिद केसमंसुगं सुद्धं।
रहिदं हिंसादीदो अप्पडिकम्मं हवदि लिंगं ।।5।।
मुच्छारंभविजुत्तं जुत्तं उवजोग जोग सुद्धीहिं।
लिंगं ण परावेक्खं अपुणब्भव कारणं जो एहं ।।6।।

-- प्रवचन सार

दिगम्बर जैन मुनि के लिये जैन शास्त्रों में लिखा गया है कि उनका लिंग अथवा वेश यथाजातरूप नग्न है--सिर और दाढ़ी के केश उन्हें नहीं रखने होते-यह उनकि केशलुन्चन किया है। इसके अतिरिक्त दिगम्बर जैन मुनि का वेष शुद्ध, हिंसादि रहित, श्रृंगार रहित, ममता-आरम्भ रहित, उपयोग और योग की शुद्धि सहित, पर द्रव्य की अपेक्षा रहित, मोक्ष का कारण होता है। साराश रूप में दिगम्बर जैन मुनि का वेष यह है, किन्तु यह इतना दुर्द्धर और गहन है कि संसार-प्रपंच में फसे हुए मनुष्य के लिये यह सभव नहीं है कि वह एक दम इस वेश को धारण कर ले। तो फिर क्या यह वेश अव्यवहार्य है। जैनशास्त्र कहते हैं "कदापि नहीं" और यह है भी ठीक क्योंकि उनमें दिगम्बरत्व को धारण करने के लिये मनुष्य का पहले से ही एक वैज्ञानिक ढग पर तैयार करके योग्य बना लिया जाता है और दिगम्बर पद में भी उसे अपने मूल उद्देश्य की सिद्धि के लिये एक वैज्ञानिक ढग पर ही जीवन व्यतीत करना होता है। जैनेतर शास्त्रों में यद्यपि दिगम्बर वेश का प्रतिपादन हुआ मिलता है, किन्तु उनमें जैनधर्म जैसे वैज्ञानिक नियम-प्रवाह की कमी है। और यही कारण है कि परमहंस वानप्रस्थ भी उनमें सपत्नीक मिल जाते है।[68] जैनधर्म के दिगम्बर साधुओं के लिये ऐसी बातें बिल्कुल असम्भव हैं।

अच्छा तो, दिगम्बर वेष धारण करने के पहले जैनधर्म मुमुक्षु के लिए किन नियमों का पालन करना आवश्यक बतलाता है ? जैन शास्त्रों में सचमुच इस बात का पूरा ध्यान रक्खा गया है कि एक गृहस्थ एक दम छलाग मार कर दिगम्बरत्व के उन्नत शैल पर नही पहुंच सकता। उसको वहां तक पहुंचने के लिए कदम ब कदम आगे बढ़ना होगा। इसी क्रम के अनुरूप जैनशास्त्रों में एक गृहस्थ के लिये ग्यारह दर्जे नियत किये हैं। पहले दर्जे में पहुंचने पर कहीं गृहस्थ एक श्रावक कहलाने के योग्य होता है। यह दर्जे गृहस्थ की आत्मोन्नति के सूचक हैं और इनमें पहले दर्जे से दूसरे में आत्मोन्नति की विशेषता रहती है। इनका विशद वर्णन जैन ग्रंथों में जैसे रत्नकरण्डश्रावकाचार में खूब मिलता है। यहा इतना बता देना ही काफी है कि इन दर्जों से गुजर जाने पर ही एक श्रावक दिगम्बर मुनि होने के योग्य होता है। दिगम्बर मुनि होने के लिये यह उसकी ट्रेनिंग है और सचमुच

---

68 यूनानी लेखकों ने उनका उल्लेख किया है। देखो, AI p 181

प्रोषधोपवासस्वरूप प्रतिमा से उसे नंगे रहने का अभ्यास करना प्रारंभ कर देना होता है। मात्र पर्व-अष्टमी और चतुर्दशी-के दिनों में वह अनारंभी हो- घर बाहर का काम-काज छोड़कर - व्रत-उपवास करता तथा दिगम्बर होकर ध्यान में लीन होता है।[69] ग्यारहवीं प्रतिमा में पहुच कर वह मात्र लंगोटी का परिग्रह अपने पास रहने देता है और गृहत्यागी वह इसके पहले हो जाता है। ग्यारहवीं प्रतिमा का धारी वह 'ऐलक या क्षुल्लक' आदरपूर्वक विधिसहित यदि प्रासुक भोजन गृहस्थ के यहां मिलता है तो गृहण कर लेता है। भोजनपात्र को रखना भी उसकी खुशी पर अवलम्बित है। बस, यह श्रावकपद की चरम-सीमा है। 'मुण्डकोपनिषद्' के "मुण्डक श्रावक" इसके समतुल्य होते है, किन्तु वहा वह साधु का श्रेष्ठ रूप है।[70] इसके विपरीत जैनधर्म में उसके आगे मुनिपद और है। मुनिपद में पहुंचने के लिये ऐलकश्रावक को लाजमी तौर पर दिगम्बर-वेष धारण करना होता है और मुनिधर्म का पालन करने के लिये मूल और उत्तर गुणों का पालन करना होता है। मुनियों के मूल गुण जैन शास्त्रों में इस प्रकार बताए गए है -

> पंचय महव्वयाइं समिदीओ पंच जिणवरोदि्दट्ठा ।
> पंचेविंदियरोहा छप्पि य आवासया लोचो ।। 2।।
> अच्चेल कमहाणं खिदिसयणमदंत घस्सणं चेव।
> ठिदिभोयणेयभत्तं मूल गुणा अट्ठवीसा दु।। 3।। मूलाचार।।

अर्थात -"पाच महाव्रत (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य और अपरिग्रह), जिनवर कर उपदेशी हुई पांच आदाननिक्षेपण समिति, मूत्रविष्ठादिक का शुद्ध भूमि में क्षेपण (चक्षु, कान, नाक, जीभ, स्पर्शन-इन पाच इन्द्रियों के विषयों का निरोध करना), छह आवश्यक (सामायिक, चर्तुविशतिस्तव, वदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग), लोच, आचेलक्य, अस्नान, पृथिवीशयन, अदतघर्षण, स्थितिभोजन, एक भक्त - ये जैन साधुओं के अट्ठाइस मूल गुण है।"

सक्षेप में दिगम्बर मुनि के इन अट्ठाइस मूलगणों का विवेचनात्मक वर्णन यह है -

(1) अहिंसा महाव्रत - पूर्णतः मन-वचन-काय पूर्वक अहिंसा धर्म का पालन करना,
(2) सत्य महाव्रत - पूर्णत. सत्य धर्म का पालन करना,
(3) अस्तेय महाव्रत - " अस्तेय " "
(4) ब्रम्हचर्य महाव्रत - "ब्रम्हचर्य " "
(5) अपरिग्रह महाव्रत - "अपरिग्रह" " "
(6) ईर्या समिति -प्रयोजनवश निर्जीव मार्ग से चार हाथ जमीन देखकर चलना
(7) भाषा समिति - पैशून्य, व्यर्थ हास्य, कठोर वचन, परनिंदा, स्वप्रशसा, स्त्री कथा, भोजन कथा, राज कथा, चोर कथा इत्यादि वार्ता छोड़कर मात्र स्वपरकल्याणक वचन बोलना,

---

69. भमुव पृ २०५ तथा बौद्धों के 'अङ्गुत्तर निकाय' में भी इसका उल्लेख है।
70 वीर वर्ष ८ पृ. २५१-२५५

(8) एषणासमिति - उद्गमादि छ्यालीस दोषों से रहित, कृतकारित नौ विकल्पों से रहित, भोजन में रागद्वेष रहित - समभाव से-बिना निमंत्रण स्वीकार करे, भिक्षा बेला पर दातार द्वारा पड़गाहने पर इत्यादि रूप भोजन करना,

(9) आदाननिक्षेपण समिति - ज्ञानोपकरणादि-पुस्तकादि का - यत्नपूर्वक देख भाल कर उठाना-धरना,

(10) प्रतिष्ठापना समिति - एकान्त, हरित व त्रसकाय रहित, गुप्त, दूर, बिल रहित, चौड़े, लोकनिन्दा व विरोध-रहित स्थान में मल-मूत्र क्षेपण करना,

(11) चक्षुर्निरोध व्रत - सुन्दर व असुन्दर दर्शनीय वस्तुओं में राग-द्वेषादि तथा आसक्ति का त्याग,

(12) कर्णेन्द्रिय निरोध व्रत - सात स्वर रूप जीव शब्द (गान) और वीणा आदि से उत्पन्न अजीवशब्द रागादि के निमित्त कारण हैं, अत इनका न सुनना,

(13) रसनेन्द्रिय निरोध व्रत - जिह्वालम्पटता के त्याग सहित और आकांक्षा रहित परिणाम पूर्वक दातार के यहां मिले भोजन को ग्रहण करना,

(14) घ्राणेन्द्रिय निरोध व्रत - सुगन्धि और दुर्गन्धि में राग-द्वेष नहीं करना,

(15) स्पर्शनेन्द्रिय निरोध व्रत - कठोर, नरम आदि आठ प्रकार का दु ख अथवा सुख रूप जो स्पर्श उस में हर्ष विषाद न रखना,

(16) सामायिक - जीवन-मरण, संयोग-वियोग, मित्र-शत्रु सुख-दुख, भूख-प्यास आदि बाधाओं में राग द्वेष रहित समभाव रखना,

(17) चतुर्विंशति-स्तव - ऋषभादि चौबीस तीर्थंकरों की मन-वचन-काय की शुद्धता-पूर्वक स्तुति करना,

(18) वन्दना- -अरहतदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और जिन शास्त्र को मन-वचन-काय की शुद्धि सहित (बिना मस्तक नमाये) नमस्कार करना,

(19) प्रतिक्रमण - द्रव्य-क्षेत्र-काल भाव रूप किये गये दोष को शोधना और अपने आप प्रगट करना

(20) प्रत्याख्यान - नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव- इन छहों में शुभ मन, वचन, काय से आगामी काल के लिए अयोग्य का त्याग करना

(21) कायोत्सर्ग - निश्चित क्रिया रूप एक नियत काल के लिये जिन गुणों की भावना सहित देह में ममत्व को छोड़ कर स्थित होना,

(22) केशलौंच - दो, तीन या चार महीने के बाद प्रतिक्रमण व उपवास सहित दिन में अपने हाथ से मस्तक, दाढ़ी, मूछ के बालों का उखाड़ना,

(23) अचेलक - वस्त्र, चर्म,टाट, तृण आदि से शरीर को नहीं ढकना, और आभूषणो से भूषित न होना,

(24) अस्नान-स्नान -उबटन-अन्जन-लेपन आदि का त्याग

(25) क्षितिशयन - जीव बाधा रहित गुप्त प्रदेश में दण्डे अथवा धनुष के समान एक करवट से सोना,

(26) अदन्तधावन - अंगुली, नख, दांतौन, तृण आदि से दन्त-मल को शुद्ध नहीं करना,

(27) स्थितिभोजन - अपने हाथों को भोजन पात्र बना कर भीत आदि के आश्रय रहित चार अंगुल के अन्तर से समपाद खडे रहकर तीन भूमियों की शुद्धता से आहार ग्रहण करना, और

(28) एक भक्त - सूर्य के उदय और अस्तकाल की तीन घड़ी समय छोड़कर एक बार भोजन करना।

इस प्रकार एक मुमुक्षु दिगम्बर मुनि के श्रेष्ठपद को तब ही प्राप्त कर सकता है जब वह उपरोक्त अठ्ठाईस मूल गुणों का पालन करने लगे। इनके अतिरिक्त जैन मुनि के लिये और भी उत्तर गुणों का पालन करना आवश्यक है, किन्तु ये अट्ठाईस मूल गुण ही ऐसे व्यवस्थित नियम हैं कि मुमुक्षु को निर्विकारी और योगी बना दें। और यही कारण है कि आज तक दिगम्बर जैन मुनि अपने पुरातन वेष में देखने को नसीब हो रहे हैं। यदि यह वैज्ञानिक नियम प्रवाह जैनधर्म में न हो तो अन्य मतान्तरों के नग्न साधुओं के सदृश आज दिगम्बर जैन साधुओं के भी दर्शन होना दुर्लभ हो जाते। दिगम्बर साधु-नग्न जैन साधु के लिये "दिगम्बर साधु" पद का प्रयोग करना ही हम उचित समझते हैं-के उपरोक्त प्रारम्भिकगुणों को देखते हुये-जिन के बिना वह मुनि ही नहीं हो सकता दिगम्बर मुनि के जीवन के कठिनश्रम, इन्द्रियनिग्रह, सयम, धर्मभाव, परोपकारवृत्ति, निशंकरूप इत्यादि का सहज ही पता लग जाता है। इस दशा में यदि वे जगद्वन्द्य हों तो आश्चर्य क्या ?

दिगम्बर मुनियों के सम्बन्ध में यह जान लेना भी जरूरी है कि उन के (1) आचार्य (2) उपाध्याय और (3) साधुरूप तीन भेदों के अनुसार कर्तव्य में भी भेद हैं। आचार्य साधु के गुणों के अतिरिक्त सर्वकाल सबन्धी आचार को जान कर स्वय तद्वत् आचरण करे तथा दूसरों से करावे, जैन धर्म का उपदेश देकर मुमुक्षुओं का सग्रह करे और उनकी सार सभाल रक्खे। उपाध्याय का कार्य साधुकर्म के साथ-साथ जैन शास्त्रों का पठन-पाठन करना है। और जो मात्र उपरोक्त गुणों को पालता हुआ ज्ञान-ध्यान में लीन रहता है, वह साधु है। इस प्रकार दिगम्बर मुनियों को अपने कर्तव्य के अनुसार जीवन-यापन करना पडता है। आचार्य महाराज का जीवन सघ के उद्योत में ही लगा रहता है, इस कारण कोई कोई आचार्य विशेष ज्ञान-ध्यान करने की नियत से अपने स्थान पर किसी योग्य शिष्य को नियुक्त करके स्वय साधुपद में आ जाते हैं। मुनि-दशा ही साक्षात् मोक्ष का कारण है। ●

दिगम्बर मुनि के पर्यायवाची नाम

दिगम्बर मुनि के लिये जैनशास्त्रों में अनेक शब्द व्यवहृत हुये मिलते हैं। तथापि जैनेतर साहित्य में भी वह एक से अधिक नामों से उल्लिखित हुये हैं। संक्षेप में उन का साधारण सा उल्लेख कर देना उचित है, जिससे किसी प्रकार की शंका को स्थान न रहें। साधारणत. दिगम्बर मुनि के लिये व्यवहृत शब्द निम्नप्रकार देखने को मिलते हैः-

अकच्छ, अकिन्चन, अचेलक (अचेलव्रती), अतिथि, अनगारी, अपरिग्रही, अहीक, आर्य, ऋषि, गुणी, गुरु, जिन लिंगी, तपस्वी, दिगम्बर, दिग्वास, नग्न, निश्चेल, निर्ग्रंथ, निरागार, पाणिपात्र, भिक्षुक, महाव्रती, माहण, मुनि, यति, योगी, वातवसन, विवसन, संयमी (संयत), स्थविर, साधु, सन्यस्थ, श्रमण, क्षपणक, अनगार।

संक्षेप में इनका विवरण इस प्रकार है -

1. अकच्छ[71] - लंगोटी रहित जैन मुनि

2. अकिन्चन[72] - जिसके पास किंचित मात्र (जरा भी) परिग्रह न हो वह जैन मुनि,

3. अचेलक या अचेलव्रती - चेल अर्थात् वस्त्ररहित साधु। इस शब्द का व्यवहार जैन और जैनेतर साहित्य में हुआ मिलता है। "मूलाचार"[73] में कहा है -

"अच्चेलक्कं लोचो वोसट्ठसरीदा य पडिलिंहण।

एसो हु लिंगकप्पो चदुव्विधो होदिणादव्वो ।। 908 ।।"

अर्थ - आचेलक्य अर्थात् कपड़े आदि सब परिग्रह का त्याग, केश लोंच, शरीर सस्कार का अभाव, मोर पीछी- यह चार प्रकार लिंगभेद जानना।"

श्वेताम्बर जैन ग्रंथ "आचारांगसूत्र" में भी अचेलक शब्द प्रयुक्त हुआ मिलता है -

"जे अचेले परि वुसिए वस्सण विवशुस्सणों एवभवद।"[74]

"अचेलए ततो चाई, तं वोसज्ज वत्थमणगारे।[75]

उनके "ठाणामंसूत्र में" है "पचहि ठाणेहिं समणे निगाथें अचेलए सचेलयाहि निगाथीहिं सद्धि सेवसयाणे माइक्कमई।" अर्थात् "और भी पाच कारण से वस्त्र रहित साधु वस्त्र सहित साध्वी साथ रहकर जिनाज्ञा का उल्लंघन करते है।"[76]

---

71 बृजैश, पृ ४

72 (Ibid)

73 पृष्ठ ३२६

74 आचा पृ १५१

75 अध्याय ६ उदेस १ सूत्र ४

76 ठाणा पृ ५६०

बौद्ध शास्त्रों में भी जैनमुनियों का उल्लेख "अचेलक" रूप में हुआ मिलता है। जैसे "पाटिकपुत्त अचेलो" अचेलक पाटिक पुत्र, वह जैन साधु थे।[77] चीनी त्रिपिटक में भी जैनसाधु "अचेलक" नाम से उल्लिखित हुये हैं।[78] बौद्ध टीकाकार बुद्धघोष "अचेलक" से भाव नग्न के लेते है।[79]

4. अतिथि - ज्ञानादि सिद्धयर्थं तनुस्थित्यर्थान्नाय य स्वयम्, यत्नेनातति गेहं वा न तिथिर्यस्य सोऽतिथि.

-- सागार धर्मामृत अ 5 श्लो. 42।

जिनके उपवास, व्रत आदि करने की गृहस्थ श्रावक के समान अष्टमी आदि कोई खास तिथि (तारीख) नियत न हो जब चाहे करें।

5. अनगार[80] - आगार रहित, गृहत्यागी दिगम्बर मुनि। इस शब्द का प्रयोग - अणयारमहरिसीण . मूलाचार, अनगार भावनाधिकार श्लो.2 में, अनगार महर्षिणा इसही श्लोक की सस्कृत छाया और "न विद्यतेऽगारं गृहं स्त्र्यादिकं यातेऽनगारा:" इसही श्लोक की सस्कृत टीका में मिलता है।

श्वेताम्बरीय "आचाराग सूत्र में है. "त वोसज्ज वत्थमणगारे।"[81]

6 अपरिग्रही - तिलतुषमात्र परिग्रह रहित दिग. मुनि।

7 अह्रीक - लज्जाहीन, नंगेमुनि। इस शब्द का प्रयोग अजैन ग्रथकारों ने दिगम्बर मुनियों के लिये घृणा प्रकट करते हुये किया है, जैसे बौद्धों के दाठावंश में है।[82]

इमे अहिरिका सब्बे सद्धादिगुणवज्जिता।
थद्धा सठाच दुप्पञ्ञा सग्गमोक्ख विबन्धका ।। 88।।"

बौद्ध नैयायिक कमलशील ने भी जैनों का अह्नीक नाम से उल्लेख किया है। (अह्नीकादयश्चोदयन्ति, स्याद्वाद परीक्षा प्र तत्वसग्रह पृ 486)। वाचस्पति अभिधान कोष में भी अह्नीक को दिगम्बर मुनि कहा है अह्नीक क्षपण के तस्य दिगम्बरत्वेन लज्जाहीनत्वात् तथात्वम।" हेतु बिन्दुतर्क टीका में भी जैन मुनि के धर्म का उल्लेख क्षपणक और अह्नीक नाम से हुआ है। तथा श्वेताम्बराचार्य श्री वादिदेवसूरि ने भी अपने स्याद्वाद-रत्नाकर ग्रथ में दिगम्बर जैनों का उल्लेख अह्नीक नाम से किया है। (स्याद्वादरत्नाकर पृ 230)।[83]

---

77 भमबु,. पृ २५५
78 "वीर" वर्ष ४ पृ ३५३
79 अचेलकोऽतिनिच्चेलो नग्गो - IHQ III २४५
80 बृजैश पृ ४
81 आचा , पृ २१०
82 दाठा , पृ १४
83 पुरातत्त्व वर्ष ५ अक ४ पृ २६६-२६७

8. आर्य - दिगम्बर मुनि। दिगम्बराचार्य शिवार्य अपने दिगम्बर गुरुओं का उल्लेख इसी नाम से करते हैं -[84]

"अज्ज जिणणंदिगणि, सव्वगुत्तगणि अज्जमित्तणंदीणं।
अवगमिय पादमूले सम्मं सुत्तं च अत्थं च ।।
पुव्वायरिय णिबद्धा उपजीवित्ता इमा ससत्तीए।
आराधणा सिवज्जेण पाणिदलभोजिणा रइदा।।"

यह सब आर्य (साधु) पाणिपात्र भोजी दिगम्बर थे।

9. ऋषी - दिगम्बर साधुका एक भेद है (यह शब्द विशेषतया ऋद्धिधारी साधु के लिये व्यवहृत होता है)। श्री कुन्दकुन्दाचार्य इसका स्वरूप इस प्रकार निर्दिष्ट करते है -[85]

मय, राय, दोस, मोहो, कोहो लोहो य जस्स आयत्ता।
पंच महव्वयधारा आयदणं महरिसो भणियं ।। 6 ।।

अर्थात - मद, राग, दोष मोह, क्रोध, लोभ, माया आदि से रहित जो पंचमहाव्रतधारी है, वह महा ऋषि है।

10 गणी - मुनियों के गण में रहने के कारण दिगम्बर मुनि इस्नाम से प्रसिद्ध होते हैं। मूलाचार में इसका उल्लेख निम्न प्रकार हुआ है -

"विस्समिदो तद्दिवसं मीमंसित्ता णिवेदयदि गणिणो।"[86]

11 गुरु - शिष्यगण -मुनि श्रावकादि के लिये गुरु होने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से भी अभिहित है। उल्लेख यू मिलता है -

"एवं आपुच्छित्ता सगवर गुरुणा विसज्जिओ संतो।"[87]

12. जिनलिंगी[88] - जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदिष्ट नग्न भेष का पालन करने के कारण दिगंबर मुनि इस नाम से भी प्रसिद्ध है।

13. तपस्वी - विशेषतर तप में लीन होने के कारण दिगम्बर मुनि तपस्वी कहलाते है। रत्नकरण्डकश्रावकाचार में इसकी व्याख्या निम्नप्रकार की गई है। -

"विषयाशावशातीतो निरारम्भोपरिग्रह ।
ज्ञान ध्यान तपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ।। 10 ।।[89]

---

84 जैहि , भा १२ पृ ३६०
85. अष्ट , पृ ११४
86 मूला , पृ ६५
87 मूला , पृ ६७
88 बृजैश , पृ ४
89 रश्रा , पृ

14. दिगम्बर - दिशायें उन के वस्त्र हैं इसलिये जैन मुनि दिगम्बर हैं। मुनि कनकामर अपने को जैन मुनि हुआ दिगम्बर शब्द से ही प्रगट करते हैं :-

"वइरायइं हुवइं दियंवरेण।
सुप्रसिद्ध णाम कणयामरेण।।"[90]

हिन्दू पुराणादि ग्रन्थों में भी जैन मुनि इस नाम से उल्लिखित हुए हैं।[91]

15. दिग्वास - यह भी नं 14 के भाव में प्रयुक्त हुआ जैनेतर साहित्य में मिलता है। विष्णु पुराण में (5/10) में है-दिग्वाससामयं धर्म.।

16. नग्न - यथाजातरूप जैन मुनि होते हैं, इसलिये वह नग्न कहे गए हैं। श्री कुन्दकुन्दाचार्य जी ने इस शब्द का उल्लेख यों किया है। -

"भावेण होई णग्गो, बाहिर लिंगेण किं च णग्गेण।"[92]
वराहमिहिर कहते हैं - "नग्नान् जिनानां विदु "[93]

17. निश्चेल - वस्त्र रहित होने के कारण यह नाम है। उल्लेख इस प्रकार है -

"णिच्चेल पाणिपत्तं उवइट्ठ परम जिणवरिंदेहिं।"[94]

18. निर्ग्रन्थ - ग्रन्थ अर्थात् अन्तर-बाहर सर्वथा परिग्रह रहित होने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। धर्मपरीक्षा में निर्ग्रन्थ साधु को वाह्याभ्यन्तर ग्रन्थ (परिग्रह) रहित नग्न ही लिखा है -

"त्यक्तवाह्वाभ्यन्तरग्रन्थो निःकषायो जितेन्द्रियः।
परीषहसह साधुर्जातरूपधरो मत. ।। 18 ।।76 ।।"

"मूलाचार" में भी अचेलक मूल गुण की व्याख्या करते हुये साधु को निग्रन्थ भी कहा है -

"वत्थाजिणवक्केण व अहवा पत्तादिणा असंवरण।[95]
णिब्भूसण णिग्गथ अच्चेलक्क जगदि पुज्ज ।। 30 ।।

"भद्रवाहु चरित्र के निम्न श्लोक भी निग्रंथ शब्द का भाव दिगम्बर प्रकट करते हैं -[96]

---

90 वीर, वर्ष ४ पृष्ठ २०१

91 विष्णु पुराण में है 'दिगम्बरो मुण्डी वर्हपत्रधर' [५-२] 'पद्मपुराण (भूमिखण्ड, अध्याय ६६), प्रबोधचन्द्रोदयनाटक अंक ३ (दिगम्बर सिद्धान्त), पचतंन्त्र "एकाकी गृहसंत्यक्त पाणिपात्री दिगम्बर।" - पंचमृतन्त्र !

92 अष्ट, पृ २००

93 वरह मिहिर १६१६०

94 अष्ट, पृ ६३

95 मूला, पृ १३

96 भद्र., पृ ८८ व ८६

निग्रन्थ मार्गमुत्सृज्य सग्रन्थत्वेन ये जडाः ।
व्याचक्षते शिवं नृणां तद्वचो न घटामटेत् ।। 95 ।।

अर्थ – "जो मूर्ख लोग निग्रन्थ मार्ग के बिना परिग्रह से सद्भाव में भी मनुष्यों को मोक्ष का प्राप्त होना बताते है उनका कहना प्रमाणभूत नहीं हो सकता।"

"अहो निग्रन्थता शून्यं किमिदं नौतनं मतम् ।
न मेऽत्र युज्यते गन्तुं पात्रदण्डादिमण्डितम ।। 145 ।।

अर्थ – "अहो। निग्रन्थता रहित यह दण्ड पात्रादि सहित नवीन मत कौन है ? इन के पास मेरा जाना योग्य नहीं है।"

भगवन्मदाग्रहादग्न्या गृहीतामर पूजिताम।
निग्रन्थपदवीं पूतां हित्वा संग मुदाऽखिलम् ।। 149 ।।

अर्थ – "भगवन् । मेरे आग्रह से आप सब परिग्रह छोड कर पहले ग्रहण की हुई देवताओं से पूजनीय तथा पवित्र निग्रन्थ अवस्था ग्रहण कीजिये।" सग शब्द का अर्थ अगले श्लोक में संग वसनादिकमत्रजसा।" किया है। अत यह स्पष्ट है कि निग्रन्थ अवस्था वस्त्रादि रहित दिगम्बर है किन्तु दुर्भाग्य से जैनसमाज में कुछ ऐसे लोग हो गए हैं जिन्होंने शिथिलाचार के पोषण के लिए वस्त्रादि परिग्रहयुक्त अवस्था को भी निग्रन्थ मार्ग घोषित कर दिया है। आज उनका सप्रदाय श्वेताम्बर जैन नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि उनके पुरातन ग्रन्थ दिगम्बर भेषको प्राचीन और श्रेष्ठ मानते हैं किन्तु अपने को प्राचीन संप्रदाय प्रगट करने के लिये वह वस्त्रादि युक्त भी निग्रन्थमार्ग प्रतिपादित करते है। यह मान्यता पुष्ट नहीं है। इसलिये संक्षेप में इस पर यहा विचार कर लेना समुचित है।

श्वेताम्बर ग्रन्थ इस बात को प्रकट करते हैं कि दिगम्बर (नग्न) धर्म को भगवान् ऋषभदेव ने पालन किया था-वह स्वय दिगम्बर रहे थे[97] और दिगम्बर वेष इतर-वेषो से श्रेष्ठ है।[98] तथापि भगवान् महावीर ने निग्रन्थ श्रमण के लिए दिगम्बरत्व का प्रतिपादन किया था और आगामी तीर्थंकर भी उस का प्रतिपादन करेंगे, यह भी श्वेताम्बर शास्त्र प्रगट

---

97 'कल्पसूत्र' - JS pt I p २८६

98 आचारागं सूत्र में कहा है -

"Those are called naked] who in this world] never returning (to a worldly state)] (follow) my religion according to the commandment this highest doctrine has here been declared for men " -- JS I p 56

"आउरण बज्जियाणां विसुद्धजिणकप्पियाणन्तु।"

अर्थ - "वस्त्रादि आवश्यकयुक्त साधु से आवरण रहित जिनकल्पित साधु विशुद्ध है। (संवत। १६३४ में मुद्रित प्रवचनसारोद्धार भाग ३ पृ १३)

करते हैं।[99] अतः स्वयं उनके अनुसार भी वस्त्रादियुक्त वेष श्रेष्ठ और मूल निग्रन्थ धर्म नहीं हो सकता।

श्वेताम्बराचार्य श्री आत्माराम जी ने भी अपने "तत्वनिर्णयप्रासाद" में निग्रन्थ शब्द की व्याख्या दिगम्बर भावपोषक रूप में दी है, यथा-

कंथा कौपीनोत्तरा सगादीनाम् त्यागिनो यथा जात रूपधरा निग्रन्था निष्परिग्रहा. ।

जैनेतर साहित्य और शिलालेखीय साक्षी भी उक्त व्याख्या की पुष्टि करती है। वैदिक साहित्य में निग्रन्थ शब्द का व्यवहार दिगम्बर साधु के रूप में ही हुआ मिलता है। टीकाकार उत्पल कहते है -[100]

"निग्रन्थो नग्नः क्षपणक. ।"

इसी तरह सायणाचार्य भी निग्रन्थ शब्द को दिगम्बर मुनि का द्योतक प्रगट करते है -[101]

"कथा कौपीनोत्तरा सगादिनाम् त्यागिनों, यथाजातरूपधरा निर्गन्था-निष्परिग्रहा । इति संवर्तश्रुति. ।"

हिन्दू पद्मपुराण में दिगम्बर जैन मुनि के मुख से कहलाया गया है -

"अर्हन्तो देवता यत्र, निर्ग्रन्थो गुरुरुच्यते।"-

अब यदि निग्रन्थ के भाव वस्त्रधारी साधु के होते तो दिगम्बर मुनि उसे अपने धर्म का गुरु न बताते। इससे स्पष्ट है कि यहा भी निर्गन्थ शब्द दिगम्बर मुनि के रूप में व्यवहृत हुआ है।

"ब्रम्हाण्डपुराण" के उपोद्घात 3 अ 14 पृ 104 में है -

"नग्नादयो न पश्येषु श्राद्धकर्म व्यवस्थितम् ।। 34 ।।"

अर्थात - "जब श्राद्धकर्म में लगे तब नग्नादिकों को न देखे।" और आगे इसी पृष्ठ पर 39 वें श्लोक में लिखा है कि नग्नादिक कौन हैं।

"वृः श्रावक निग्रन्था इत्यादि"[102]

---

99 "सेजहानामए अजजोमए समणाणं निगंथाणं नग्गभावे मुण्डभावे अण्हाणए अदन्तवणे अच्छत्तए अणुवाहणए भूमिसेज्जा फलगसेज्जा कट्टसेज्जा केसलोए बंभचेरवासे लद्धावलद्ध वित्तोओजाव पणणात्ताओं एवामेव महा पडमेवि अरहा समणाण णिग्गथाणं नग्गभावे जाव लद्धावलद्ध वित्तीओ जाव पननवेहिंत्ति।" -अर्थात् भगवान महावीर कहते हैं कि श्रमण निग्रन्थको नग्नभाव मुण्डभाव अस्नान, छत्र नहीं करना, पगरखी नहीं पहनना, भूमिशैया, केशलौच, ब्रह्मचर्य पालन, अन्य के गृह में भिक्षार्थ जाना, आहार की वृत्ति जैसे मैने कहीं वैसे महापद्म अरहतभी कहेंगे।

ठाणा., पृ. ८१३

'नगिणापिंडोलगाहमा मुणडाकणटू विणट्टण।। ६२।। - सयडांग

'अहाह भगवं एवं-से दंते दविए वोसट्ठाकाएत्तिवच्चे- माहणेत्ति व, समणेत्ति वा, भिक्खूत्ति वा, णिग्गंथेत्ति वा पणिभाह भेते।' - सुयडांग २५८

100 IHQ III, २४५

101 तत्वनिर्णयप्रसाद पृष्ठ ५२३--व दि जै १०-१-४८

102 वेजै, पृ १४

वृद्ध श्रावक शब्द क्षुल्लक-ऐलक का द्योतक है तथा निग्रन्थ शब्द दिगम्बर मुनि का द्योतक है अर्थात् जैन धर्म के किसी भी गृहत्यागी साधुको श्राद्धकर्म के समय नहीं देखना चाहिये, क्योंकि संभव है कि वह उपदेश देकर उसकी निस्सारता प्रकट कर दें। अत वैदिक साहित्य के उल्लेखों से भी निर्ग्रन्थ शब्द नग्न साधु के लिये प्रयुक्त हुआ सिद्ध होता है।

बौद्ध साहित्य भी इसकी बात का पोषण करता है। उसमें निर्ग्रन्थ शब्द साधुरूप में सर्वत्र नग्न मुनि के भाव में प्रयुक्त हुआ मिलता है। भगवान महावीर को बौद्ध साहित्य में उनके कुल अपेक्षा निग्रन्थ नातपुत्त कहा है,[103] और श्वेताम्बर जैन साहित्य से भी यह प्रकट है कि निगन्थ महावीर दिगम्बर रहे थे। बौद्ध शास्त्र भी उन्हें निग्रन्थ और अचेलक[104] प्रकट करते हैं। इससे स्पष्ट है कि बौद्धो ने निग्रन्थ और अचेलक शब्दों को एक ही भाव (Sense) में प्रयुक्त किया है अर्थात् नग्न साधु के रूप में। तथापि बौद्ध साहित्य के निम्न उद्धरण भी इस ही बात के द्योतक हैं.-

दीघनिकाय ग्रन्थ (1) 78-79 में लिखा है कि -[105]

"Pesendi, King of Kosal saluted Niganthas,"

अर्थात-- कौशल का राजा पसेनदी (प्रसेनजित) निगन्थों (नग्न जैन मुनियों) को नमस्कार करता था।

बौद्धों के "महावग्ग" नामक ग्रन्थ में लिखा है कि "एक बडी सख्या में निर्ग्रन्थगण वैशाली में, सडक सडक और चौराहे-चौराहे पर शोर मचाते दौड रहे थे।" इस उल्लेख से दिगम्बर मुनियों का उस समय निर्बाध रूप में राज मार्गो से चलने का समर्थन होता है। वे अष्टमी और चतुर्दशी को इकट्ठे होकर धर्मोपदेश भी दिया करते थे।[106]

"विशाखावत्थु" में भी निर्ग्रन्थ साधु को नग्न प्रगट किया है।[107] दीघनिकाय के पासादिक सुत्तन्त में है कि "जब निगन्ठ नातपुत्त का निर्वाण हो गया तो निग्रन्थ मुनि आपस में झगड़ने लगे। उनके इस झगडे को देखकर श्वेतवस्त्र धारी गृहीश्रावक बडे दु खी हुये।[108] अब यदि निग्रन्थ साधु भी श्वेतवस्त्र पहनते होते तो श्रावकों के लिये वह एक विशेषण रूप में न लिखे जाते। अत इससे भी निर्ग्रन्थसाधु" का नग्न होना प्रगट है।

---

103 मज्झिमनिकाय ११६२ः अंगुत्तरनिकाय ११२२०१

104 जातक भा २ पृ १८२ - भमबु २४५।

105 Indian Historical Quarterly, vol I p 153

106 महावग्ग २ १ १ १ और भ महावीर और म बुद्ध पृ २८०

107 भमबु, पृ २५२।

108. "तस्स कालकिरियाय भिन्ना निगणठ द्वेधिक जाता, भण्डन जाता, कलह जाता वधो एवं खोमंजेनिगन्ठेसु नाथपुत्तियेसु वत्तति ये पि निगन्ठस्स नाथपुत्तस्स सावका गिही ओदातवसना दुरक्खाते इत्यादि।" (PTS III 117-118) भमबु. पृ २१४

"दाठावंसो" में "अहिरिका" शब्द के साथ साथ निगण्ठ शब्द का प्रयोग जैन साधु के लिए हुआ मिलता है।[109] और 'अह्नीक' या अहिरिक शब्द नग्नता का द्योतक है। इसीलिये बौद्ध साहित्यानुसार भी निग्रन्थ साधु को नग्न मानना ठीक है।

शिलालेखीय साक्षीभी इसी बात को पुष्ट करती है। कदम्बवंशी महाराज श्रीविजय शिवमृगेश वर्मा ने अपने एक दान पत्र में अर्हन्त् भगवान और श्वेतताम्बर महाश्रमण संघ तथा निग्रन्थ अर्थात् दिगम्बर महाश्रमण संघ के उपभोग के लिये कालवंग नामक ग्राम को भेंट में देने का उल्लेख किया है।[110]

यह ताम्रपत्र ई. पांचवीं शताब्दि का है। इससे स्पष्ट है कि तब के श्वेताम्बर भी अपने को निर्ग्रन्थ न कहकर दिगम्बर संघ को ही निग्रन्थ संघ मानते थे। यदि यह बात न होती तो वह अपने को 'श्वेतपट' और दिगम्बर को 'निर्ग्रन्थ' न लिखाने देते।

कदम्ब ताम्रपत्र के अतिरिक्त विक्रम सं 1161 का ग्वालियर से मिला एक शिलालेख भी इसी बात का समर्थन करता है। उसमें दिगम्बर जैन यशोदेव को 'निर्ग्रन्थनाथ अर्थात् दिगम्बर मुनियों के नाथ श्रीजिनेन्द्र का अनुयायी लिखा है। अत: इससे भी स्पष्ट है कि 'निर्ग्रन्थ' शब्द दिगम्बरमुनि का द्योतक है -।[111]

चीनी यात्री ह्वानसांग के वर्णन से भी यही प्रगट होता है कि निर्ग्रन्थ का भाव नग्न अर्थात् दिगम्बर मुनि है -

"The Li-hi (Nirgranthas) distinguish themselves by leaving their bodies naked and pulling out their hair "(St Julien, Vienna,p 224)

अत. इन सब प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि 'निग्रन्थ' शब्द का ठीक भाव दिगम्बर (नग्न) मुनिका है।

19. निरागार - आगार घर आदि परिग्रह रहित दिगबर मुनि।'परिग्गहरहिओ निरायारो' ।[112]

---

109 'इमे अहिरिका सज्वे सद्धादिगणु वज्जित। यहा संठाय दुप्पज्ज समामोक्ख विबन्धक ।।८८।।
इति सो चिन्तयितवान गुहसीवो नराधिपो। पब्बाजेसि सकारट्ठा निगण्ठे ते असेसके।।८६।।'
- दाठावंसो पृ. १४

110 कदम्बाना श्रीविजयशिवमृगेशवर्म्मा कालवंग ग्राम त्रिधा विभजय दत्तवान् अत्रपूर्वमर्हच्छाला परमपुष्कलस्थान निवासिभ्य भगवर्दहन्महाजिनेन्द्र देवताभ्य एकोभोग द्वितीयोहत्प्रोत्सद्धर्म्मकरण परस्य श्वेतपट महाश्रमणसंघोपभोगाय तृतीयो निग्रथमहाश्रमणासंघोपभोगायेति --------।"
-- जैहि भा. १४ पृ २२६

111 The Gwalior inscrips of Vik S 1161(1104 A D)
"It was composed by a Jaina Yasodeva, who was an adherent of the Digambara or nude sect (Nigranthanatha)" --Catalogue of Archaeological Exhibits in the U P P Museum Lucknow Pt I (1915) P 44

112 अष्ट पृ ६०

20. पाणिपात्र - करपात्र ही जिनका भोजन पात्र है, वह दिगम्बर मुनि।

'णिचेल पणिपत्त उवइट्ठं' परम जिणवरि देहिं।'

21. भिक्षुक - भिक्षावृत्तिका धारक होने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से प्रसिद्ध होता है। इसका उल्लेख 'मूलाचार' में मिलता है -

'मणवचकायपउत्ती भिक्खू सावज्जकज्जसंजुत्ता।
खिप्पं णिवारयंतो तीहिं दु गुत्तो हवदि एसो।। 331।।'

22 महाव्रती[113] -- पंच महाव्रतों को पालन करने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से प्रगट है।

23. माहण - ममत्व त्यागी होने के कारण माहण नाम से दिगम्बर मुनि अभिहित होता है।

24 मुनि - दिगम्बर साधु श्रीकुन्दकुन्दाचार्य इस का उल्लेख यू करते हैं -[114]

"पंचमहव्वय जुत्ता पंचिंदिय संजमा णिरावेक्खा।
सज्झाणज्झयण जुत्ता मुणिवर वसहा णिइच्छंति।।"

25. युति -दि मुनि कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं-

सुद्धं संजयचरण जइधम्मं णिल्फलं वोच्छे।[115]

26. योगी - योगनिरत होने के कारण दि साधु का यह नाम है। यथा -[116]

"सुजं जाणिकूण जोई जो अत्थो जोइ ऊण अणवरयं।
अव्वावाहमणतं अणोवयं लहइ णिव्वाणं।।"

27. वातवसन - वायुरुपी वस्त्रधारी अर्थात् दिगम्बर मुनि। "श्रमण दिगम्बरा श्रमण वातवसना " इतिनिघण्टु

28 विवसन - वस्त्र रहित मुनि। वेदान्तसूत्र की टीका में दिगम्बर जैन मुनि 'विवसन' और 'विसिच्' कहे गए हैं।[117]

29 संयमी (संयत्) - यमनियमों का पालक सो दिगम्बर मुनि। उल्लेख यू है -

"पचमहव्वय जुत्तो तिहि गुतिहिं जो स सजदो होइ।"[118]

30 स्थविर - दीर्घ तपस्वी रुप दिगम्बर मुनि। 'मूलाचार' में उल्लेख इस प्रकार है -[119]

"तत्थ ण कप्पई वासो जत्थ इमे णत्थि पच आधारा।
आइरियउवज्झाया पवत्त थेरा गणधरा य।।"

---

113 बृजेश, पृ ४
114 अष्ट, पृ १४२
115 अष्ट, पृ. ६६
116 अष्ट, पृ २६७
117 वेदान्तसूत्र २-२-३३ शंकरभाष्य --वीर वर्ष २ पृ ३१६
118. अष्ट , पृ ६१
119 मूला , पुष्ट ६१

31. साधु - आत्मसाधना में लीन दिगम्बर मुनि इनको भी कुछ परिग्रह न रखने का विधान है:-[120]

"वालग्ग कोडिमत्तं परिग्रह गहणं ण होई साहूणं।
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णाणं इक्क ठाणम्मि ।।17।।"

32. सन्यस्त[121] - सन्यास ग्रहण किये हुवे होने के कारण दि. मुनि इस नाम से भी प्रख्यात है।

33. श्रमण - अर्थात् समरसीभाव सहित दिगम्बर साधु। उल्लेख यूं है-

'वन्दे तव सावण्णा' (वन्दे तपः श्रमणान्)[122]
'समणोमेत्ति य पढमं विदिभं सव्वत्थ संजदोमेत्ति।'[123]

34. क्षपणक - नग्न साधु। दिगम्बराचार्य योगीन्द्र देव ने यह शब्द दिगम्बर साधु के लिये प्रयुक्त किया है -[124]

"तरुणउ बूढउ रूयडउ सूरउ पंडिउ दिव्वु।
खवणउ वंदउ सेवडउ मूढउ मण्णइ सव्वु।। 83।।"

श्वेताम्बर जैन ग्रन्थों में भी दिगम्बर मुनियों के लिये यह शब्द व्यवहृत हुआ है -[125]

"खोमाणराजकुलजोऽपिसमुद्र सूरि-
गच्छं शशास किल दमवण प्रमाण (1)।
जित्वा तदां क्षपणकान्स्ववशं वितेने
नागेद्रदे (1) भुजगनाथनमस्य तीर्थे।।"

श्री मुनिसुन्दर सूरी ने अपनी गुर्वावली में इस श्लोक के भाव में 'क्षपणकान्' की जगह 'दिग्वसनान्' पद का प्रयोग करके इसे दिगम्बर मुनि के लिये प्रयुक्त हुआ स्पष्ट कर दिया है।[126] श्वेताम्बराचार्य हेमचन्द्र ने अपने कोष में 'नग्न' का पर्यायवाची शब्द 'क्षपणक' भी दिया है।[127] यही बात श्रीधरसेन के कोष से भी प्रकट है।[128] अजैन शास्त्रों में भी 'क्षपणक' शब्द दिगम्बर जैन साधुओं के लिए व्यवहृत हुआ मिलता है। 'उत्पल' कहता है -[129]

---

120 अष्ट, पृ. ६७
121 वृजैश, पृ ४
122 अष्ट, पृ ३७
123 मूला, पृ ४५
124 'परमात्म प्रकाश' - रश्रा पृ १४०
125 रश्रा, पृ १३६
126 रश्रा, पृ १४०
127 "नग्नो विवासिसि मागधे च क्षपणके"।
128 "नगनसिषु विवस्त्रे स्यातपुंसि क्षपणवन्दिनो।"
129 IHQ III, 245

"निर्ग्रन्थो नग्न: क्षपणक।"

"अद्वैतब्रह्मसिद्धि" (पृ 169) से भी यही प्रकट है:-

"क्षपणका जैन मार्ग सिद्धान्तप्रवर्त का इतिकेचिन।"

"प्रबोधचंद्रोदय नाटक"(अंक3) में भी यही निर्दिष्ट किया गया है:-[130]

"क्षपणकवेशो दिगंबर सिद्धान्त:।"

"पंचतंत्र अपरीक्षितकारकतंत्र"[131] "दशकुमार चरित्र"[132]

तथा "मुद्राराक्षस नाटक"[133] में भी "क्षपणक" शब्द दिगम्बर मुनि के लिए व्यवहृत हुआ मिलता है। मोनियर विलियम्स के 'संस्कृतकोष' में भी इसका अर्थ यही लिखा है।[134]

इस प्रकार उपरोक्त नामों से दिगम्बर जैन मुनि प्रसिद्ध हुये मिलते हैं। अतएव इनमें से किसी भी शब्द का प्रयोग दिगम्बर मुनि का द्योतक ही समझना चाहिये।

जगतगुरु कब निज आतम ध्याऊँ.....

जगतगुरु कब निज आतम ध्याऊँ।।टेक।।

नग्न दिगम्बर मुद्रा धरिके, कब निज आतम ध्याऊँ।
ऐसी लब्धि होय कब मोकूँ, जो निजवाँछित पाऊँ।।१।।
कब गृहत्याग होऊँ बनवासी, परम पुरुष लौ लाऊँ।
रहूँ अडोल जोड़ पद्मासन, कर्म कलंक खिपाऊँ।।२।।
केवलज्ञान प्रगट करि अपनो, लोकालोक लखाऊँ।
जन्म-जरा-दु:ख देत तिलांजलि, हो कब सिद्ध कहाऊँ।।३।।
सुख अनन्त बिलसूँ तिहि थानक, काल अनन्त गमाऊँ।
'मानसिंह' महिमा निज प्रगटे, बहुरि न भव में आऊँ।।४।।

---

130 J G XIV 48

131 (क्षपणक विहार गतवा) --"एकाकीगृहसंत्यत पाणिपात्रों दिगम्बर।

132 द्वितीय उच्छ्वास वीर वर्ष २ पृ ३१६

133 मुद्राराक्षस अंक ४ -वीर, वर्ष ४ पृ ४३०

134 "Ksapaaka is a religious mendicant, specially a Jain mendicant who wears no garment" XX Monier william's SanskritDictionary p 326

[9]

इतिहासातीतकाल में दिगम्बर मुनि।

"आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः
रूपमुपसदा मेतन्तिस्त्रो रात्रीः सुरासुता।।"

- यजुर्वेद अ. 19 मंत्र 14

भारतवर्ष का ठीक ठीक इतिहास ईस्वी पूर्व आठवी शताब्दि तक जाना जाता है। इसके पहले की कोई भी बात विश्वसनीय नहीं मानी जाती, यद्यपि भारतीय विद्वान अपनी-अपनी धार्मिक वार्ता इस काल से भी बहुत प्राचीन मानते और उसे विश्वसनीय स्वीकार करते हैं। उनकी यह वार्ता 'इतिहासातीत काल' की वार्ता समझनी चाहिये दिगम्बर मुनियों के विषय में भी यही बात है। भगवान ऋषभदेव द्वारा एक अज्ञात अतीत में दिगम्बर मुद्रा का प्रचार हुआ और तबसे वह ईस्वी पूर्व आठवीं शताब्दि तक ही नहीं बल्कि आजतक निर्बाध प्रचलित है। दिगम्बर मुद्रा के इस इतिहास की एक सामान्य रुपरेखा यहा प्रस्तुत करना अभीष्ट है।

इतिहासातीत काल में प्राचीन जैन शास्त्र अनेक जैन सम्राट और जैन तीर्थकरों का होना प्रगट करते हैं और उनके द्वारा दिगम्बर मुद्रा का प्रचार भारत में ही नहीं बल्कि दूर दूर देशों तक हो गया था। दिगम्बर जैन आम्नायके प्रथमानुयोग सम्बन्धी शास्त्र इस कथा वार्ता से भरे हुये हैं, उनको हम यहा दुहराना नहीं चाहते, प्रत्युत जैनेतर शास्त्रों के प्रमाणों को उपस्थित करके हम यह सिद्ध करना चाहते हैं कि दिगम्बर मुनि प्राचीन काल से होते आये हैं और उनका विहार सर्वत्र निर्वाध रुप में होता रहा है।

भारतीय साहित्य में वेद प्राचीन ग्रन्थ माने गये हैं। अत सबसे पहिले उन्हीं के आधार से उक्त व्याख्या को पुष्ट करना श्रेष्ट हैं। किन्तु इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि वेदों के ठीक-ठीक अर्थ आज नहीं मिलते और भारतीय धर्मों के पारस्परिक विरोध के कारण बहुत से ऐसे उल्लेख उनमें से निकाल दिये गये अथवा अर्थ बदलकर रक्खे गए है जिनसे वेद-ब्राम्हय सम्प्रदायों का समर्थन होता था। इसी के साथ यह बात भी है कि वेदों के वास्तविक अर्थ आज ही नही मुद्दतों पहले लुप्त हो चुके थे[135] और यही कारण है कि एक ही वेद के अनेक विभिन्न भाष्य मिलते हैं। अत वेदों के मूल वाक्यों के अनुसार उक्त व्याख्या की पुष्टि करना यहा अभीष्ट है।

---

135 ई पूर्व ७ वीं शताब्दिका वैदिकविद्वान् कौत्स्य वेदों को अनर्थक बतलाता है। [अनर्थ का हि मन्त्रा ।, यास्क, निरुक्त १५-१] यास्क इसका समर्थन करता है। [निरक्त १६/२] देखो 'Asure India' p IV

"यजुर्वेद" अ 19 मन्त्र 14 में, जो इस परिच्छेद के आरम्भ में दिया हुआ है, अन्तिम तीर्थंकर महावीर का स्मरण नग्न विशेषण के साथ किया गया है। 'महावीर' और 'नग्न' शब्द जो उक्त मन्त्र में प्रयुक्त हुये हैं उनके अर्थ कोष ग्रन्थों में अन्तिम जैन तीर्थंकर और दिगम्बर ही मिलते हैं।[136] इसीलिये इस मन्त्र का सम्बन्ध भगवान महावीर से मानना ठीक है। वैसे बौद्ध साहित्यादि से स्पष्ट है कि महावीर स्वामी नग्न साधु थे। इस अवस्था मं उक्त मन्त्र में 'महावीर' शब्द 'नग्न' विशेषण सहित प्रयुक्त हुआ इस बात का द्योतक है कि उसके रचयिता को तीर्थंकार महावीर का उल्लेख करना इष्ट है। इस मन्त्र में जो शेष विशेषण हें वह भी जैन तीर्थं करके सर्वथा योग्य हैं और इस मन्त्र का फल भी जैन शास्त्रानुकूल है। अत यह मन्त्र भ महावीर को दिगम्बर मुनि प्रगट करता है।

किन्तु भगवान महावीर तो ऐतिहासिक महापुरुष मान लिये गये हैं, इसलिये उनसे पहले के वैदिक उल्लेख प्रस्तुत करना उचित हे। सौभाग्य से हमें 'ऋक्संहिता' (10/36-2) में ऐसा उल्लेख निम्न शब्दों में मिल जाता है -

"मुनियो वातवसना ।"

भला यह वातवसन-दिगम्बर मुनि कौन थे। हिन्दू पुराण ग्रन्थ बताते हैं कि वे दिगम्बर जैन मुनि थे जैसे कि हम पहले देख चुके हैं। और भी देखिये, श्रीमद्‌भागवत् में तीर्थंकर ऋषभदेव ने जिन ऋषियों को दिगम्बरत्व का उपदेश दिया था, वे 'वातरशनाना श्रमण' कहे गये हैं।[137] ओ अल्ब्रेट वेबर भी उक्त वाक्य को दिगम्बर जैन मुनियों के लिये प्रयुक्त हुआ व्यक्त करते हैं।[138]

इसके अतिरिक्त अथर्ववेद (अ 15) में जिन 'व्रात्य' पुरुषों का उल्लेख है,वे दिगम्बर जैन ही है क्योंकि वात्य 'वैदिक सस्कार हीन' बताये गये हैं[139] और उनकी क्रियायें दिगम्बर जैनों के समान हैं। वे वेदविरोधी थे। झल्ल, मल्ल, लिच्छवि, ज्ञातृ, करण खस और द्राविड कुए व्रात्य क्षत्री की सन्तान बताये गये है[140] और ये सब प्राय जैनधर्म भुक्त थे। ज्ञातृवंश में तो स्वय भगवान् महावीर का जन्म हुआ था। तथापि मध्यकाल में भी जैनी 'वृत्ति'(Verteis) नामसे प्रसिद्ध रह चुके हैं, जो 'व्रात्य' से मिलता जुलता शब्द है।[141] अच्छा तो इन जैन धर्मभुक्त व्रात्यों में दिगम्बर जैन मुनिका होना लाजमी है।[142] 'अथर्ववेद'

---

136 वेजै, पृ, ५५-५६

137 वेजै, पृ, ३

138 IA, Vol XXX, p 280

139 अमरकोष २/८ व मनु, १०/२०, सायणाचार्य भी यही कहते हैं - "व्रात्यो नाम उपनयनादि संस्कारहीन पुरुष । सोऽर्थाद्विहिता क्रिया कर्तु नाधिकारी। इत्यादि" -अर्थवेद संहिता पृ २६६

140 मनु, १०/२२

141 सूस पृ ३६६ व ३६६

142 "वात्य" जैनी हैं, इसके लिए "भ पार्श्वनाथ" की प्रस्तावना देखिए।"

भी इस बात को प्रगट करता है। उसमें व्रात्य के दो भेद 'हीन व्रात्य' और 'ज्येष्ठ व्रात्य' किये हैं। इनमें ज्येष्ठव्रात्य दिगम्बर मुनि का द्योतक है, क्योंकि उसे 'समनिचमेढ्र' कहा गया है, जिसका भाव होता है। 'अपेतप्रजनना'।[143] यह शब्द 'अघ्नी' शब्द के अनुरुप है और इससे ज्येष्ठव्रात्य का दिगम्बरत्व स्पष्ट है।

इस प्रकार वेदों से भी दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व सिद्ध है।[144] अब देखिये उपनिषद् भी वेदों का समर्थन करते हैं। 'जाबालोपनिषत्' निग्रन्थ शब्द का उल्लेख करके दिगम्बर साधु का अस्तित्व उपनिषद् काल में सिद्ध करता है-

"यथाजातरुपधरो निग्रन्थो निष्परिग्रह..
शुक्लध्यानपरायणः ..।" (सूत्र 6)

निर्गन्थ साधु यथाजात रुप धारी तथा शुक्लध्यान परायण होता है। सिवाय निग्रन्थ (जैन) मार्ग के अन्यत्र कहीं भी शुक्ल ध्यान का वर्णन नहीं मिलता, यह पहले भी लिखा जा चुका है। 'मैत्रेयोपनिषद्' में 'दिगम्बर' शब्द का प्रयो.. भी इसी बात का द्योतक है।[145] 'मुण्डकोपनिषद्' की रचना भृगु अंगारिस नामक एक भृष्ट दिग जैन मुनि द्वारा हुई थी और उसमें अनेक जैन मान्यतायें तथा पारिभाषिक शब्द मिलते हैं। 'निर्गन्थ' शब्द, जो खास जैनों का पारिभाषिक शब्द है, इसमें व्यवहृत हुआ है और उसका विशेषण केशलौंच (शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णं) दिया है[146]। तथा 'अरिष्टनेमि' का स्मरण भी किया है, जो जैनियों के बावीसवें तीर्थंकर है।[147] इससे भी उस काल में दिगम्बर मुनियों का होना प्रमाणित है।

अब 'रामायणकाल' में भी दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व को देखिये।'रामायण' के 'बालकाण्ड'(सर्ग 14 श्लो 22) में राजा दशरथ श्रमणों को आहार देते बताये गये हैं ("तापसा भुञ्जते चापि श्रमणा भुञ्जते तथा।") और 'श्रमण' शब्द का अर्थ 'भूषणटीका' में

---

143 भपा , प्रस्तावना पृ ४४-४५

144 जैन ग्रन्थ कारप्रात स्मरणीय स्व प टोडरमल्ल जी ने आज से लगभग दो-ढाई सौ वर्ष पहले (।) निम्न वेद मत्रों का उल्लेख अपने ग्रथ मोक्षमार्ग प्रकाश में किया है और ये भी दिगम्बर मुनियों के द्योतक हैं -

१ ऋग्वेद में आया है-"ओ३म् त्रैलौक्य प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशति तीर्थकान् ऋषभाद्या वर्द्धमातान्तान् सिद्धान् शरण प्रपद्य। ओ३म् पवित्रं नग्नमुपविप्रसामहे एषां नग्ना जातिर्येषां वीरा इत्यादि।"

२ यजुर्वेद में है- ओ३म् नमो अर्हतो ऋषभो ॐ ऋषभपवित्रं पुरुहूतमध्वरं यज्ञेषु नग्न परममाह सस्तुत वह शत्रु जयंत पशुरिंद्र माहूतिरिति स्वाहा।"-ॐ नग्नं सुधीर दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातन उपैमि वीर पुरूषम है तमादित्य वर्णा तमस. परस्तात स्वाहा।" (पृ २०३)

145 "देशकालविमुक्तोऽस्मि दिगम्बर सुखोस्म्यहम्।"--दिमु, पृ १०

146 वीर, वर्ष ८ पृ २५३

147 स्वस्ति मसताचर्यो अरिष्टनेमि । --ईशाद्य, पृ १४

दिगम्बर मुनि किया गया है[148], जो ठीक है, क्योंकि दिगम्बर मुनि का एक नाम 'श्रमण' भी है। तथापि जैन शास्त्र राजा दशरथ और रामचन्द्र जी आदि को जैन भक्त प्रगट करते है[149]। 'योगवाशिष्ट' में रामचन्द्र जी 'जिन भगवान' के समान होने की इच्छा प्रगट करके अपनी जैन भक्ति प्रगट करते है।[150] अत रामायण के उक्त उल्लेख से उस काल में दिगम्बर मुनियों का होना स्पष्ट है।

"महाभारत" में भी 'नग्नक्षपणक' के रुप में दिगंबर मुनियों का उल्लेख मिलता है[151], जिससे प्रमाणित है कि "महाभारतकाल" में भी दिगम्बर जैन मुनि मौजूद थे। जैनशास्त्रानुसार उस समय स्वय तीर्थंकर अरिष्टनेमि विद्यमान थे।

हिन्दू पुराण ग्रथ भी इस विषय में वेदादिग्रंथों का समर्थन करते हैं। प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभदेव जी को श्रीमद्भागवत और विष्णुपुराण दिगम्बर मुनि प्रगट करते हैं, वह हम देख चुके। अब 'विष्णुपुराण' में और भी उल्लेख है। वह देखिये[152]। वहा मैत्रेय पाराशरऋषि से पूछते है कि 'नग्न' किसको कहते हैं ?' उत्तर में पाराशर कहते है कि "जो वेद को न माने वह नग्न हैं।" अर्थात वेदविरोधी नगे साधु 'नग्न' हैं। इस संबध में देव और असुर सग्राम की कथा कहकर किस प्रकार विष्णु के द्वारा जैन धर्म की उत्पत्ति हुई, यह वह कहते हैं। इसमें भी जैन मुनि का स्वरुप 'दिगबर' लिखा है -

"ततो दिगम्बरो मुंडो वर्हिपत्र धरो द्विज।"

देवासुर युद्ध की घटना इतिहासातीत काल की है। अत इस उल्लेख से भी उस प्राचीन काल में दिगबर मुनि का अस्तित्व प्रमाणित होता है। तथा वह निर्बाध विहार करते थे, यह भी इससे प्रगट है क्योंकि इसमें कहा गया है कि वह दिगबर मुनि नर्मदा तट पर स्थित असुरों के पास पहुंचा और उन्हें निजधर्म में दीक्षित कर लिया।[153]

'पद्मपुराण' प्रथम सृष्टि खड 13 (पृ 33) पर जैन धर्म की उत्पत्ति के सबन्ध में एक ऐसी ही कथा है, जिसमें विष्णु द्वारा मायामोह रुप दिगबर मुनि द्वारा जैन धर्म का निकास हुआ बताया गया है.-

वृहस्पति साहाय्यार्थं विष्णुना मायामोह समुत्पादवम्
दिगम्बरेण मायामोहेन दैत्यान् प्रति जैनधर्मोपदेश दानवाना
मायामोह मोहितानां गुरुणा। दिगंबर जैनधर्म दीक्षा दानम्।

मायामोह को इसमें "योगी दिगम्बरो मुण्डो बर्हिपत्रधरो ह्य" लिखा है[154]। इससे भी उक्त दोनों बातों की पुष्टि होती है।

---

148 "श्रमणा दिगम्बश श्रमणा वातवसना।"
149 पद्मपुराण देखिए
150 योगवासिष्ट अ १५ श्लो ८
151 आदिपर्व, अ ३ श्लो २६-२७
152 विष्णुपुराण तृतीयांश अ १७ व १८ --वेजै, पृ २५ व पुरातत्व ४/१८०
153 पुरातत्व ४/१७६
154 वेजै, पृ १५

"नग्नरुपी महाकायः सितमुण्डो महाप्रभः।
मार्ज्जनीं शिखिपत्राणां कक्षायां सहिधारयन्।।
गृहीत्वा पानपात्रश्च नारिकेल मयंकरे।
पठमानो मरच्छास्त्रं वेदशास्त्र विदूषकम्।।
यत्रवेनो महाराजस्तत्रोपायात्त्वरान्वितः।
सभायां तस्य वेनास्य प्रविवेश सपापवान्।।"

इसी 'पद्मपुराण' में (भूमिखंड अ 66)[155] में राजा वेण की कथा है। उसमें लिखा है कि एक दिगंबर मुनि ने उस राजा को जैन धर्म में दीक्षित किया था। मुनि का स्वरूप यूं लिखा है -

वह नग्न साधु महाराज वेण की राजसभा में पहुच गया और धर्मोपदेश देने लगा[156] इससे प्रगट है कि दिगंबर मुनि राजसभा में भी वे रोक टोक पहुंचते थे। वेण ब्रहमा से छठी पीढ़ी में थे।[157] इसलिए वह एक अतीव प्राचीनकाल में हुये प्रमाणित होते हैं।

'वायुपुराण' में भी निग्रन्थ श्रमणों का उल्लेख है कि श्राद्धमें इनको न देखना चाहिये।[158]

'स्कंधपुराण' (प्रभासखड के वस्त्रापथ क्षेत्र महात्म्य अ 16 पृ 221) में जैनतीर्थंकर नेमिनाथ को दिगम्बर शिव के अनुरुप मानकर जाप करने का विधान है -[159]

"वामनोपि ततश्चक्रे तत्र तीर्थावगाहनम्।
वादृग्रूप' शिवोदृष्ट' सूर्य बिम्बे दिगम्बर।। 94।।
पद्मासन स्थितः सौम्य स्तथातं तत्र संस्मरन्।
प्रतिष्ठाप्य महामूर्ति पूजयामासवासरम्।। 95।।
मनोभीश्ठार्थ सिद्धयर्थ तत सिद्धमवाप्तवान्।
नेमिनाथ शिवेत्येर्थ नाम चक्र शवामन ।। 96।।"

---

155 R C Dutt, Hindu Shastras, pt VIII pp 213 22 व JG XIV 89

156 उसने बताया कि मेरे मत में--
"अर्हन्तो देवता यत्र निग्रन्थो गुरुरुच्यते।
दया वै परमो धर्मस्तत्र मोक्ष प्रदृश्यते।"
यह सुनकर वेण जैनी हो गया। (एवं वेणस्य वै राज्ञ सृष्टिरेम्ब महात्मन'। धर्माचार परित्यज्य कर्थ पापे मतिर्भवित्।।) जैन सम्राट् खारवेल के शिलालेख से भी राजा पेण का जैनी होना प्रमाणित है। (जर्नल औव दी बिहार एण्ड ओडीसा रिसर्च सोसाइटी, भा १३ पृ २२४)

157 JG XIV 162   158 पुरातत्व, पृ ४ पृ १८१   159 वेजै., प ३४।

158 महावग्ग (१/२२-२३ SBE p 144) में लिखा है कि बुद्ध राजगृह में जब पहले पहले धर्म प्रचार को आए तो लाठी वन में "सुप्पतित्थ्य" के मंदिर में ठहरे। इसके बाद इस मन्दिर में ठहरने का उल्लेख नहीं मिलता। इसका यही कारण है कि इस जैन मन्दिर के प्रबन्धकों ने जब यह जान लिया कि म बुद्ध अब जैनमुनि नहीं रहे तो उन्होंने उनका आदर करना रोक दिया। विशेष के लिए देखा भमबु, पृ ४०-४१

159 उपक आजीवक अनन्तजिनको अपना गुरु बताता है। आजीविकोने जैनधर्म से बहुत कुछ लिया था। अत यह अनन्तजिन तीर्थंकर ही होना चाहिए। आरियै-परियेषण-सुत्त IHQ III, 247

इस प्रकार हिन्दूपुराण ग्रन्थ भी इतिहासातीतकाल में दिगम्बर जैन मुनियों का होना प्रमाणित करते हैं।

बौद्ध शास्त्रों में भी ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि जो भगवान् महावीर पहले दिगम्बर मुनियों का होना सिद्ध करते हैं। बौद्ध साहित्य में अन्तिम तीर्थंकर निग्रन्थ महावीर के अतिरिक्त श्री सुपार्श्व[160] अनन्तजिन[161] और श्री पुष्पदन्त[162] के भी नामोंल्लेख मिलते है यद्यपि उनके सम्बन्ध में वह स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि वे जैन तिर्थंकर और नग्न थे, किन्तु जब जैन साहित्य में उस नाम के दिगम्बर वेषधारी तीर्थंकर महामुनीश मिलते हैं, तब उनहें जैन और नग्न मानना अनुचित नही है। वैसे बौद्ध साहित्य भ पार्श्वनाथ के तीर्थवर्ती मुनियों को नग्न प्रगट करता है[163]। अत इस श्रोत से भी प्राचीन काल में दिगम्बर मुनियों का होना सिद्ध है।

इस अवस्था में जैन शास्त्रों का यह कथन विश्वसनीय ठहरता है कि भ. ऋषभनाथ के समय से बराबर दिगम्बर जैन मुनि होते आ रहे हैं और उनके द्वारा जनता का महत कल्याण हुआ है। जेनतीर्थंकर सबही राजपुत्र थे और बडे-बडे राज्यों को त्यागकर दिगम्बर मुनि हुये थे। भारत के प्रथम सम्राट भरत जिनके नाम से यह देश भारत वर्ष कहलाता है, दिगम्बर मुनि हुये थे। उनके भाई श्रीबाहुतलिजी अपनी तपस्या के लिए प्रसिद्ध हैं। तपस्वी रुप में उनकी महान् मूर्ति आज भी श्रवणवेलगोल में दर्शनीय वस्तु है। उनकी इस महाकाय नग्नमूर्ति के दर्शन करके स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध भारतीय तथा विदेशी अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं। रामचन्द्रजी, सुग्रीव, युधिष्ठिर आदि अनेक दिगम्बर मुनि इस काल में हुये हैं, जिनक भव्य चरित्रों से जैन शास्त्र भरे हुये हैं। साराशत गत काल में भारत में दिगबरत्व अपनी अपूर्व छटा दर्शा चुका है।

---

160 ‡ 'महावग्ग' (१।२२-२१ SBE p 144) में लिखा है कि बुद्ध राजगृहमें जब पहले पहले धर्म प्रचारको आएतो लाठी वनमें "सुप्पतित्थ" के मंदिरमें ठहरे। इसके बाद इस मन्दिर में ठहरनेका उल्लेख नहीं मिलता। इसका यही कारण है कि इस जैन मन्दिरके प्रबन्धकोंने जब यह जान लिया कि म० बुद्ध अब जैनमुनि नहीं रहे तो उन्होंने उनका आदर करना रोक दिया। विशेष के लिए देखो भमबु० पृ० ४०-४१

161 उपक आजीवक अनन्तजिनको अपना गुरु बताता है। आजीविकाने जेनधर्म स बहुत कुछ लिया था। अत यह अनन्तजिन तीर्थंकर ही होना चाहिए। आरिय-परियेषण सुत्त IHQ III, 247

162 महावस्तु में पुष्पदन्तको एक बुद्ध और ३२ लक्षशयुक्त् महापुरुष बताया है। ASM p 30

163 महावग्ग [१-७०-३] में है कि बौद्ध भिक्षुओं ने नगे और भोजन पात्रहीन मनुष्यों को दीक्षितकर लिया, जिस पर लोग कहने लगे कि बौद्ध भी "तित्थियों" की तरह करने लगे। तित्थिय म बुद्ध और भ महावीर से प्राचीन साधु और खासकर दि. जैन साधु थे। इसलिये इन्हें भ पार्श्वनाथ के तीर्थका मुनि मानना ठीक है। भमबु., पृ २३६-२३७ व जैसिभा, १/२-३/२४-२६, तथा IA, august 1930

[10]
भ. महावीर और उनके समकालीन दिगम्बर मुनि!

'निगण्ठो, आवुसो नाथपुत्तो लव्वञ्ञु, सव्वदस्सावी अपरिसेस ञाण दस्सन परिजानातिः।' - मज्झिमनिकाय।

'निगण्ठो नातपुत्तों सघी चेव गणी च गणाचार्यो च ञातो यसर्सीतित्थकरों साधु सम्मतो बहुजनस्स रत्तस्सू चिर पब्बजितो अद्धगतो वयो अनुप्पत्ता। - दीघनिकाय!

भगवान् महावीर वर्द्धमान् ज्ञातृवशी क्षत्रियों के प्रमुख सुपुत्र थे। राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणी त्रिशला के सुपुत्र थे। रानी त्रिशला वज्जियन राष्ट्रसघ के प्रमुख लिच्छवि अग्रणी राजा चटक की सुपुत्री थीं। लिच्छवि क्षत्रियो का आवास समृद्धिशाली नगरी वैशाली में था। ज्ञातृक क्षत्रियाँ की बसती भी उसी के निकट थी। कुण्डग्राम और कोल्लगसन्निवेश उनके प्रसिद्ध नगर थे। भगवान् महावीर वर्द्धमान का जन्म कुण्डग्राम में हुआ था और वह अपन ज्ञातृवश के कारण "ज्ञातृपुत्र" के नाम से भी प्रसिद्ध थे। बौद्ध ग्रन्थों में उनका उल्लेख इसी नाम से हुआ मिलता है और वहा उन्हें भ गौतम बुद्ध का समकालीन बताया गया है। दूसरे शब्दों मे कहे तो भ महावीर आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले इस धरातल को पवित्र करते थे और वह क्षत्री राजपुत्र थे।[164]

भरी जवानी में ही महावीरजी ने राजपाटका मोह त्याग कर दिगम्बर मुनि का वेष धारण किया था और तीस वर्ष तक कठिन तपस्या करके वह सर्वज्ञ और सर्वदर्शी तीर्थंकर हो गये थे। 'मज्झिमनिकाय' नामक बौद्ध ग्रन्थ में उन्हें सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और अशेष ज्ञान तथा दर्शन का ज्ञाता लिखा है[165]। तीर्थंकर महावीर न सर्वज्ञ होकर देश-विदेश मे भ्रमण किया था। और उनके धर्म प्रचार से लोगों का आत्मकल्याण हुआ था। उनका विहार सघ सहित होता था और उनकी विनय हर कोई करता था। बौद्ध ग्रथ 'दीघनिकाय' मे लिखा है कि "निग्रन्थ ज्ञातृपुत्र (महावीर) सघ के नता हैं, गणाचार्य हैं, दर्शन विशेष के प्रणेता हैं, विशेष विख्यात है तीर्थंकर हैं,बहु मनुष्यों द्वारा पूज्य हैं, अनुभवशील्न हैं, बहुत काल से साधु अवस्था का पालन करते हैं और अधिक वय प्राप्त हे।"[166]

जैन शास्त्र 'हरिवश पुराण' में लिखा है कि "भगवान महावीर ने मध्य के (काशी, कौशल, कौशल्य, कुसध्य, अश्वष्ट, त्रिगर्तपञ्चाल, भद्रकार, पाटच्चार, मौक, मत्स्य,

---

164 विशेष के लिये हमारा "भगवान महावीर और म बुद्ध" नामक ग्रन्थ देखो।

165 मज्झिमनिकान (P T S) भा १ पृ. ६२-६३

166 दीघनिकाय (P T S) भा १ पृ ४८-४६

कन्नीय, सूरसेन एवं वृकार्थक), समुद्रतट क (कलिंग, कुरुजागल, कैकेय, आत्रेय, कांबोज, बाल्हीक, यवनश्रुति, सिंधु, गाधार, सौवीर, सूर,भीरु, दशेरुक, वाडवान, भारद्वाज और कायतोय) और उत्तर दिशा के (तार्ण,कार्ण प्रच्छाल आदि) देशों में विहार कर उन्हें धर्म की ओर ऋजु किया था।"[167]

भगवान् महावीर का धर्म अहिंसा प्रधान तो था ही किन्तु उन्होंने साधुओं के लिये दिगम्बरत्व का भी उपदेश दिया था[168]। उन्होंने स्पष्ट घोषित किया था कि जैनधर्म में दिगम्बर साधु ही निर्वाण प्राप्त कर सकता है। बिना दिगम्बर वेष धारण किये निर्वाण प्राप्त कर लेना असंभव है। और उनके इस वैज्ञानिक उपदेश का आदर आबाल-वृद्ध-वनिता ने किया था।

विदेह में जिस समय भ महावीर पहुचे तो उनका वहा लोगों ने विशेष आदर किया। वैशाली में उनके शिष्यों की सख्या अधिक थी। स्वय राजा चेटक उनका शिष्य था। अंगदेश में जब भगवान पहुचे तो वहा के राजा कुणिक अजात शत्रु क साथ सारी प्रजा भगवान की पूजा करने के लिये उमड पडी। राजाकुणिक कौशाम्बी तक महावीर स्वामी को पहुंचाने गये। कौशाम्बी नरेश ऐसे प्रतिबुद्ध हुये कि वह दिगम्बर मुनि हो गये। मगधदेश में भी भगवान महावीर का खूब विहार हुआ था उनका अधिक समय राजगृह में व्यतीत हुआ था। सम्राट श्रेणिक बिम्बसार भगवान् के अनन्य भक्त थे और उन्होंने धर्मप्रभावना के अनेक कार्य किये थे। श्रेणिक के अभयकुमार, वारिषेण आदि कई पुत्र दिगम्बर मुनि हो गये थे। दक्षिण भारत में जब भगवान का विहार हुआ तो हेमाग देश के राजा जीवधर दिगम्बर मुनि हो गये थे। इस प्रकार भगवान् का जहा-जहा विहार हुआ वहां वहां दिगबर धर्म का प्रचार हो गया। शतानीक, उदयन, आदि राजा अभय, नदिषेणा आदि राजकुमार शालिभद्र धन्यकुमार, प्रीतकर आदि धनकुबेर, इन्द्रभूति गौतम आदि ब्राहम्ण विद्वान्, विद्युच्चर आदि सदृश पतितात्मायें - अरे न जान कौन कौन भगवान् महावीर की शरण में आकर मुनि हो गये।[169]

सचमुच अनेक धर्म पिपासु भगवान के निकट आकर धर्मामृत पान करते थे। यहा तक कि स्वय म गौतमबुद्ध और उनके सघ पर भगवान के उपदेश का प्रभाव पडा था। बौद्ध भिक्षुओं ने भी नग्नता धारण करने का आग्रह म बुद्ध से किया था[170]। इस पर यद्यपि म बुद्ध ने नग्न वेष को बुरा नही बतलाया, किन्तु उससे कुछ ज्यादा शिष्य पाने का

---

167 हरिवशपुराण (कलकत्ता) पृ १८

168 भमबु ५४-८० व ठाणा, पृ ८१३करना प्रकृति को कोसना है। उस पर म बुद्ध के जमाने में तो उसका विशेष प्रचार था।

169 भमबु पृष्ट ६५-६६

170 भमबु पृ १०२-११०

लाभ न देखकर उसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया[171] । पर तो भी एक समय नैपाल के तांत्रिक बौद्धों में नग्न साधुओं का अस्तित्व हो गया था[172]। सच बात तो यह है कि नग्नवेष को साधुपद के भूषण रूप में सबही को स्वीकार करना पड़ता है। उसका विरोध अभी म महावीर ने धर्मोपदेश देना प्रारभ नहीं किया था कि प्राचीन जैन और आजीविक आदि साधु नंगे घूमकर उसका प्रचार कर रहे थे[173]

171. महावग्ग (८-२८-१) में है कि "एक बौद्ध भिक्षु ने म बुद्ध के पास नंगे हो आकर कहा कि भगवन् ने संयमी पुरुष की बहुत प्रशंसा की है, जिसने पापों को धो डाला है और कषायों को जीत लिया है तथा जो दयाजु, विनयी और साहसी है। हे भगवन् ! यह नग्नता कई प्रकार से संयम और संतोष को उत्पन्न करने में कारणभूत है- इससे पाप मिटता, कषाय दबते, दयाभाव बढता तथा विनय और उत्साह आता है। प्रभो ! यह अच्छा हो यदि आप भी नग्न रहने की आज्ञा दें।" बुद्ध ने उत्तर में कहा कि "भिक्षुओं के लिए यह उचित न होगी-एक श्रमण के लिये यह अयोग्य है। इसलिये इसका पालन नहीं करना चाहिये। हे मूर्ख ! तित्थियों की तरह तू भी नग्न कैसे होगा ? हे मूर्ख, इससे नये लोग भी दीक्षित न होंगे।"

172 नेपाल में गूढ और तान्त्रिक नामकी एक बौद्धधर्म की शाखा है। मि हाग्सन ने लिखा है कि, इस शाखा में नग्न यति रहा करते हैं।"-जैसिभा ,१/२-३ पृ २५

173 जेम्स एल्वी, प्रो जैकोबी तथा डा बुल्हर इस ही बात का समर्थन करत है कि दिगम्बरत्व म बुद्ध के पहल से प्रचलित था और आजीविक आदि तीर्थको पर जैनधर्म का प्रभाव पडा था: यथा-

"In James d' Alwis' paper (Ind Anti VIII) on the Six Turthakas the "Digambaras" appear to have been regarded as an old order of ascetics and all of these heretical teachers betray the influence of Jainsm in their doctrines "---IA , IX, 161

Prof Jacobi remarks "The preceding four Tirthakas (Makkhali Goshal etc) appear all to have adopted some or other doctrines or practices, which makes part of the Jaina system, probably from the Jains themselves. It appears from the preceding remarks that Jaina ideas and practices must have been current at the time of Mahavira and independently of him This combined with other arguments, leads us to the opinion that Nirgranthas were really in existence long before Mahavira,"-----(IA IX, 162)

Prof T W Rhys Davids notes in the "Vinaya Texts" that "The sect now called Jains are divided into two classes, Digambara & Swetambara, the *latter of which eat naked They are known to be the successors of the* school called Niganthas in the Pali Pitakas " -S B E XII, 41

Dr Buhler writes, "From Buddhist accounts in their canonical works as well as in other books, it may be seen that this rival (Mahavira) was a dangerous and influential one and that even in Buddha's time his teaching had spread considerably Also they say in their description of other rivals of Buddha that these, in order to gain esteem, copied the Nirgranthas and went unclothed, or that they were looked upon by the

people as Nirgrantha holy ones, because they happened to lost their clothes "---AISJ ,p 36

देखिये बौद्धग्रन्थों के आधार से इस विषय में डॉ स्टीबेन्सन लिखते हैं -[174]

"(एक तीर्थक नग्न हो गया) लोग उसके लिये बहुत से वस्त्र लाये, किन्तु उनको उसने स्वीकार नहीं किया। उसने यही सोचा कि, यदि मैं वस्त्र स्वीकार करता हू तो संसार में मेरी अधिक प्रतिष्ठा नहीं होगी। वह कहने लगा कि लाज रक्षण के लिए ही वस्त्रधारण किया जाता है और लज्जा ही पापका कारण है, हम अर्हत् है, इसलिए विष्यवासना से अलिप्त होने के कारण हमें लज्जा की कुछ भी परवाह नहीं। इसका यह कथन सुनकर बडी प्रसन्नता से वहा इसके पाच सौ शिष्य बन गए, बल्कि जम्बूद्वीप में इसी को लोग सच्चा बुद्ध कहने लगे।

यह उल्लेख सभवत मक्खलि गोशाल अथवा पूर्ण काश्यप के सम्बन्ध में है। ये दोनों साधु भ पार्श्वनाथ की शिष्यपरपरा के मुनि थे।[175] मक्खलि गोशाल भ पार्श्वनाथ की शिष्यपरपरा के मुनि थे। मक्खलि गोशाल भ महावीर से रुष्ट होकर अलग धर्मप्रचार करने लगा था वह "आजीविक" सप्रदाय का नेता बन गया था। इस सप्रदाय का निकास प्राचीन जैन धर्म से हुआ था[176] और इसके साधु भी नग्न रहते थे[177] पूरणकाश्यप गोशालका साथी और वह भी दिगम्बर रहा था। सचमुच दिगम्बर जैनधर्म पहले से ही चला आ रहा था, जिसका प्रभाव इन लोगों पर पडा था।

उस पर, भगवान महावीर के अवतीर्ण होते ही दिगम्बरत्वका महत्व और भी बढ गया। वहातकंकि दूसरी सप्रदायों के लोग भी नग्न वेष धारण करने को लालायित हो गये, जैसे कि ऊपर प्रकट किया गया है।

बौद्धशास्त्रों में निग्रन्थ (दिगम्बर) महामुनि महावरी के विहार का उल्लेख भी मिलता है। मज्झिम निकाय के अभय राजकुमार सुत्त से प्रगट है कि वे राजगृह मे एक समय रहे थे। [178] उपालीसुत्त से भ महावीर का नालन्द में विहार करना स्पष्ट है। उस समय उनके साथ एक बडी सख्या में निग्रन्थ साधु थे[179]। सामगामसुत्त से यह प्रगट है कि

---

174 नैसिमा, १/२-३/२४ "The people bought clothes in abundance for him, but he (Kassapa) refused them as he thought that if he put them on, he would not be treated with the same respct Kassapa said, "Clothes are for the covering of shame and the shame is the effect of sin I am an Arahat As I am free from evil desires, I know no shame "----BS pp 74-75

175 भमबु., पृ १७-२१

176 वीर, वर्ष ३ पृ ३१२ व भमबु प्रष्ठ १७-२१

177 आजीविकी ति नग्ग-समणको। - पपच्च-सूदनी १/२०६-IHQ ,III,248

178 मज्झिम (P T S) भा १ पृ ३६२-भमबु पृ १६१

179 मज्झिम १/३७१ व "The M N tells us that once nigantha Nathaputta was at Nalanda with a big retinue of the Niganthas "AIT ,p 147

भगवान् ने पावा से मोक्ष प्राप्त की थी।[180] दीघनिकाय का पासादिक सुत्त भी इसी बात का समर्थन करता है[181] संयुक्त निकाय से भगवान महावीर का संघसहित मच्छिकाखण्ड में विहार करना स्पष्ट है[182] ब्रह्मजालसुत्त में राजगृह के राजा अजातशत्रु को भगवान महावीर के दर्शन के लिये गया लिखा है।[183] 'विनयपिटिक' के 'महावग्ग' ग्रंथ से महावीर स्वामी का वैशाली में धर्मप्रचार करना प्रमाणित है।[184] एक 'जातक' में भ. महावीर को 'अचेलक नातपुत्त' कहा गया है[185]। 'महावस्तु' से प्रगट है कि अवन्ती के राजपुरोहित का पुत्र नालक बनारस आया था। वहां उसने निग्रन्थनाथ पुत्त (महावीर को) धर्म प्रचार करते पाया।[186] 'दीघनिकाय' से यह स्पष्ट है कि कौशल के राजा पसेनदीने निग्रन्थ नातपुत्त (महावीर) को नमस्कार किया था।[187] उसकी रानी मल्लिका ने निग्रन्थो के उपयोग के लिये एक भवन बनवाया था।[188] सारांशतः बौद्ध शास्त्र भी भगवान् महावीर के दिगन्तव्यापी और सफल विहार की साक्षी देते हैं।

भगवान् के विहार और धर्म प्रचार से जैनधर्म का विशेष उद्योत हुआ था। जैनशास्त्र कहते हैं कि उनके संघ में चौदह हजार दिगम्बर मुनि थे, जिनमें 9900 साधारण मुनि, 300 अंगपूर्वधारी मुनि, 1300 अवधिज्ञानधारी मुनि, 900 ऋद्धिविक्रिया युक्त, 500 चार ज्ञान के धारी, 700 केवलज्ञानी और 900 अनुत्तरवादी थे। महावीर संघ के ये दिगम्बर मुनि दस गणों में विभक्त थे और ग्यारह गणधर उनकी देखरेख रखते थे[189] इन गणधरों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है.-

(1) इन्द्रभूति गौतम, (2) वायुभूति, (3) अग्निभूति, ये तीनों गणधर मगध देश के गौर्वर ग्राम निवासी वसुभूति (शांडिल्य) ब्राह्मण की स्त्री पृथ्वी (स्थण्डिला) और केसरी के गर्भ से जन्मे थे। गृहस्थाश्रम त्यागने के बाद ये क्रम से गौतम, गार्ग्य और भार्गव नाम से भी प्रसिद्ध हुये थे। जैन होने के पहले ये तीनों वेदधर्मपरायण ब्राह्मण विद्वान् थे। भ महावीर के निकट इन तीनों ने अपने कई सौ शिष्यों सहित जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण की थी और ये दिगम्बर मुनि होकर मुनियों के नेता हुये थे। देश देशान्तर में विहार करके इन्होंने खूब धर्मप्रभावना की थी।[190]

---

180 मज्झिम १/६३ - भमवु २०२
181 दीघ, III 117-118,-भमवु पृ २१४
182. संयुत्त ४ २८७-भमवु पृ २१६
183. भमवु, पृ. २२३
184. महावग्ग ६ ३१ ११ - भमवु पृ. २३१-२३६
185 जातक २,१८३
186. ASM, p 159.
187 दीघ. १७८-७६- IHQ I 153
188 LWB, P.109
189 भम., ११६
190 वृजैश, पृ ६०-६१

चौथे गणधर व्यक्त कोल्लाग सन्निवेश निवासी धनमित्र ब्राह्मण वारुणी[191] नामक पत्नी की कोख से जन्मे थे। दिगम्बर मुनि होकर यह भी गणनायक हुये थे।

पांचवें सुधर्म नामक गणधर भी कोल्लाग सन्निवेश के निवासी धम्मिल ब्राह्मण के सुपुत्र थे। इनकी माता का नाम भद्दिला था। भ महावीर के उपरान्त इनके द्वारा जैनधर्म का विशेष प्रचार हुआ था।[192]

छठे मण्डिक नामक गणधर मौर्याख्यदेश निवासी धनदेव ब्राह्मण की विजयादेवी स्त्री के गर्भ से जन्मे थे। दिगम्बर मुनि होकर यह वीर सघ में सम्मिलित हो गये थे और देश-विदेश में धर्म प्रचार किया था।

सातवें गणधर मौर्यपुत्र भी मौर्याख्य देश के निवासी 'मौर्यक' ब्राह्मण के पुत्र थे। इन्होंने भी भ महावीर के निकट दिगम्बरीय दीक्षा ग्रहण करके सर्वत्र धर्म प्रचार किया था।

आठवें गणधर अकम्पन् थे, जो मिथिलापुरी निवासी देव नामक ब्राह्मण की जयन्ती नामक स्त्री के उदर से जन्मे थे। इन्होंने भी खूब धर्मप्रचार किया था।

नवें धवल नामक गणधर कोशलापुरी के वसु विप्र के सुपुत्र थे। इनकी मा का नाम नन्दा था। इन्होंने भी दिगम्बर मुनि हो सर्वत्र विहार किया था।

दसवें गणधर मैत्रेय थे। वह वत्सदेशस्थ तुगिकाख्य नगरी के निवासी दत्त ब्राह्मण की स्त्री करुणा के गर्भ से जन्मे थे। इन्होंने भी अपने गण के साधुओं सहित धर्म प्रचार किया था।

ग्यारहवें गणधर प्रभास राजगृह निवासी बल नामक ब्राह्मण की पत्नी भद्रा की कुक्षि से जन्मे थे। और दिगम्बर मुनि तथा गणनायक होकर सर्वत्र धर्म का उद्योत करते हुए विचरे थे।[193]

इन गणधरों की अध्यक्षता में रहे उपरोक्त चौदह हजार दिगम्बर मुनियों ने तत्कालीन भारत का महान् उपकार किया था। विद्या, धर्मज्ञान और सदाचार उनके सद् उद्योग से भारत में खूब फैले थे। जैन और बौद्ध शास्त्र यही प्रकट करते है -

"The Buddhist and Jaina texts tell us that the itinerant teachers of the time wandered about in the country, engaging themselves wherever they stopped in serious discussion on matters relating to religion, philosophy, ethics morals and polity [194]

भावार्थ - बौद्ध और जैन शास्त्रों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन धर्म गुरु देश में सर्वत्र विचरते थे और जहा ठहरते थे वहा धर्म, सिद्धान्त, आचार, नीति और राष्ट्रवादी विषयक गम्भीर चर्चा करते थे। सचमुच उनके द्वारा जनता का महान् हित हुआ था।

---

191 बृजैश , पृ ८
192 बृजैश , पृ ८
193 बृजैश , पृ ८
194 LWB , P 50

बौद्ध शास्त्रों में भी भ. महावीर के संघ के किन्हीं दिगम्बर मुनियों का वर्णन मिलता है, यद्यपि जैनशास्त्रों में उनका पता लगा लेना सुगम नहीं है। जो हो, उनसे यह स्पष्ट है कि भ. महावीर और उनके दिगम्बर शिष्य देश में निर्बाध विचरते और लोक कल्याण करते थे।

सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार के पुत्र राजकुमार अभय दिगम्बर मुनि हो गये थे, यह बात बौद्धशास्त्र भी प्रगट करते है।[195] उस राजकुमार ने ईरान देश के वासियों में भी धर्म प्रचार करदिया था। फलतः उस देश का एक राजकुमार आद्रक निग्रन्थ साधु हो गया था।[196]

बौद्ध शास्त्र वैशाली के दिगम्बर मुनियों में सुणक्खत, कलारमत्थुक, और पाटिक पुत्र का नामोल्लेख करते हैं। सुणक्खत एक लिच्छवि राजपुत्र था और वह बौद्धधर्म छोडकर निग्रन्थ मत का अनुयायी हुआ था।[197]

वैशाली के सन्निकट एक कन्डरमसुक नामक दिगम्बर मुनि के आवास का भी उल्लेख बौद्धशास्त्रों में मिलता है। उन्होंने यावत् जीवन नग्न रहने और नियमित परिधि में विहार करने की प्रतिज्ञा ली थी।[198]

श्रावस्ती के कुल पुत्र (Councillor's son) अर्जुन भी दिगम्बर मुनि होकर सर्वत्र विचरे थे।[199]

यह दिगम्बर मुनि और इनके साथ जैन साध्वीया सर्वत्र धर्मोपदेश देकर मुमुक्षुओं को जैन धर्म में दीक्षित करते थे[200] इसी उद्देश्य को लेकर वे नगरों के चौराहों पर जाकर धर्मोपदेश देते और बाद भेरी बजाते थे। बौद्ध शास्त्र कहते हैं कि "उस समय तीर्थक साधु-प्रत्येक पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णमासी को एकत्र होते थे और धर्मोपदेश करते थे। लोग उसे सुनकर प्रसन्न होते और उनके अनुयायी बन जाते थे।"[201]

इन साधुओं को जहा भी अवसर मिलता था वहा ये अपने धर्म की श्रेष्ठता को प्रमाणित करके अवशेष धर्मों को गौण प्रकट करते थे।

भ महावीर और म गौतम बुद्ध दोनों ने ही अहिंसा धर्म का उपदेश दिया था, किन्तु भ महावीर की अहिंसा मनवचन, कार्य पूर्वक जीवहत्या से विलग रहने का विधान

---

195 PB , p 30 भमच , पृ २६६

196 ADJB , I p 92

197 भमवु, पृ २५५

198 "अचेलो कन्डरमसुको वेसालियम् पटिवसति लाभग्ग-प्पतीच एव पसग्गा, प्पत्तोच वज्जिगामे। तस्स सत्तवत्-पदानि समत्तानि समादिन्नानि होन्ति--'यावलीवम् अचेलको अस्सम्, न वत्थम् परिदहेस्यम् यावजीवम् ब्रह्मचारी अस्सम् न मेथनुम् पटिसेवेयम् इत्यादि।" -- दीघनिकाय, (P T S) भा ३ पृ

199 PB p 83 व भमवु, पृ २६७

200 बौद्धो के थेर-थेरी गाथाओं से यह प्रगट है। भमवु, पृ २५६ - २६८।

201 महावग्ग २/१/१ व भमवु, पृ २४०।

था – भोजन या मौज शौक के लिये भी उसमें जीवों का प्राणव्यपरोपण नहीं किया जा सकता था। इसके विपरीत म. बुद्ध की अहिंसा में बौद्ध भिक्षुओं को मांस और मत्स्य भोजन ग्रहण करने की खुली आज्ञा थी। एक बार नहीं अनेक बार स्वयं म.बुद्ध ने मांस भोजन किया था।[202] ऐसे ही अवसरों पर दिगम्बर मुनि बौद्ध भिक्षुओं को आड़े हाथों लेते थे। एक मरतबा जब भगवान महावीरने बुद्ध के इस हिंसक कर्म का निषेध किया, तो बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं, यह पहला मौका नहीं है बल्कि नातपुत्त (महावीर) इससे पहिले भी कई मरतबा खास मेरे लिये पके हुए मांस को मेरे भक्षण करने पर आक्षेप कर चुके है।"[203] एक दूसरी बार जब वैशाली में म. बुद्ध ने सेनापति सिंह के घर पर मांसाहार किया तो, बौद्ध शास्त्र कहता है कि "निग्रन्थ एक बड़ी संख्या में वैशाली में सड़क और चौराहे पर यह शोर मचाते कहते फिरे कि आज सेनापति सिंह ने एक बैल का वध किया है और उसका आहार श्रमण गौतम के लिये बनाया है। श्रमण गौतम जानबूझ कर कि यह बैल मेरे आहार के निमित्त मारा गया है, पशु का मांस खाता है, इसलिए वही उस पशु के मारने के लिये बधक है"[204] इन उल्लेखों से उस समय दिगम्बर मुनियों का निर्बाधरूप में जनता के मध्य विचरने और धर्मोपदेश देने का स्पष्टीकरण होता है।

बौद्ध गृहस्थो ने कई मरतबा दिगम्बर मुनियों को अपने घर के अन्त पुर में बुलाकर परीक्षा की थी।[205] साराशत दि मुनि उस समय हाट-बाजार, घर-महल, रंक-राव-सब ठौर सबही को धर्मोपदेश देते हुये विहार करते थे। अब आगे के पृष्ठों में भगवान महावीर के उपरान्त दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व और विहार का विवेचन कर देना उचित है।

---

202 भमबु., पृ १६०

203. Cowell, Jatakas II , 182 -- भमबु., पृ. २४६।

204 "At that time a great number of the Niganthas (running) through Vaisali, from road to road, cross-way to croos-way] with outstretched arms cried, "Today Siha, the General has killed a great ox and has made a meal for the Samana Gotama, the Samana Gotama knowingly eats this meat of an animal killed for this very purpose, & has thus become virtually the author of the deed " --Vinaya Texts, S B E., Vol XVII, p 116 & HG., p 85

205 HG , pp 88--95 व भमबु., पृष्ठ २४६--२५६।

[11]

नन्द-साम्राज्य में दिगम्बर-मुनि।

"King Nanda had taken away 'image' known as 'The Jina of Kalinga'-----Carrying away idols of worship as a mark of trophy and also showing respect to the particular idol is known in later history. The datum (1) proves that Nanda was a Jaina and (2) that Jainism was introduced in Orissa very early---"

- K.P. Jayaswal[206]

शिशुनागवंश में कुणिक अजातशत्रु के उपरान्त कोई पराक्रमी राजा नहीं हुआ और मगध साम्राज्य की बागडोर नन्दवंश के राजाओं के हाथ में आगई। इस वंश में "वर्द्धन्" (Increaser) उपाधि-धारी राजा नन्द विशेष प्रख्यात और प्रतापी था। उसने दक्षिण पूर्व और पश्चिमीय समुद्रतटवर्ती देश जीत लिये थे तथा उत्तर में हिमालय प्रदेश और काश्मीर एवं अवन्ती और कलिंग देश को भी उसने अपने आधीन कर लिया था।[207] कलिङ्ग-विजय में वह वहां से कलिंगजिन नामक एक प्राचीन मूर्ति ले आया था और उसे विनय के साथ उसने अपनी राजधानी पाटलीपुत्र में स्थापित किया था। उसके इस कार्य से नन्दवर्द्धन का जैनधर्मावलम्बी होना स्पष्ट है। मुद्राराक्षस नाटक और जैनसाहित्य से इस वंश के राजाओं का जैनी होना सिद्ध है और उनके मन्त्री भी जैन थे। अन्तिम नन्द का मन्त्री राक्षस नामक नीतिनिपुण पुरुष था। मुद्राराक्षस नाटक में उसे जीवसिद्धि नामक क्षपणक अर्थात् दिगम्बर जैन मुनि के प्रति विनय प्रगट करते दर्शाया गया है तथा यह जीवसिद्धि सारे देश में-हाटबाजार और अन्तःपुर-सब ही ठौर बेरोक टोक विहार करता था, यह बात भी उक्त नाटक से स्पष्ट है।[208] ऐसा होना है भी स्वाभाविक, क्योंकि जब नन्दवंश के राजा जैनी थे तो उनके साम्राज्य में दिगम्बर जैन मुनिकी प्रतिष्ठा होना लाजमी थी। जनश्रुतिसे यह भी प्रगट है कि अन्तिम नन्दराजा ने पञ्चपहाड़ी नामक पाँच स्तूप

---

206 JBORS, Vol, xiii p.245

207 Ibid, Vol I pp 78-79

208 Chanakya says -

"There is a fellow of my studies, deep
The Brahman Iudusarman, him I sent,
When just I vowed the death of Nanda, hither,
And here repairing as a Buddha (क्षपणक) mendicant."

Having the marks of a Ksapanaka the individual is a Jaina ..Raksasa repose in him implicit confidence --HDw, p 10

पटना में बनवाये थे। पञ्चपहाड़ी नामक पाँच स्तूप पटना में बनवाये थे।[209] पञ्चपहाड़ी (राजगृह) जैनों का प्रसिद्ध तीर्थ है। नन्द ने उसी के अनुरूप पाँच स्तूप पटना में बनवाये प्रतीत होते हैं। यह कार्य भी उनकी मुनि-भक्ति का परिचायक है।

जैन कथाग्रन्थों से विदित है कि एक नन्द राजा स्वयं दिगम्बर जैन मुनि हो गये थे तथा उनके मन्त्री शकटाल भी जैनी थे।[210] शकटाल के पुत्र स्थूलभद्र भी दिगम्बर मुनि हो गये थे।[211] साराश यह कि नन्द-साम्राज्य के प्रसिद्ध पुरुषों ने स्वयं दिगंबर मुनि होकर तत्कालीन भारत का कल्याण किया था और नन्दराजा जैनों के संरक्षक थे।[212]

शिशुनागवंश के अन्त और नन्दराज्य के आरम्भकाल में जम्बूस्वामी अन्तिम के वली सर्वज्ञने नग्नवेष में सारे भारत का भ्रमण किया था। कहते हैं कि बंगाल के कोटिकपुर नामक स्थान पर उन्होंने सर्वज्ञता प्राप्त की थी।[213] उनका विहार बंगाल के प्रसिद्ध नगर पुंड्रवर्द्धन, ताम्रलिप्त आदि में हुआ था। एक दफा वह मथुरा भी पहुचे थे। अन्त में जब वह राजगृह विपुलाचल से मुक्त हो गये, तो मथुरा में उनकी स्मृति में एक स्तूप बनाया गया था।[214]

मथुरा जैनों का प्राचीन केन्द्र था। वहा भ पार्श्वनाथ जी के समय का एक स्तूप मौजूद था।[215] इसके अतिरिक्त नन्दकाल में वहा पाच सौ एक स्तूप और बनाये गये थे, क्योंकि

---

209 "Sir G Grierson informs me that the Nandas were reputed to be bitter enemies of the Brahmans the Nandas were Jainas and therefore hateful to the Brahmans The supposition that the last Nanda was either a Jaina or Buddhist is strength-ened by the fact that one form of the local tradition attributed to him the erection of the Panch pahari at patna, a group of aneient stupas, which be either Jaina or Buddhist " --EHI , p 44

उनका जैन होना ठीक है, क्योंकि नन्दवर्द्धन जैन होने में सन्देह नहीं है और "मुद्राराक्षस" नन्दमन्त्री आदि को जेन प्रगट करता है।

210. हरिषेण कथाकोष तथा आराधनाकथाकोष देखो।

211. सातवीं गुजराती साहित्य परिषद् रिपोर्ट, पृ ४१ तथा "भद्रबाहु चरित्र" (पृ. ४१) में स्थूलभद्रादिकों दिगम्बर मुनि लिख है। (रामल्यस्थूल भद्राख्य स्थूलाचार्यादियोगिन)

212 "Nanda were Jains " - CHI Vol I p 164

"The nine kings of the Nanda dynasty of Magadha were patrons of the Order (Sangha of Mahavira) " -- HARI , p.59

213 "In Kotikapur Jampbu attained emancipation (? Omniscience)"

214 अनेकान्त, वर्ष १ पृ १४१

"मगधादिमहादेश मथुरादिपुरीस्तथा। कुर्वन् धर्मोपदेशं स केवलज्ञानलोचन ।।११८।। १२ वर्षाण्ठादशपर्यन्तं स्थितस्तत्र जिनाधिप, ततो जगाम निर्वाण केवली विपुलाचलात् ।।११९।। -- जम्बूस्वामी चरित्

215 JGAM , p 13

वहां से इतने ही दिगम्बर मुनियों ने समाधिमरण किया था। ये सब मुनि श्री जम्बूस्वामी के शिष्य थे। जिस समय जम्बूस्वामी दिगंबर मुनि हुये तो उस समय विद्युच्चरनामक एक नामी शिष्य थे। जिस समय जम्बूस्वामी दिगंबर मुनि हुये तो उस समय विद्युच्चरनामक एक नामी डाकू भी अपने पांच सौ साथियों सहित दिगंबर मुनि हो गया था। एक दफा वह मुनिसंघ देश-विदेश में विहार करता हुआ ग्राम को मथुरा पहुंचा। वहां महाउद्यान में वह ठहर गया। उपरान्त रात को उन मुनियों पर वहां महा उपसर्ग हुआ और उसके परिणामस्वरूप मुनियों ने साम्यभाव से प्राण त्याग किये। इस महत्वशाली घटना की स्मृति में ही वहाँ पांच सौ एक स्तूप बना दिये गये थे।[216]

इस प्रकार न जाने कितने मुनि-पुङ्गव उस समय भारत में विहार करके लोगों का हितसाधन करते थे। उनका पता लगा लेना कठिन है। नन्द - साम्राज्य में उनको पूरा पूरा संरक्षण प्राप्त था।

धनि मुनि जिन यह भाव पिछाना.....

धनि मुनि जिन यह भाव पिछाना।।टेक।
तन व्यय वांछित प्रापति मानो, पुण्य उदय दुःख जाना।।१।।
एक विहारी सकल ईशाता, त्याग महोत्सव माना।
सब सुख परिहार सार सुख, जानि रागमय भाना।।२।।
चित स्वभाव को चिन्त्य प्रान निज, विमल ज्ञान-दृग साना।
'दौल' कौन सुख जान लह्यो तिन, करो शांतिरस पाना।।३।।

---

216 अनेकान्त वर्ष पृ १३९-१४१ --
"अयं विद्युच्चरो नाम्ना पर्यटन्निह सन्मुनि ।।
एकादशांगविद्यायामधीती विदधत्तप ।
अथान्येद्यु. सनि सगो मुनि पंचशतैर्वृत ।।
मथुरायां महोद्यान प्रदेशेष्वगमन्मुद ।
तदागच्छतस्स वैलक्षव भानुरस्ताचल श्रित. ।। इत्यादि ।।
O, भा १४ पृ २१९ ।

[12]

मौर्य-सम्राट् और दिगम्बर मुनि ।

"भद्रबाहुवचः श्रुत्वा चन्द्रगुप्तो नरेश्वरः ।
अस्यैवयोगिन पार्श्वे दधौ जैनश्वरं तप । । 38 । ।
चन्द्रगुप्तमुनि शीघ्रं प्रथमो दशपूर्विणाम् ।
सर्व संघाधिपो जातो विशाखाचार्य संज्ञक. । । 39 । ।
अनेनसह संघोपि समस्तो गुरुवाक्यत ।
दक्षिणा पथदेशस्थ पुन्नाट विषय ययौ । । 40 । ।

- हरिषेण कथाकोष

मउउधरेसुचरिमो जिणदिक्ख धरदि चन्दगुत्तो य ।

- त्रिलोक प्रज्ञप्ति[217]

नन्द राजाओं के पश्चात् मगध का राजछत्र चन्द्रगुप्त नाम के एक क्षत्रिय राज पुत्र के हाथ लगा था। उसने अपने भुजविक्रम से प्राय सारे भारत पर अधध्कार कर लिया था और मौर्य नामक राजवश की स्थापना की थी। जैनशास्त्र इस राजा को दिगम्बर मुनि श्रमणपति श्रुतकेवली भद्रबाहु का शिष्य प्रगट करते है ।[218] यूनानी राजदूत मेगास्थनीजभी चन्द्रगुप्त को श्रमण-भक्त प्रगट करता है ।[219] सम्राट् चन्द्रगुप्त ने अपने वृहत् साम्राज्य मे दिगम्बर मुनियों के विहार और धर्म प्रचार करने की सुविधा की थी । श्रमणपति भद्रबाहु के सघ की वह राजा बहुत विनय करता था । भद्रबाहुजी बगाल देश के कोटिकपुर नामक नगर

---

217 जैहि , भा १३ पृ ५३१

218 "चन्द्रावदातसत्कीर्तिश्चन्द्रवन्मोदकर्तृणाम । चन्द्रगुप्तिनृपस्तत्राऽचकच्चारुगुणोदय ६२
ज्ञानविज्ञानपारीणो जिनपूजापुरंदर । चतुर्दा दान दक्षो य प्रतापजित भास्कर । । ८ । ।" - भद्र

219 "The Chandragupta was a member of the Jaina community is taken by their writers as a matter of course, and treated as a known fact, which needed neither argument nor demonstration The documentory evidence to this effect is of comparatively early date, and apparently absolved from all suspicion The testimony of Megasthenes would likewise seem to imply that Chandragupta submitted to the devotional teaching of the Sramanas, as opposed to the doctrines of the Brahmansas (Strabo, XV i 60)" --JRAS, Vol IX pp 175-176

के निवासी थे।[220] एक बार वहां श्रुत केवली गोवर्द्धन स्वामी अन्य दिगम्बर मुनियों सहित आनिकले भद्रबाहु उन्हीं के निकट दीक्षित होकर दिगम्बर मुनि हो गये। गोवर्द्धन स्वामीने संघसहित गिरनारजी की यात्रा का उद्योग किया था।[221] इस उल्लेख से स्पष्ट है कि उनके समय में दिगम्बर मुनियों को विहार करने की सुविधा प्राप्त थी। भद्रबाहुजी ने भी संघसहित देश-देशान्तर में विहार किया था और वह उज्जैनी पहुंचे थे। वहीं से उन्होंने दक्षिणदेश की ओर संघ सहित विहार किया था क्योंकि उन्हें मालूम हो गया था कि उत्तरापथ में एक द्वादशवर्षीय विकराल दुष्काल पड़ने को है जिसमें मुनिचर्या का पालन दुष्कर होगा।[222] सम्राट् चन्द्रगुप्त ने भी इसी समय अपने पुत्र को राज्य देकर भद्रबाहु स्वामी के निकट जिन दीक्षा धारण की थी और वह अन्य दिगम्बर मुनियों के साथ दक्षिण भारत को चले गये थे।[223] श्रवणबेलगोल का कटवप्र नामक पर्वत उन्हीं के कारण "चन्द्रगिरि" नाम से प्रसिद्ध हो गया है, क्योंकि उस पर्वत पर चन्द्रगुप्त ने तपश्चरण किया था और वहीं उनका समाधिमरण हुआ था।[224]

बिन्दुसार ने जैनियो के लिये क्या किया ? यह ज्ञात नहीं है किन्तु जब उसका पिता जैन था, तो उस पर जैन प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है।[225] उस पर उसका पुत्र अशोक अपने प्रारम्भिक जीवन में जैन धर्म परायण रहा था, बल्कि अन्त समय तक उसने जैन

---

220 "तमालपत्रवत्तस्य देशोऽभूत्पौण्ड्रवर्द्धन ।" - "तत्रकोट्टपुरं रम्यं द्योतते नाकधामवत् ।" "भद्रबाहुरितिख्याति प्राप्तवान्बन्धुवर्गत ।" इत्यादि" -- भद्र पृ १०-२३

221 "चिकीर्षुर्नेमितीर्थेशयात्रां रैवतकाचले।" - भद्र पृ १३।

222 भद्र पृ २७-५१

223 Jaina tradition avers that Chandragupta Maurya was a Jaina, and that, when a great twelve years's famine occurred, he abdicated, accompanied Bhadrabahu, the last of the saints called Srutakevalins, to the South, lived as an ascetic at Sravanabelgola in Mysore and ultimately committed Sureide by Starvation at that place, where his name is still held in remembrance In the second edition of this book I rejected that tradition and dismissed the tale as imaginary history' but on reconsideration of the whole evidence and the objections urged against the credibility of the story, I am now disposed to believe that the tradition probably is true in its main outline and the chandragupta really abdiecated and became a Jaina ascetie " -- Sir Vincient Smith, EHI, p 154

224 Narasimhachar's Sravanabelagola, p.25-40, शिलो , भाग ६ पृ १५६-१५७ तथा जैशिसं भूमिका पृ ५४-६०

225. "We may conclude that Vindusara followed the faith (Jainism) of his father (Chandragupta) and that, in the same belief, whatever it may prove to have been, his childhood's lessons were first learnt by Asoka." - E. thomas, JRAS. IX 181

सिद्धान्तों का प्रचार किया, यह अन्यत्र सिद्ध किया जा चुका है[226] इस दशा में बिन्दुसार का जैन धर्म प्रेमी होना उचित है। अशोक ने अपने एक स्थम्भलेख में स्पष्टतः निग्रन्थ साधुओं की रक्षा का आदेश निकाला था।[227]

सम्राट् सम्प्रति पूर्णतः जैन धर्म परायण थे। उन्होंने जैन मुनियों के विहार और धर्मप्रचार की व्यवस्था न केवल भारत में ही की, बल्कि विदेशों में भी उनका विहार कराकर जैन धर्म का प्रचार करा दिया।[228]

उस समय में दशपूर्व के धारक विशाख प्रोष्ठिल, क्षत्रिय आदि दिगम्बर जैनाचार्यों के संरक्षण में रहा। जैन सघ खूब फला फूला था। जिस साम्राज्य के अधिष्ठाता ही स्वयं जब दिगम्बर मुनि होकर धर्मप्रचार करने के लिये तुल गये तो भला कहिये जैन धर्म की विशेष उन्नति और दिगम्बर मुनियों की बाहुल्यता उस राज्य में क्यों न होती। मौर्यों का नाम जैनसाहित्य में इसीलिए स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

---

226 हमारा "सम्राट अशोक और जैनधर्म" नामक ट्रैक्ट देखो।

227 स्तम्भलेख नं ६

"The founder of the Maurayan dynasty, Chandragupta, as well as his Brahmin minister, Chanakya, were also inclined towards Mahavira's doctrines and even Asoka is said to have been laid towards Buddhism by a previous study of jain teaching "

-- E B Havell, HARI , p 59

228 कुणालसुनुखिखदभरताधिप परमार्हती अनार्य्यदेशेष्वीप प्रवर्तित श्रमणविहार सम्प्रति महाराजाऽसीऽभवत्।"

-- पाटलीपुत्रकल्पग्रन्थ EHI pp 202-203

[13]

सिकन्दर महान् एवं दिगम्बरमुनि

"Onesikritos says that he himself was sent to converse with these sages, For Alexander heard that these men (Sramans) went about naked, insued themselves to hardships and were held in highest honour, that when invited they did not go to other persons." -Mc Crindle, Ancient India,p 70

जिस समय अन्तिम नन्दराजा भारत में राज्य कर रहे थे और चन्द्रगुप्त मौर्य अपने साम्राज्य की नींव डालने में लगे हुवे थे, उस समय भारत के पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त पर यूनान का प्रतापी वीर सिकन्दर अपना सिक्का जमा रहा था। जब वह तक्षशिला पहुंचा तो वहाँ उसने दिगम्बर मुनियों की बहुत प्रशंसा सुनी। उसने चाहा कि वे साधुगण उसके सम्मुख लाये जायें, किन्तु ऐसा होना असम्भव था, क्योंकि दिगम्बर मुनि किसी का शासन नही मानते और न किसी का निमन्त्रण स्वीकार करते हैं। उस पर सिकन्दर ने अपने एक दूत को, जिसका नाम अन्शकृत स (Oneskritos) था, उनके पास भेजा। उसने देखा, तक्षशिला के पास उद्यान में बहुत से नगे मुनि तपस्या कर रहे हैं। उनमे से एक कल्याण नामक मुनि से उसकी बातचीत होती रही थी। मुनि कल्याण ने अन्शकृतस से कहा था कि यदि तुम हमारे तप का रहस्य समझना चाहते हो तो हमारी तरह दिगम्बर मुनि हो जाओ।[229] अशकृतस के लिये ऐसा करना असम्भव था। आखिर उसने सिकन्दर से जाकर इन मुनियों के ज्ञान और चर्या की प्रशसनीय बातें कहीं। सिकन्दर उनसे बहुत प्रभावित हुआ और उसने चाहा कि इन ज्ञान-ध्यान तपोरत्न का प्रकाश मेरे देश में पहुचे। उसकी इस शुभ कामना को मुनि कल्याण ने पूरा किया था। जब सिकन्दर ससैन्य यूनान को लौटा तो मुनि कल्याण उसके साथ हो लिये थे। किन्तु ईरान में ही उनका देहावसान हो गया था। अपना अन्त समय जानकर उन्होंने जैन व्रत सल्लेखना का पालन किया था। नगे

---

229 AI, p 69 -- "(Alexander) despatched Onesikritos to them (gymnosophists), who relates that he found at the distance of 20 stadia from the city (of Taxilla) 15 men standing in different postures, sitting or lying down naked, who did not move from these positions till the evening, when they return to the city the most diffcult thing to endure was the heat of the sun etc" .

"Calanus bidding him (Onesi) to strip himself, if he desired to hear any of his doctrine"

--- Plutarch AI p 71

रहना, भूमिशोध कर चलना, हरित काय का विराधन न करना, किसी का निमन्त्रण स्वीकार न करना, इत्यादि जिन नियमों का पालन मुनि कल्याण और उन तक साथी मुनिगण करते थे उनसे उनका दिगम्बर जैन मुनि होना सिद्ध है।[230] आधुनिक विद्वान् यही प्रगट करते हैं।[231]

मुनि कल्याण ज्योतिषशास्त्र में निष्णान्त थे। उन्होंने बहुत सी भविष्यवाणियां की थी[232] और सिकन्दर की मृत्यु को भी उन्होंने पहिले से ही घोषित कर दिया था। इन भारतीय सन्तों की शिक्षा का प्रभाव यूनानियों पर विशेष पड़ा था। यहां तक कि तत्कालीन डायजिनेस (Diogenes) नामक यूनानी तत्ववेत्ताने दिगम्बरवेष धारण किया था[233] और यूनानियों ने नगी मूर्तियाँ भी बनवाई थीं।[234]

यूनानी लेखकों ने इन दिगम्बर मुनियों के विषय में खूब लिखा है। वे बताते हैं कि यह साधु नगे रहते थे। सर्दी-गर्मी की परीषह सहन करते थे। जनता में इनकी विशेष मान्यता थी। हाट बाजार में जाकर यह धर्मोपदेश देते थे। बड़े-बड़े शिष्ट घरों के अतःपुरों में भी वे जाते थे। राजागण इनकी विनय करते और सम्मति लेते थे। ज्योतिष के अनुसार ये लोगों को भविष्य का फलाफल भी बताते थे। भोजन का नमन्त्रण ये स्वीकार नहीं करते थे।

---

230 वीर वर्ष ६ पृ १७६ व ३४१

231 Encyclopaedia Britannica (11th ed) Vol XV p 128 " the term Digambara is refered to in the well-known Greek phrase, Gymnosophists, used already by Megasthenes, which applies very aptly to the Niganthas (Digambara Jainas) "

232 "A calendar fragment discovered at Milet & belonging to the 2nd century B C gives several weather forecasts on the authority of Indian Calanus " --QJMS, XVIII, 297

233 NJ., Intro p 2

234 Pliny, XXXIV 9--JRAS, Vol IX, p 232

विधिपूर्वक नगर में कोई सभ्य उन्हें भोजनदान देता तो उसे वे ग्रहण कर लेते थे।[235] यूनानी लेखकों के इस वर्णन से उस समय के दिगम्बर जैन मुनियों का महत्व स्पष्ट हो जाता है। उनके द्वारा भारत का नाम विदेशों में चमका था। भला उन जैसे मुनीश्वरों को पाकर कौन न अपने को धन्य मानेगा।

---

235 Aristoboulos --says "Their (Gymnosophists) spare time is spent in the market-place in respect their being public councillors, they receive great homage etc"

Cicero (*Tusc Disput V 27*) --"*What foreign land is more vast & wild* than India? Yet in that nation first those who are reckoned sages spend the ir lifetime naked & endure the snows of Caucaus & theragae of winter without grieving & when they have committed their body to the flames, not a groan escapes them when they are burning "

Clemens alexendrinus --"those Indians, who are called Semnoi (श्रमण) go naked all their lives these practise truth, make predictions about futurity and worship a kind of pyramid, beneath which they think the bones of some divinity lie buried (Stupas)" -- AI P 183

"St Jerome --"Indian Gymnosophists' the king on coming to them worships them & the peace of his dominions depends according to his judgement on their prayers." --AI p 184

"Every wealthy house is open to them to the apartments of the women On entering they share the repat." --AI p.71

"When they repair to the city they disperse themselves to the market place If they happen to meet any who carries figs or bunches of graphes they take what he bestows without giving anything in return

[14]

सुंग और आन्ध्र राज्यों में दिगम्बर मुनि।

"The Andhra or Satvahana rule is characterised by almost the same social features as the farther south, but in point of religion they seem to have been great patrons of the Jainas & Budhists" S K Aiyangar's Ancient India, p 34

अन्तिम मौर्य सम्राट बृहद्रथ का उनके सेनापति पुष्यमित्र सुग ने बध कर दिया था। इस प्रकार मौर्य साम्राज्य का अन्त करके पुष्यमित्र ने सुग राजवश की स्थापना की थी। नन्द और मौर्य साम्राज्य में जहाँ जैन और बौद्धधर्म उन्नति को प्राप्त हुये थे, वहां सुंगवंश के राजत्वकाल में ब्राम्हण धर्म उन्नत अवस्था को प्राप्त हुआ था। किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि ब्राम्हणेतर जैन आदि धर्मो पर इस समय कोई सकट आया हो। हम देखते हैं कि स्वय पुष्यमित्र के राजप्रासाद के सन्निकट नन्दराज द्वारा लाई गई कलिग जिन की मिर्ति सुरक्षित रही थी। इस अवस्था में यह नही कहा जा सकता कि इस समय दिगम्बर जैनधर्म का विकट बाधा सहनी पडी थी।

उस पर सुग राजागण अधिक समय तक शासनाधिकारी भी न रहे। भारत के पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और पजाब की ओर तो यवन राजाओं ने अधिकार जमाना प्रारभ कर दिया और मागध तथा मध्यभारत पर जैन सम्राट् खारवेल तथा आन्धराजाओं के आक्रमण होने लगे। खारवेल की मगध विजय में आन्ध्रवशी राजाओ ने उनका साथ दिया था।[236] मगध पर आन्ध्र राजाओं का अधिकार हो गया। इन राजाओं के उद्योग से जैन धर्म फिर एक बार चमक उठा।

आन्ध्रवशी राजाओं में हाल, पुलुमायि आदि जैन धर्म प्रेमी कहे गये हैं।[237] इन्होंने दिगम्बर जैन मुनियों को बिहार और धर्म प्रचार करने की सुविधा प्रदान की प्रतीत होती है। उज्जैनी के प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य भी इसी वश से सम्बन्धित बताये जाते है। वह शैव थे, परन्तु उपरान्त एक दिगम्बर जैनाचार्य के उपदेश से जैन हो गये थे।[238]

---

236 "In the decadance that followed the death of Asoka, the Andhras sem to have had their own share and they may possibly have helped Khaivela of Kalinga, when he invaded Magadha in the middle of the 2nd century B C When the Kanvar were over thrown the Andhras extend their power northwards & occupy Magadha " --- SAI , pp , 15-16

237 JBORS I, 76--118 & CHE , I p 532

238 Allahabad university Studies, pt II pp 113-147

ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दिमें एक भारतीय राजा का सम्बन्ध रोम के बादशाह ऑगस्टस से था। उन्होंने उस बादशाह के लिये भेंट भेजी थी। जो लोग उस भेंट को ले गये थे, उनके साथ भृगुकच्छ (भडौच) से एक श्रमणाचार्य (दिगम्बर जैनाचार्य) भी साथ हो लिये थे। वह यूनान पहुँचे थे और वहां उनका सम्मान हुआ था। आखिर सल्लेखना व्रत को धारण करके उन्होंने अथेन्स (Athens) में प्राणविसर्जन किये थे। वहाँ उनकी एक निषधिका बना दी गई थी।[239] अब भला कहिये, जब उस समय दिगम्बर मुनि विदेशों तक में जाकर धर्मप्रचार करने में समर्थ थे, तो वे भारत में क्यों न विहार और धर्मप्रचार करने में सफल होते। जैन साहित्य बताता है कि गंगदेव, सुधर्म, नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन आदि दिगम्बर जैनाचार्यों के नेतृत्व में तत्कालीन जैनधर्म सजीव हो रहा था।

ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दि में भारत में अपोलो और दमस नामक दो यूनानी तत्ववेत्ता आये थे। उनका तत्कालीन दिगम्बर मुनियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ था। सारांशतः उस समय भी दिगम्बर मुनि इतने महत्वशाली थे कि वे विदेशियों का भी ध्यान आकृष्ट करने को समर्थ थे।

---

239 "In the same year (25 B C) went an Indian embassy with gifts to Augustus, from a King called Purus by some and Pandian by others They were accompanied by the man who burnt himself at Atthens. He with a smile leapt upon the pyre naked On his tomb was this inscription, 'Zermanochangas, to the custom of his country, lies here' Zermanochegas seems to be the Greek rendering of Sramanacharya or jaina Guru and the self-immolation, a variety of Sallekhna" - IHq. vol II p 293

[15]

यवन-छत्रप आदि राजागण तथा दिगम्बर मुनि।

"About the second century B C when the Greeks had occupied a fair portion of western India, Jainism appears to have made its way amongst them and the founder of the sect appears also to have been held in high esteem by the Indo-Greeks, as is apparent from an account given in the Milinda Panho " HG , p 78

मौर्यों के उपरान्त भारत के पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, पंजाब, मालवा आदि प्रदेशों पर यूनानी आदि विदेशियों का अधिकार हो गया था। इन विदेशी लोगों में भी जैन मुनियों ने अपने धर्म का प्रचार कर दिया था और उनमे से कई बादशाह जैन धर्म मे दीक्षित हो गये थे।

भारतीय यवनों (Greek) में मनेन्द्र (Menandre) नामक राजा प्रसिद्ध था। उसकी राजधानी पंजाब प्रान्त का प्रसिद्ध नगर साकल (स्यालकोट) था। बौद्धग्रंथ मिलिन्द पण्ह से विदित है कि उस नगर में प्रत्येक धर्म के गुरु पहुंच कर धर्मोपदेश देते थे।[241] मालूम होता है कि दिगम्बर जैन मुनियो को वहाँ विशेष आदर प्राप्त था, क्योकि मिलिन्दपण्ह मे कहा गया है कि पांचसौ यूनानियो ने राजा मनेन्द्र से भगवान महावीर के निग्रन्थ धर्म द्वारा मनस्तुष्टि करने का आग्रह किया था और मनेन्द्र ने उनका यह आग्रह स्वीकार किया था। अन्त वह जैन धर्म में दीक्षित हो गया था और उसके राज्य में अहिंसा धर्म की प्रधानता हो गई थी।[243]

यवनों (Indo Greek) को हराकर शकों ने फिर उत्तर पश्चिम भारत पर अधिकार जमाया था। उन्होंने 'छत्रप'-प्रान्तीय शासक नियुक्त करके शासन किया था। इनमें राजा अजेस (Azes I) के समय में तक्षशिला मे जैन धर्म उन्नति पर था। उस समय के बने हुये जैन ऋषियों के स्मार्क-रूप स्तूप आज भी तक्षशिला में भग्नावशेष हैं।[244]

---

241 "They resound with cries of welcome to the teachers of every creed and the city is the resort of the leading men of each of the differing sects " -- QKM P 3

242 QKM , p 8

243 वीर, वर्ष २ पृ ४४६-४४६

244 AGT , pp 76-80

शक राजा कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव के राजकाल में भी जैनधर्म उन्नत दशा में रहा था। मथुरा उस समय प्रधान जैन केन्द्र था। अनेक निर्ग्रन्थ साधु वहां विचरते थे। उन नग्न साधुओं की पूजा राजपुत्र और राजकन्यायें तथा साधारण जनसमुदाय किया करते थे।[245]

क्षत्रप नहपान भी जैन धर्म प्रेमी प्रतीत होता है। उसका राज्य गुजरात से मालवा तक विस्तृत था। जैन साहित्य में उनका उल्लेख नरवाहन और नहवाण रूप में हुआ मिलता है। नहपान ही संभवतः भूतबलि नामक दिगम्बर जैनाचार्य हुये थे, जिन्होंने "षट्खण्डागम शास्त्र" की रचना की थी।[246]

क्षत्रप नहपान के अतिरिक्त क्षत्रप रुद्रदमन का पुत्र रुद्र सिंह का भी जैन धर्म भुक्त होना संभव है। जूनागढ की "अपरकोट" की गुफाओं में इसका ऐक लेख है, जिसका सम्बन्ध जैन धर्म से होना अनुमान किया जाता है। ये गुफायें जैन मुनियों के उपयोग में आती थी।[247]

इन उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि उपरोक्त विदेशी लोगों में धर्मप्रचार करने के लिये दिगम्बर मुनि पहुंचे थे और उन्होंने उन लोगों के निकट सम्मान पाया था।

धनि मुनि जिनकी लगी लौ शिवओरनै .....

धनि मुनि जिनकी लगी लौ शिवओरनै ।।टेक।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन निधि, धरत हरत भ्रमचोरनै ।।१।।
यथाजात मुद्राजुत सुन्दर, सदन विजन गिरिकोरनै ।
तृन कञ्चन अरि स्वजन गिनत सम, निंदन और निहोरनै ।।२।।
भवसुख चाह सकल तनि बल सजि, करत द्विविध तप घोरनै ।
परम विराग भाव पवितैं नित, चूरत करम कठोरनै ।।३।।
छीन शरीर न हीन चिदानन, मोहत मोह झकोरनै ।
जग-तप-हर भवि कुमुद निशाकर मोदन 'दौल' चकोरनै ।।४।।

245 "Another locality in which the Jainas seem to have been formly established from the middle of the 2nd Century B C onwards was Mathura in the old kingdom of Curasena "
-- CHI, I, p 167 & see JOAM

246 सरस्वती, भा २६, खण्ड २ पृ ६४८-६४६

247 IA, XX, 163 ff

[16]

सम्राट् ऐलखारवेल आदि कलिंग नृप और दिगम्बर मुनियों का उत्कर्ष।

"नन्दराज-नीतानि कालिंग-जिनम्-संनिवेसं,... ..गहरतनान पडिहारेहि अंगमागध वसवु नेयाति।" (12 वीं पंक्ति)

"सुकति-समण-सुविहितानुं च सतदिसानं ञनितम् तपसि-इसिनं संघियनं अरहत निसीदिया समीपे पभरे वरकारु-सुमुथपतिहि अनेकयोजना हिताहि प सि ओ सिलाहि सिंह पथ रानि सिधुडाय निसयानि... घंटा (अ) क (तो) चतरे च वेडूरियगभे थंभे पतिठापयति।" (15-16 वी पंक्ति) -हाथीगुफा शिलालेख।

कलिंगदेश में पहले तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के एक पुत्र ने पहले पहले राज्य किया था। जब सर्वज्ञ होकर तीर्थंकर ऋषभ ने आर्यखण्ड में विहार किया तो वह कलिंग भी पहुंचे थे। उनके धर्मोपदेश से प्रभावित होकर तत्कालीन कलिंग राजा अपने पुत्र को राज्य देकर दिगम्बर मुनि हो गये थे।[248] बस, कलिंग में दिगम्बर-मुनियों का सद्भाव उस प्राचीन काल से है।

राजा दशरथ अथवा यशधर के पुत्र पाचसौ साथियों सहित दिगम्बर मुनि होकर कलिंगदेश से ही मुक्त हुये थे। तथा वह पवित्र कोटिशिला भी उसी कलिंग देश में है, जिसको श्रीराम-लक्ष्मण ने उठाकर अपना बाहुबल प्रगट किया था और जिस पर से एक करोड दिगम्बर -मुनि निर्वाण को प्राप्त हुये थे।[249] साराशत: एक अतीव प्राचीन काल से कलिंग देश दिगम्बर-मुनियों के पवित्र-चरण कमलों से अलकृत हो चुका है।

इक्ष्वाकवश के कौशलदेशीय क्षत्रिय राजाओं के उपरान्त कलिंग में हरिवशी क्षत्रियों ने राज्य किया था। भगवान महावीर ने सर्वज्ञ होकर जब कलिंग में आकर धर्मोपदेश दिया तो उस समय कलिंग के जितशत्रु नामक राजा दिगम्र मुनि हो गये उनके साथ और भी अनेक दिगम्बर मुनि हुये थे।[250]

उपरान्त दक्षिण कौशलवर्ती चेदिराज के वश के एक महापुरुष ने कलिंग पर अधिकार जमा लिया था।[251] ईस्वी पूर्व द्वितीय शताब्दि में इस वश का ऐल खारवेल नामक राजा

---

248 हरिवशपुराण अ ३ श्लो ३-६ अ ११ श्लो १४-६१

249 "जसधर राइत्स सुवा। पचसयाभूव कलिग तेसम्मि।।
कोटिसिल कोडि मुणि णिववाण गया णमो तेसम्मि।।१८।।" -- णिव्वाण-कुड गाहा।

250 हरिवशपुराण (कलकत्ता संस्करण) पृ ६२३

251 JBORS Vol III pp 434 484

अपने भुजविक्रम, प्रताप और धर्म कार्यों के लिये प्रसिद्ध था। वह जैन धर्म का दृढ़ उपासक था। उसने सारे भारत की दिग्विजय की थी। वह मगध के शुंगवंशी राजा को हराकर वह कलिंग जिन नामक अर्हत्-मूर्ति को वापस कलिंग ले आया था। दिगम्बर मुनियों की वह भक्ति और विनय करता था। उन्होंने उन के लिये बहुत से कार्य किये थे। कुमारी पर्वत पर अर्हतभगवान की निषद्या के निकट उन्होंने एक उन्नत जिन प्रासाद बनवाया था। तथा पचहत्तर लाख मुद्राओं को व्यय करके उस पर वैडूर्यरत्न जडित स्तम्भ खडे करवाये थे। उनकी रानी ने भी जैन मन्दिर तथा मुनियों के लिये गुफायें बनवाई थीं, जो अब तक मौजूद है।[252] और भी न जाने उन्होंने दिगम्बर मुनियों के लिये क्या-क्या नहीं किया था।

उस समय मथुरा, उज्जैनी और गिरिनगार जैन ऋषियों के केन्द्रस्थान थे[253] खारवेलने जैन ऋषियों का एक महासम्मेलन एकत्र किया था। मथुरा, उज्जैनी, गिरिनगर काशीपुर आदि स्थानों से दिगम्बर मुनि उस सम्मेलन में भाग लेने के लिये कुमारी पर्वत पहुंचे थे। बडा भारी धर्म महोत्सव किया गया था।[254] बुद्धिलिंग, देव, धर्म सेन, नक्षत्र आदि दिगम्बर जैनाचार्य उस महासम्मेलन में सम्मिलित हुये थे।[255] इन ऋषिपुङ्गवों ने मिलकर जिनवाणी का उद्धार किया था तथा सम्राट खारवेल के सहयोग से वे जैन धर्म प्रचार करने में सफलमनोरथ हुये थे। यही कारण है कि उस समय प्राय सारे भारत में जैन धर्म फैला हुआ था। यहा तक कि विदेशियों में भी उसका प्रचार हो गया था, जैसे कि पूर्व परिच्छेद में लिखा जा चुका है। अतएव यह स्पष्ट है कि ऐल खारवेल के राजकाल में दिगम्बर मुनियों का महती उत्कर्ष हुआ था।

ऐल खारवेल के बाद उनके पुत्र कुदेपश्री खर महामेघवाहन कलिंग के राजा हुए थे। वह भी जैनधर्मानुयायी थे[256] उनके बाद भी एक दीर्घ समय तक कलिंग में जैनधर्म राष्ट्रधर्म रहा था। बोद्धाग्रन्थ 'दाठावंसो' से ज्ञात है कि कलिङ के राजाओं में बुद्ध के समय से जैनधर्म का प्रचार था। गौतमबुद्ध के स्वर्गवासी होने के बाद बौद्ध भिक्षु खेम ने कलिंग के राजा ब्रम्हदत्त को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था। ब्रम्हदत्त का पुत्र काशीराज और पौत्र सुनन्दभी बौद्ध रहे थे।[257] किन्तु उपरान्त फिर जैनधर्म का प्रचार कलिंग में हो गया। यह

252 बंधि ओ जैस्मा पृ ८१

253 IHQ, Vol p 522

254 "सतदिसानुं भनितम् तपसि-इसिनं संघियनं अरहत निसीदिया समीपे ------ चोयथि अंगसतिक तुरियं उपादयति।" -- JBORS, XIII 236-237

255 अनेकान्त, वर्ष १ पृष्ट २२८

256 JBORS, III p 505

257 दन्त धातु ततो खेमो अत्तना गहित अदा।
दन्तपूरे कलिङस्स ब्रहादत्तस्स राजिनो।५७।।२
देसयित्वान सो धम्मं भेत्वा सब्ब कुदिट्ठियो।
राजानं तं पसादेसि अग्गम्हिरतनत्तये।।५८।।
अनुजातो ततो तस्स कासिराज व्हयो सुतो।
रज्जं लर्का अमज्ञान सोकसल्लमपानुदि।।६६।
सुनन्दो नाम राजिन्दो आनन्दजननो संत।

तस्स भ्रजो ततो आसि बुद्धसासननामको। ।८८। -- दाठा. पृ. ११-१२

समय सभवतः खारवेल आदि का होगा। कालान्तर में कलिंग का गुहशिव नाम प्रतापी राजा निग्रन्थ साधुओं का भक्त कहा गया है। उसके बौद्ध मत्री ने उसे जैनधर्म विमुख बना लिया था। निग्रन्थ साधु उसकी राजधानी छोडकर पाटलिपुत्र चले गये थे। सम्राट् पाण्डु वहा पर शासनाधिकारी था। निग्रन्थ साधुओं ने उससे गुहशिव की धृष्टता की बात कही थी।[258] यह घटना लगभग ईसवी तीसरी या चौथी शताब्दि की कही जा सकती है। और इससे प्रगट है कि उस समय तक दिगम्बर मुनियों की प्रधानता कलिंग अंग-बंग और मगध में विद्यमान थी। दिगम्बर मुनियों को राजाश्रय मिला हुआ था।

कुमारी पर्वत पर के शिलालेखों से यह भी प्रगट है कि कलिंग में जैन धर्म दसवीं शताब्दि तक उन्नतावस्था पर था। उस समय वहा पर दिगम्बर जैन मुनियों के विविध सघ विद्यमान थे, जिनमें आचार्य यशनन्दि, आचार्य कुलचन्द्र तथा आचार्य शुभचन्द मुख्य साधु थे।[259]

इस प्रकार कलिंग में दिगम्बर जैन धर्म का बाहुल्य एक अतीव प्राचीन काल से रहा है और वहा पर आज भी सराक लोग एक बडी सख्या में हैं, जो प्राचीन श्रावक है[260] उनका अस्तित्व इस बात का प्रमाण है कि कलिंग में जैनत्व की प्रधानता आधुनिक समय तक विद्यमान् रही थी।

---

258 गुहसीव व्हेयाराजा दुरितिक्कमसासनो।
तातो रज्जसिरिं पत्वा अनुगणिह महाजन ।।८२।।२।।
सवरत्थानभिज्सो लाभासक्कारलोलुपे।
मायाविनों अविज्जनधे निगन्थे समुपट्ठहि ।।८३।।
x x x x
तस्सा मच्चस्स सोराजा सुत्वाधम्मसुभासितं।
दुल्लद्धिमलमुज्झित्वा पसीदिरतनत्तये।।८६।।
x x x x
इति सो चिन्यित्वान गुहसीवो नराधिपो।
पवाजेसि सकारट्ट निगण्ठे ते असेसके।।८६।।
ततो निगणठा सव्वेपि धतसित्तानला यथा।
कोधग्गिजलिता गच्छ पुरं पाटलिपुत्तक।। ९०।।
x x x x
तथ्थ राजा महातेजो जम्बुदीपस्स हस्सरो।
पणडु नामोतदा आसि अनन्त बलवाहनों।९१।।
कोधन्धोऽथ निगण्ठा ते सव्वे पेसुअकारका।
उपसकम्मराजानै इद बचवनमब्रवुं ।।९२।। इत्यादि' -- दाठा पृ १३-१४

259 बंधिओ जैस्मा पृ ९४-९६

260 बंधिओ जैस्मा, १०१-१०४

[17]

गुप्त-साम्राज्य में दिगम्बर-मुनि।

"The Capital of the Gupta emperors became the centre of Brahmanical culture but the masses followed the religions traditions of their forefathers, and Buddhist & Jain monasteries continuedto be public schools and universities for the greater part of India."
- E. B. Havell., HARI,p 156

यद्यपि गुप्तवश के राज्यकाल में ब्राम्हण धर्म की उन्नति हुई थी, किन्तु जन-साधारण में अब भी जैन और बौद्ध धर्मो का ही प्रचार था। दिगम्बर जैन मुनिगण ग्राम-ग्राम विचर कर जनता का कल्याण कर रहे थे और दिगम्बर उपाध्याय जैन विद्यापीठों के द्वारा ज्ञान-दान करते थे। गुप्त काल में मथुरा, उज्जैन, श्रावस्ती, राजगृह आदि स्थान जैन धर्म के केन्द्र थे। इन स्थानों पर दिगम्बर जैन साधुओं के सघ विद्यमान थे। गुप्त-सम्राट अब्राम्हण साधुओं से द्वेष नहीं रखते थे,[261] तथापि उनका वाद ब्राम्हण विद्वानों के साथ कराकर सुनना उन्हें पसन्द था।

श्री सिद्धसेनदिवाकर के उद्‌गारों से पता चलता है कि "उस समय सरलवाद पद्धति और आकर्षक शन्तिवृत्ति का लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था। निग्रन्थ अकेले दुकेले ही ऐसे स्थलों पर जा पहुचते थे और ब्राम्हणदि प्रतिवादी विस्तृत शिष्य समूह और जनसमुदाय सहित राजसी ठाठ-बाठ के साथ पेश आते थे, तो भी जो यश निग्रन्थों को मिलता था वह उन प्रतिवादियों को अप्राप्य था।"[262]

बगाल में पहाडपुर नामक स्थान दिगम्बर जैन सघ का केन्द्र था। वहा के दिगम्बर मुनि प्रसिद्ध थे।[263]

गुप्तवश में चन्द्रगुप्त द्वितीय प्रतापी राजा था। उसने 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की थी। विद्वानों का कथन है कि उसी की राज-सभा में निम्नलिखित विद्वान थे।[264]

धन्वन्तरि.क्षपणकोऽमरसिंहशकुर्वेतालभट्‌घटखर्परकालिदासा। ख्यातो वराहमिहिरो नृपते· सभाया रत्नानि वे वररुचिर्नव विक्रमस्य।।"

---

261 भाइ, पृ ६१
262 जैहि भा १४ पृ १५६
263 IHQ VII 441
264 रथा, १३३।

इन विद्वानों में 'क्षपणक' नाम का विद्वान एक दिगम्बर मुनि था। आधुनिक विद्वान् उन्हें सिद्धसेन नामक दिगम्बर जैनाचार्य प्रकट करते है।[265] जैनशास्त्र भी उनका समर्थन करते हैं। उनसे प्रकट है कि श्री सिद्धसेन ने महाकाली के मन्दिर में चमत्कार दिखाकर चन्द्रगुप्त को जैनधर्म में दीक्षित कर लिया था।[266]

उपरोक्त विद्वानों में से अमरसिंह[267] वराहमिहिर[268] आदि ने अपनी रचनाओं में जैनों का उल्लेख किया है उससे भी प्रकट है कि उस समय जैनधर्म काफी उन्नतरूप में था। वराहमिहिर ने जैनों के उपास्य देवता की मूर्ति नग्न बनती लिखी है, इससे यह स्पष्ट है कि उस समय उज्जैनी के नकट भद्दलपुर (वीसनगर) में उस समय दिगम्बर मुनियों का संघ मौजूद था, जिसके आचार्यो की कालानुसार नामावली निम्नप्रकार है:-

1	श्री मुनि वज्रनन्दी .	सन् 307 में आचार्य हुये
2	श्री मुनि कुमार नन्दी	329 " "
3	श्री मुनि लोकचन्द्र प्रथम .	360 " ""
4.	श्री मुनि प्रभाचन्द्र " .	396 " "
5.	श्री मुनि नेमिचन्द्र "	421 " "
6.	श्री मुनि भानुनन्दि .	430 " "
7.	श्री मुनि जयनन्दि .	451 " "
8	श्री मुनि वसुनन्दि	468 " "
9	श्री मुनि वीरनन्दि	474 " "
10	श्री मुनि रत्नमन्दी	504 " "
11	श्री मुनि माणिक्यनन्दी	528 " "
12.	श्री मुनि मेघचन्द्र	544 " "
13.	श्री मुनि शान्तिकीर्ति प्रथम	560 " "
14	मेरुकीर्ति	585 " "[269]

इनके बाद जो दिगम्बर जैनाचार्य हुये, उन्होंने भद्दलपुर (मालवा) से हटाकर जैनसघ का केन्द्र उज्जैन में बना दिया।[270] इससे भी स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के निकट जैनधर्म को आश्रय मिला था। उसी समय चीनी-यात्री फाहहान भारत में आया था। उसने मथुरा के उपरान्त मध्यदेश में 96 पाखण्डों का प्रचार लिखा है। वह कहता है कि "वे सब लोक और परलोक मानते हैं। उनके साधु सघ हैं। वे भिक्षा करते हैं, केवल भिक्षापात्र नहीं रखते। सब नानारूप से धर्मानुष्ठान करते है।"[271] दिगम्बर-मुनियों के

265 रथा चरित्र पृ १३३-१४१

266 वीर, वर्ष १ पृ ४०१

267 अमरकोष देखो

268 'नग्नान् जिनाना विदु ।' --वराहमिहिर संहिता

269 पट्टावली जैहि , भाग ६ अंक ६-७ पृ २६-३० व IA., XX 351-352

270. IA , XX 352

271 फाहयान पृ ४६ ।

पास शिक्षापत्र नहीं होता–वे परिग्रह भोजी और उनके संघ होते हैं। तथा वे अहिंसा धर्म का उपदेश मुक्तता से देते हैं। फाह्यान कहता है कि "सारे देश में सिवाय चाण्डाल के कोई अधिवासी न जीवहिंसा करता है, न मद्य पीता है और न लहसुन खाता है।. . न कहीं सूनागार और मद्य की दुकानें हैं।"[272] उसके इस कथन से भी जैन मान्यता का समर्थन होता है कि मथुरापुर, उज्जैनी आदि मध्यदेशवर्ती नगरों में दिगम्बर जैन मुनियों के संघ मौजूद थे और उनके द्वारा अहिंसा धर्म की उन्नति होती थी।

फाह्यान संकाश्य, श्रावस्ती, राजगृह आदि नगरों में भी निग्रन्थ साधुओं का अस्तित्व प्रगट करता है। संकाश्य उस समय जैन-तीर्थ माना जाता था। संभवतः वह भगवान विमलनाथ तीर्थंकर का केवलज्ञान स्थान है। दो-तीन वर्ष हुये वहीं निकट से एक नग्न जैनमूर्ति निकली थी और वह गुप्तकाल की अनुमान की गई है।[273] इस तीर्थ के सम्बन्ध में निग्रन्थों और बौद्धभिक्षुओं में वाद हुआ वह लिखता है।[274] श्रावस्ती में भी बौद्धों ने निग्रन्थों से विवाद किया वह बताता है।[275] श्रावस्ती में उस समय सुहृद्ध्वज वंश के जैनराजा राज्य करते थे।[276] कुहाऊं (गोरखपुर) से जो स्कन्दगुप्त के राजकाल का जैनलेख मिला है[277] उससे स्पष्ट है कि इस ओर अवश्य ही दिगम्बर जैनधर्म उन्नतावस्था पर था।

साँची से एक जैन लेख विक्रम सं. 468 भाद्रपद चतुर्थी का मिला है। उसमें लिखा है कि उन्दान के पुत्र आमरकार देवने ईश्वरवासक गाव और 25 दीनारों का दान किया। यह दान काकनादबोट के जैन विहार में पाँच जैनभिक्षुओं के भोजन के लिये और रत्नगृह में दीपक जलाने के लिये दिया गया था। उक्त आमरकारदेव चन्द्रगुप्त के यहा किसी सैनिकपद पर नियुक्त था।[278] यह भी जैनोत्कर्ष का द्योतक है।

राजगृह पर भी फाह्यान निग्रन्थों का उल्लेख करता है।[279] वहां की सुभद्रगुफा में तीसरी या चौथी शताब्दि का एक लेख मिला है जिससे प्रगट है कि मुनिसंघ ने मुनि वैरदेव को आचार्य पद पर नियुक्त किया था।[280] राजगृह में गुप्तकाल की अनेक दिगम्बर मूर्तिया भी हैं।[281]

साराशतः गुप्तकाल में दिगम्बर मुनियों का बाहुल्य था और वे सारे देश में घूम-घूम कर धर्मोद्योत कर रहे थे।

---

272 फाहायान, पृ ३१

273 IHQ , Vol. V p 142

274. फाहायान, पृ ३५-३६

275 फाहायान, पृ. ४०-४५

276. संप्राजैस्मा. पृ ६५

277 भाप्रारा., भा. ६५

278. भाप्रा., भा २ पृ २६३

279 "Here also the Nigantha made a pit with fire in it and poisoned the food of which he invited Buddha to partake (The Niganthas were ascetics who went naked). --- Fa-Hian, Beal , pp 110-113 यह उल्लेख साम्प्रदायिक द्वेष का द्योतक है।

280 बंविओ जैस्मा , पृ १६

281. "Report on the Ancient Jain Remains on the hills of Rajgir" submitted to the Patna Court by R B. Ramprasad chanda B A ch IV p 30 (Jain Images of the Gupta & Pala period at Rajgir)

[18]

हर्षवर्द्धन् तथा हुएनसांग के समय में दिगम्बर-मुनि।

"बौद्धों और जैनियों की भी सख्या बहुत अधिक थी।. बहुत से प्रान्तीय राजा भी इनके अनुयायी थे। इनके धार्मिक-सिद्धान्त और रीति-रिवाज भी तत्कालीन समाज पर पर्याप्त प्रभाव डाले हुये थे। इसके अतिरिक्त तत्कालीन समाज में साधुओं , तपस्वियों, भिक्षुओं और यतियों का एक बड़ा भारी समुदाय था, जो उस समय के समाज में विशेष महत्व रखता था। (हिन्दुओं में) बहुत से साधु अपने निश्चित स्थानों पर बैठे हुये ध्यान-समाधि करते थे, जिनके पास भक्त लोग उपदेश आदि सुनने आया करते थे। बहुत से साधु शहरों व गावों में घूम घूम कर लोगों को उपदेश एव शिक्षा दिया करते थे। यही हाल बौद्ध भिक्षुओं और जैन साधुओं का भी था।

साधारणत लोगों के जीवन को नैतिक एव धार्मिक बनाने में इन साधुओं, यतियों और भिक्षुओं का बड़ा भारी भाग था।"

- कृष्णचन्द विद्यालकार।[282]

गुप्त-साम्राज्य के नष्ट होने पर उत्तर भारत का शासन योग्य हाथों में न रहा। परिणाम यह हुआ की शीघ्र ही हूण जाति के लोगों ने भारत पर आक्रमण करके उस पर अधिकार जमा लिया। उनका राज्य सभी धर्मों के लिये थोडा बहुत हानिकर हुआ, किन्तु यशोधर्मन् राजा ने सगठन करके उन्हें परास्त कर दिया। इसके बाद हर्षवर्द्धन नामक सम्राट एक ऐसे राजा मिलते हैं जिन्होंने सारे उत्तर-भारत में प्राय अपना अधिकार जमा लिया था और दक्षिण-भारत को हथियाने की भी जिन्होंने कोशिश की थी। इनके राजकाल में प्रजा ने सतोष की सास ली थी और वह धर्म-कर्म की बातों की ओर ध्यान देने लगी थी।

गुप्तकाल से ही ब्राह्मण-धर्म का पुनरुत्थान होने लगा था और इस समय भी उसकी बाहुल्यता थी, किन्तु जैन और बौद्धधर्म भी प्रतिभाशाली थे। धार्मिक जागृति का वह उन्नत काल था। गुप्त काल से जैन, बौद्ध और ब्राह्मण विद्वानों में वाद और शास्त्रार्थ होना प्रारम्भ हो गये थे। हर्षकाल में उनको वह उन्नत रुप मिला कि समाज में विद्वान् ही सर्व श्रेष्ठपुरुष गिना जाने लगा।[283] इन विद्वानों में दिगम्बर-मुनियों का भी सद्भा था। सम्राट हर्ष के राजकवि बाण ने अपने ग्रन्थों में उनका उल्लेख किया है। वह लिखता है कि "राजा

---

282. हर्षकालीन भारत - "त्यागभूमि" वर्ष २ खण्ड १ पृ ३०१
283 भाइ , पृ १०३-१०४

जब गहन जंगल में आ पहुंचा तो वहां उसने अनेक तरह के तपस्वी देखे। उनमें नग्न (दिगम्बर) आर्हत (जैन) साधु भी थे।[284] "हर्ष ने अपने महासम्मेलन में उन्हें शास्त्रार्थ के लिये बुलाया था और वह एक बड़ी संख्या में उपस्थित हुवे थे।[285] इससे प्रकट है कि उस समय हर्ष की राजधानी के आस-पास भी जैन धर्म का प्राबल्य था, वैसे तो वह सारे भारत में फैला हुआ था। उज्जैन का दिगम्बर जैन संघ अब भी प्रसिद्ध था और उसमें तत्कालीन निम्न दिगम्बर जैनाचार्य मौजूद थे -[286]

1	श्री दिग. जैनाचार्य महाकीर्ति,	सन् 629 को आचार्य हुये:
2	"" विष्णुनन्दि,	" 647 ""
3	"" श्रीभूषण,	" 669 ""
4	" " श्रीचन्द्र	" 678 ""
5.	" " श्रीनन्दि,	" 692 ""
6	" " देशभूषण	" 708 " "

इत्यादि।

सम्राट हर्ष के समय में (7वीं श.) चीन देश से हुएनसाग नामक यात्री भारत आया था। उसने भारत और भारत के बाहर दिगम्बर जैन मुनियों का अस्तित्व बतलाया है।[287] वह उन्हें निग्रंथ और नंगेसाधु लिखता है तथा उनकी केशलुच्चनक्रिया का भी उल्लेख करता है।[288] वह पेशावर की ओर से भारत में घुसा था। और वहीं सिंहपुर में उसने नंगे जैन मुनियों को पाया था।[289] इसके उपरान्त पंजाब के और मथुरा, स्थानेश्वर, ब्रह्मपुर, अहिक्षेत्र, कपिथ, कन्नौज, अयोध्या, प्रयाग, कौशाम्बी, बनारस, श्रावस्ती, इत्यादि मध्यदेश वर्ती नगरों में यद्यपि उसने दिगम्बर मुनियों का प्रथक उल्लेख नहीं किया है, परन्तु एक साथ सब प्रकार के साधुओं का उल्लेख करके उसने उनके अस्तित्व को इन नगरों में प्रकट कर दिया है। मथुरा के सम्बन्ध में वह लिखता है कि "पाच देवमन्दिर भी हैं, जिनमें सब प्रकार के साधु उपासना करते हैं"[290] स्थानेश्वर के विषय में उसने लिखा है कि "कई सौ

---

284 दिमु., पृ. २१

285 HARI., p. 270

286 जैहि., भा. ६ अक ६-८ पृ. 30 व IA., XX. 352

287 "Hieun Tsang found them (Jains) spread through the whole of India and even beyond its boundaries." -- AISJ., p. 45 विशेष के लिये व्हॉनसाँग का भारत भ्रमण (इण्डियन प्रेस लि.) देखो।

288 "The Li-Hi (Nirgranthas) distinguish them selves by leaving their bodies naked & pulling out their hair. Their skin is all cracked, their feet are hard & chapped like cotting trees." -- (St. Julien, Vienna, p224)

289 हुआ., पृ. १४३

290 हुआ., पृ. १८१

देवमन्दिर बने है, जिनमें नाना जाति के अगणित भिन्न धर्मावलम्बी उपासना करते है।"[291] ऐसे ही उल्लेख अन्य नगरों के सबध में उसने किये हैं। राजगृह के वर्णन में हुएनत्सांग ने लिखा है कि "विपुल पहाडी की चोटी पर एक स्तूप उस स्थान में है, जहां प्राचीनकाल में तथागत भगवान् ने धर्म की पुनरावृत्ति की थी। आजकल बहुत से निग्रन्थ लोग (जो नंगे रहते हैं) उस स्थान पर आते है और रात दिन अविराम तपस्या किया करते हैं तथा सबेरे से सांझ तक इस (स्तूप) की प्रदक्षिणा करके बडी भक्ति से पूजा करते हैं।"[292]

पुण्ड्रवर्द्धन् (बगाल) में वह लिखता है कि "कई सौ देवमन्दिर भी हैं, जिनमें अनेक सम्प्रदाय के विरुद्ध धर्मावलम्बी उपासना करते हैं। अधिक सख्या निग्रन्थ लोगों (दिगम्बर मुनियों) की है।"[293]

समतट (पूर्वी बगाल) में भी उसने अनेक दिगम्बर साधु पाये थे। वह लिखता है, "दिगम्बर साधु, जिनको निग्रन्थ कहते हैं, बहुत बडी सख्या में पाये जाते हैं।[294]

ताम्रलिप्ति में वह विरोधी और बौद्ध दोनों का निवास बतलाता है। कर्णसुवर्ण के सम्बन्ध में भी यही बात कहता है।[295]

कलिंग में इस समय दिगम्बर जैन धर्म प्रधान पद ग्रहण किये हुये था। हुएनसाग कहता है कि वहां 'सबसे अधिक सख्या निग्रन्थ लोगों की है।'[296] इस समय कलिंग में सेनवंश के राजा राज्य कर रहे थे, जिनका जैन धर्म से सम्बन्ध होना बहुत कुछ सभव है।[297]

दक्षिण कौशल में वह विधर्मी और बौद्ध दोनों को बताता है। आन्ध्र मे भी विरोधियों का अस्तित्व वह प्रगट करता है।[298]

चोल देश में वह बहुत से निग्रन्थ लोग बताता है।[299] द्रविड के सम्बन्ध में वह कहता है कि "कोई अस्सी देव मन्दिर और असख्य विरोधी है, जिनको निग्रन्थ कहते हैं।"[300]

मालकूट (मलय देश) में वह बताता है कि "कई सौ देव मन्दिर और असख्य विरोधी है, जिनमें अधिकतर निग्रन्थ लोग हैं।[301]

इस प्रकार हुएनसाग के भ्रमण वृतान्त से उस समय प्राय सारे भारतवर्ष में दिगम्बर जैनमुनि निर्बाध विहार और धर्मप्रचार करते हुये मिलते हैं।

---

291 हुआ, पृ १६६
292 हुआ, पृ ४७४-४७५
293 हुआ, पृ ५२६
294 हुआ., पृ ५३३
295 हुआ, पृ ५३५-५३७
296 हुआ, पृ ५४५
297. वीर वर्ष ४ पृ. ३२८-३३२
298 हुआ, पृ. ५४६-५५७
299. हुआ, पृ. ५७७
300 हुआ, पृ ५७२
301 हुआ, पृ ५७४

[19]

मध्यकालीन हिन्दू राज्य में दिगम्बर मुनि।

> "श्री धाराधिप भोजराज मुकुट प्रोताश्मरश्मिच्छटा-
> च्छाया कुंकुम-पंक-लिप्त-चरणाम्भोजात-लक्ष्मीधव'।
> न्यायाब्जाकरमण्डने दिनमणिश्शब्दाब्ज रोदोमणि-
> स्थेयात्पण्डित-पुण्डरीक तरणि श्री माणभाचंद्रमा:।।"
>
> — चन्द्रगिरि शिलालेख।

राजपूत और दिगम्बर मुनि

हर्ष के उपरांत उत्तर भारत में कोई एक सम्राट न रहा, बल्कि अनेक छोटे छोटे राज्यों में वह देश विभक्त हो गया। इन राज्यों में अधिकांश राजपूतों के अधिकार में थे और इनमें दिगम्बर मुनि निर्बाध विचर कर जनकल्याण करते थे। राजपूतों में अधिकाश जैसे चौहान, पडिहार आदि एक समय जैन धर्म भुक्त थे और उनके कुलदेवता चक्रेश्वरी, अम्बा आदि शासन देवियों थी।[302]

उत्तर भारत में कन्नौज को राजपूत-काल में भी प्रधानता प्राप्त हो रही है। वहां का राजाभोज परिहार (840-90 ई) सारे उत्तर-भारत का शासनाधिकारी था। जैनाचार्य बप्पसूरि ने उसके दरबार में आदर प्राप्त किया था।[303]

श्रावस्ती, मथुरा, असाईखेड़ा, देवगढ़, वारानगार, उज्जैन आदि स्थान उस समय भी जैन केन्द्र बने हुये थे। ग्यारहवीं शताब्दी तक श्रावस्ती में जैनधर्म राष्ट्रधर्म रहा था। वहा का अन्तिम राजा सुहृद्ध्वज था।[304] उसके संरक्षण में दिगम्बर मुनियों का लोक कल्याण में निरत रहना स्वाभाविक है।

बनारस के राजा भीमसेन जैन धर्मानुयायी थे और वह अन्त में पहितारव नामक जैन मुनि हुये थे।[305]

मथुरा में रणकेतु नामक राजा जैनधर्म का भक्त था। वह अपने भाई गुणवर्मा सहित नित्य जिनपूजा किया करता था। आखिर गुणवर्मा को राज्य देकर वह जैन मुनि हो गया था।[306]

---

302 "वीर", वर्ष ३ पृ ४७२ एक प्राचीन जेन गुटका मे यह वात लिखी हुई है।
303 भाइ पृ १०८ व दिजै, वर्ष २३ पृ ८४
304. संप्राजैस्मा, पृ ६५
305 जैप्र पृ. २४२
306 पूर्व

सूरीपुर (जिला आगरा) का राजा जितशत्रु भी जैनी था वह बड़े-बड़े विद्वानों का आदर करता था। अन्त में वह जैनमुनि हो गया था और शान्ति कीर्ति के नाम से प्रसिद्ध हुआ था।[307]

मालवा के परमार राजा और दिगम्बर मुनि

मालवा के परमार वंशी राजाओ में मुञ्ज और भोज अपनी विद्यारसिकता के लिये प्रसिद्ध हैं। उनकी राजधानी धारानगरी विद्या की केन्द्र थी। मुञ्ज के दरबार में धनपाल, पद्मगुप्त, धनञ्जय, हलायुद्ध आदि अनेक विद्वान थे।[308] मुञ्ज नरेश से दिगम्बर जैनाचार्य महासेन ने विशेष सम्मान पाया था।[309] मुञ्ज के उत्तराधिकारी सिंधुराज के एक सामन्त के अनुरोध से उन्होंने प्रद्युम्नचरित काव्य की रचना की थी। कवि धनपाल का छोटा भाई जैनाचार्य के उपदेश से जैन हो गया था, किन्तु धनपाल को जैनों से चिढ थी। आखिर उनके दिलपर भी सत्य जैनधर्म का सिक्का जम गया और वे भी जैनी हो गये थे।[310]

दिगंबर जैनाचार्य श्री शुभचन्द्र भी राजा मुञ्ज के समकालीन थे। उन्होनें राज का मोह त्यागकर दिगबरी दीक्षा ग्रहण की थी।[311]

राजा मुञ्ज के समय में ही प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य श्री अमितगतिजी हुये थे। वह माथुर संघ के आचार्यमाधवन के शिष्य थे। 'आचार्यवर अमितगति बडे भारी विद्वान् और कवि थे। इनकी असाधारण विद्वत्ता का परिचय पाने को इनके ग्रन्थों का मनन करना चाहिये। रचना सरल और सुखसाध्य होने पर भी बडी गभीर और मधुर है। सस्कृत भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था।'[312]

'नीतिवाक्यामृत' आदि ग्रन्थों के रचयिता दिगम्बराचार्य श्री सोमदेव सूरी श्री अमितगति आचार्य के समकालीन थे। उस समय इन दिगम्बराचार्यो द्वारा दिगम्बर धर्म की खूब प्रभावना हो रही थी।[313]

राजाभोज और दिगम्बर मुनि

मुञ्ज के समान राजा भोज के दरबारी में भी जैनों को विशेष सम्मान प्राप्त था। भोज स्वय शैव था, परन्तु 'वह जैन और हिन्दुओं के शास्त्रार्थ का बडा अनुरागी था।' श्री प्रभाचन्द्राचार्य का उसने बडा आदर किया था। दिगम्बर जैनाचार्य श्री शान्तिसेन ने भोज की सभा में सैकडो विद्वानों से वाद करके उन्हें परास्त किया था।[314]

307 पूर्व पृ २४१
308 "भाप्रारा, भा १ पृ १००
309 मप्राजैस्मा, भूमिका, पृ २०
310 भाप्रारा भा १ पृ १०३-१०४
311 मजैइ, पृ ५४-५५
312 विको, भा २ पृ ६४
313 विर, ११५
314. भाप्रारा, भाग १ पृ. ११८-१२१

एक कवि कालिदास राजा भोज के दरबार में भी थे कहते हैं कि उनकी स्पर्द्धा दिगम्बराचार्य श्रीमानतुड्. जी से थी उन्हीं के उकसाने पर राजा भोज ने मानतुङ्गाचार्य को अड़तालीस कोठों के भीतर बन्द कर दिया था, किन्तु श्री 'भक्तामर स्तोत्र' की रचना करते हुये वह आचार्य अपने योगबल से बन्धनमुक्त हो गये थे। इस घटना से प्रभावित होकर कहते हैं, राजा भोज जैनधर्म में दीक्षित हो गये थे,[315] किन्तु इस घटनाक्रम का समर्थन किसी अन्य श्रोत से नहीं होता।

श्रीब्रह्मदेव के अनुसार 'द्रव्यसंग्रह' के कर्त्ता श्री नेमिचन्द्राचार्य भी राजा भोजदेव के दरबार में थे।[316] श्री नयनन्दि नामक दिगम्बर जैनाचार्य ने अपना "सुदर्शन चरित" राजा भोज के राजकाल में समाप्त किया था।[317]

उज्जैनी का दिगम्बर संघ

भोज ने अपनी राजधानी उज्जैनी में स्थापित की थी। उस समय भी उज्जैनी अपने "दि जैन सघ" के लिए प्रसिद्ध थी। उस समय तक उस सघ में निम्न आचार्य हुये थे -[318]

अनन्तकीर्ति	सन् 708ई
धर्मनन्दि	" 728 "
विद्यानन्दि	" 751 "
रामचन्द्र	" 783 "
रामकीति	"790 "
अभयचन्द	"821 "
नरचन्द्र	" 840 "
नागचन्द्र	" 859 "[319]
हरिनन्दि	" 882 "
हरिचन्द्र	" 891"
महीचन्द्र	" 917
माघचन्द्र	" 933 "
लक्ष्मीचंद्र .	" 966"
गुणकीर्ति .	" 970 "
गुणचन्द्र	" 991 "
लोकचन्द्र	" 1009 "

315 भक्तमरकथा - जैप्र , पृ २३८

316 द्रसं, पृ. १ वृत्ति.

317 मप्राजैस्मा , भूमिका पृ २०

318 जैहि , भा ६ अंक ७-८ पृ ३०-३१

319 ईडर से प्राप्त पट्टावली में लिखा है कि "इन्होने दश वर्ष विहार किया था और यह स्थिर व्रती थे।" --दिजै वर्ष १४ अंक १० पृ १७-२४

श्रुतकीर्ति .	"1022"
भावचन्द्र	"1037"
महीचन्द्र .	" 1058"

आपके संघ में दिग. मुनियों की सख्या अधिक थी और आपके धर्मोपदेश के द्वारा धर्म प्रभावना विशेष हुई थी।[320]

इनकी उपाधिय 'त्रिविधविधेश्व रवैयाकरणभासकर महामण्डलाचार्यतर्कवागीश्वर' थी। इनके विहारद्वारा खूब प्रभावना हुई।[321]

उपरान्त परमार राजाओं के समये में दिगम्बरमुनि

मालवा के परमार राजाओं में विन्ध्यवर्मा का नाम भी उल्लेखनीय है। इस राजा के राजकाल में प्रसिद्ध जैन कवि आशारधर ने ग्रन्थरचना की थी और उस समय कई दिगम्बर मुनि भी राजसम्मान पाये हुये थे। इनमें मुनि उदयसेन और मुनि मदनकीर्ति उल्लेखनीय है। मुनि मदनकीर्ति ही विन्ध्यवर्मा के पुत्र अर्जुनदेव के राजगुरु मदनोपाध्याय अनुमान किये गये हैं। इन्हें और मुने विशालकीर्ति, मुनि विनयचन्द्र आदि को कविवर आशाधर ने जैन सिद्धान्त और साहित्य ज्ञान में निपुण बनाया था। नालछा उस समय जैन धर्म का केन्द्र था।[322]

श्वेताम्बर ग्रन्थ "चतुविशति प्रबन्ध" में लिखा है कि उज्जैनी में विशालकीर्ति नामक दिगम्बराचार्य के शिष्य मदनकीर्ति नाम के दिगबर साधु थे। उन्होंने वादियों को पराजित करके 'महाप्रामाणिक' पदवी पाई थी और कर्णाटक देश में जाकर विजयपुर नरेश कुन्तिभोज के दरबार में आदर पाया था और अनेक विद्वनों को पराजित किया था, किन्तु अन्त में वह मुनिपद से भ्रष्ट हो गए थे।[323]

गुजरात के शासक और दिगम्बर मुनि

मालवा के अनुरूप गुजरात भी दिगम्बर जैन मुनियों का केन्द्र था। अकलेश्वर में भूतबलि और पुष्पदन्ताचार्य ने दिगबर आगम ग्रन्थों की रचना की थी। गिरि नगर के निकट की गुफाओं में दिगबर मुनियों का सघ प्राचीन काल में रहता था। भृगुकच्छ भी दिगबर जैनों का केन्द्र था।

गुजरात में चालुक्य, राष्ट्रकूट आदि राजाओं के समय में दिगबर जैनधर्म उन्नतशील था। सोलंकियों की राजधानी अणहिलपुरपट्टन में अनेक दिगबर मुनि थे। श्रीचन्द्र मुनि ने वहीं ग्रन्थ रचना की थी।[324] योगचन्द्र मुनि[325]- और मुनि कनकामर भी शायद गुजरात में हुए थे। ईडर के दिगम्बर साधु प्रसिद्ध थे।

320 दिजै , वर्ष १४ अंक १० पृ १६-२४
321 पूर्व
322 भाप्रारा , भाग १ पृ १५७ व सागार भूमिका पृ ६
323 जैहि , भा ११ पृ ४८५
324 वीर वर्ष १ पृ ६३७
325 वीर, वर्ष १ पृ ६३८

सोलंकी सिद्ध राजा ने एक वाद सभा कराई थी, जिस में भाग लेने के लिये कर्णाटक देश से कुमुदचन्द्र नामक एक दिगम्बर जैनाचार्य आये थे। दिगम्बराचार्य नग्न ही पाटन पहुंचे थे। सिद्धराज ने उनका बड़ा आदर किया था। देवसूरि नामक श्वेताम्बराचार्य से उनका वाद हुआ था।[326] इस उल्लेख से स्पष्ट है कि उस समय भी दिगंबर जैनों का गुजरात में इतना महत्व था कि शासक राजकुल का भी ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ था।

दिगम्बराचार्य ज्ञानभूषण

गुर्जर, सौराष्ट्र आदि देशों में जिनधर्म का प्रचार श्री दिगम्बर भट्टारक के ज्ञानभूषण जी द्वारा हुआ था। अहीरदेश में उन्होंने ऐलकपद धारण किया था और वाग्वरदेश में महाव्रतों को उन्होंने अंगीकार किया था। विहार करते हुये वह कर्णाटक, तौलव, तिलंग, द्राविड़, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, रायदेश, भेदपाट, मालव मेवात कुरूजांगल, तुरूव, विराटदेश, नमियाडदेश, टग, राट, नाग, चोल आदि देशों में विचरे थे। तौलवदेश के महावादीश्वर विद्वज्जनों और चक्रवर्तियों के मध्य उन्होंने प्रतिष्ठा पाई थी। तुरवदेश में षट्दर्शन के ज्ञाताओं का गर्व उन्होंने नष्ट किया था। नमियाड़ देशों में जिनधर्म प्रचार के लिए नौ हजार उपदेश को उन्होंने नियुक्त किया था। दिल्ली पट्ट के वह सिंहासनाधीश थे। श्रीदेवराय राज, मुदिपालराय, रामनाथराय, बोमरसराय, कलपराय, पाण्डुराय आदि राजाओं ने उनके चरणों की बन्दना की थी।[327]

दिगम्बर जैनाचार्य श्री शुभचन्द्र

श्री ज्ञानभूषण जी के प्रशिष्य श्री शुभचन्द्राचार्य भी दिगम्बर मुनि थे। उनका पट्ट भी दिल्ली में रहा था। उन्होंने भी विहार करते हुये गुजरात के वादियों का मद नष्ट किया था। वह एक अद्वितीय विद्वान और वादी थे। अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। पट्टावली में उनके लिये लिखा है कि "वह छन्द अलंकारादिशास्त्र-समुद्र के पारगामी, शुद्धात्मा के स्वरूप चिन्तन करने ही से निद्रा को विनिष्ट करने वाले, सब देशों में विहार करने से अनेक कल्याणों को पाने वाले, विवेक, विचार, चतुरता, गम्भीरता, धीरता, वीरता और गुणगण के समुद्र, उत्कृष्ट पात्र वाले, अनेक छात्रों का पालन करने वाले, सभी विद्वतमण्डली में सुशोभित शरीर वाले, गौड़वादियों के अन्धकार के लिये सूर्य के से, कलिंगवादियों रूपी मेघों के लिए वायु के से, कर्णाटवादियों के प्रथम वचन खण्डन करने में परम समर्थ, पूर्ववादी रूपी मातंग के लिए सिंह के से, तौलवादियों की विडम्बना के लिए वीर, गुर्जर वादिरूपी समुद्र के लिए अगस्त्य के से, मालववादियों के लिये मस्तकशूल, अनेक अभिमानियों के गर्व का नाश करने वाले, स्वसमय तथा परसमय के शास्त्रार्थ को जानने वाले और महाव्रत अंगीकार

---

326 विको, भा ५ पृ १०५

327 जैसिभा , भाग १ किरण ४ पृ ४८-४६

करने वाले थे।"[328]

वारानगर का दिगम्बर संघ

उज्जैन के उपरान्त दिगम्बर मुनियों का केन्द्र विन्ध्याचल पर्वत के निकट स्थित वारानगर नामक स्थान हो गया था।[329] वारा एक प्राचीन काल से ही जैनधर्म का गढ़ था। आठवीं या नवीं शताब्दि में वहां श्री पद्मनन्दि मुनि ने 'जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति' की रचना की थी। इस ग्रन्थ की प्रशस्ति में लिखा है कि "वारानगर में शान्ति नामक राजा का राज्य था। वह नगर धनधान्य से परिपूर्ण था। सम्यग्दृष्टि जनों से, मुनियो के समूह से और जैन मन्दिरों से विभूषित था। राजा शान्ति जिनशासनवत्सल, वीर और नरपति सपूजित था। श्री पद्मनन्दि जी ने अपने गुरु व अन्यरूप इन दिगम्बर मुनियों का उल्लेख किया है वीरनन्दी[330], बलनन्दि, ऋषिविजयगुरु, माघनन्दि, सकलचन्द्र और श्रीनन्दि। इन्हीं ऋषियो की शिष्य परम्परा के उपरान्त वारानगर में निम्नलिखित दिगम्बराचार्यो का अस्तित्व रहा था -[331]

---

328 जैसिभा, भा. १ कि पृ ४६-५० -
"छन्दोलकारादि शास्त्रसमत्पतिपार प्राप्ताना, शुद्धचिद्रूपचिन्तन विनाशिनिद्राणा, सर्वदेशविहारावाप्तानेकभद्राणां, विवेकविचार चातुर्य्य गाम्भीर्य्यधैर्य्यवीरुगुणागणसमुद्राणा, उत्कृष्टपात्राणां, पालितानेकशच्छात्राणा, विहितानेकोत्तमपात्राणम् सकलविद्विज्जनसभाशोभितगात्राणा, गौडवादितम सूर्य, कलिङ्गवादिजलदसदागति, कर्णाटवादिप्रथमवचन खण्डनसमर्थ, पूर्ववादि मत्तमातङ्गमृगेन्द्र, नौलवादिविडम्बनवीर, गूर्जर वादिसिन्धकुम्भोद्भव, मालवदिमस्तकशूल, जितानेका खर्वगर्वत्राटन व्रजाधराणा, ज्ञानसकल स्वसमयपरसमय शात्रार्थानां, अर्कीकृतमहाव्रतानाम।"

329 IA, XX 353-354

330 "सिरिनिलओ गुणसहिओ रिसिविजय गुरुत्ति विक्खाओ।"
"तव संजमसंपण्णो विक्खाओं माघनन्दिगुरु।"
"णवणियमसीलकलिदो गुणवत्तो सयलचन्द गुरु।"
"तस्सेव य वरसिस्सो णिम्मलवरणाणचरण संजुत्तो।
सम्मदंसणसुद्धो सिरिणदिगुरुत्ति विक्खाओं।१५६।।
"पंचाचार समग्गो छज्जीवदयावरो विगद मोहो।"
हरिस-विसाय-विहण णमेण य वीरणदित्ति।१५६।।
"सम्मत्त अभिगदमणो णाणेण तह दंसणे चरित्ते य।
परतंतिणियत्रमणे बलणदि गुरुत्ति विक्खाओ।।१६१।।
तवणियमजोगजुत्तो उज्जुत्तो णाणदसण चरित्ते।
आरम्भकरण रहियो णमणे य पउ मणंदीत्ति।१६२।।
"सिरि गुरुविजय सयासे सोऊण आगमं सुपरिसुद्ध।"
"जिणसासणवच्छल्लो वीरो-णरवइ संपूजिओ - वाराणायस्स पहु णारोत्मोखत्ति भूपालो सम्मादिट्ठजोणे मुणिगणणिवहेहि मडियं रम्मे"। इत्यादि। - जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, जैसा सं, भाग १ अंक ४ पृ १५०

331 जैहि, भा ६ अक ७-८ पृ ३१ व IA XX 354

माघचन्द्र	सन् 1083
ब्रह्मनन्दि	" 1087
शिवनन्दि	" 1091
विश्वचन्द्र	"1098
हरिनन्दि (सिंहनन्दि)	"1099
भावनन्दि	सन् 1103
देवनन्दि	"1110
विद्याचन्द्र	" 1113
सूरचन्द्र	" 1119
माघनन्दि	" 1127
ज्ञानन्दि	" 1131
गगकीर्ति	" 1142

इन दिगम्बराचार्यों द्वारा उस समय मध्यप्रदेश में जैनधर्म का खूब प्रचार हुआ था।

वि स 1025 में अल्लू नामक राजा की सभा में दिगंबराचार्य का वाद एक श्वेताम्बर आचार्य से हुआ था।[332]

चन्देल राज्य में दिगम्बर मुनि

चन्देल राजामदनवर्मदेव के समय (1130-1165 ई) में दिगम्बर धर्म उन्नतरूप रहा था।[333] खजुराहों में घटाई के मन्दिर वाले शिलालेख से उस समय दिगम्बराचार्य नेमिचन्द्र का पता चलता है।[334]

तेरहवी शताब्दी में अनन्त वीर्य नामक दिगम्बराचार्य प्रसिद्ध नैयायिक थे। उन्होने वादियों को गतमद किया था।[335] इसी समय के लगभग एक गुणकीर्ति नामक महामुनि विशद धर्म प्रचारक थे। उन्ही के उपदेश से प्रदमनाभ नामक कायस्थ कवि ने 'यशाधर चरित्र' की रचना की थी।[336]

राजपूताना, मध्यप्रान्त बंगाल आदि देशों के शासक और दिगम्बर मुनि।

अजमेर के चौहान राजाओं में भी दिंगबर जैनधर्म का आदर था। विजोलिया के श्री पार्श्वनाथ जी के मन्दिर को दिगम्बर मुनि पद्मनन्दि और शुभचन्द्र के उपदेश से पृथ्वीराज ने मोराकुरी गाव और सोमेश्वर राजा ने रेवाणनामक गाव भेंट किये थे।[337]

चित्तौर का जैन कीर्ति स्तम्भ वहा पर दिगम्बर जैन धर्म की प्रधानता का द्योतक है।

---

332 ADJB, p. 45

333 विको भा ६ पृ १६२।

334 विको भा पृ ६८०

335 ADJB , p 86

336 उपदेशेन ग्रन्थोऽयं गुणकीर्ति महामुने ।
कायस्थ पद्मनाभेन रचित पूर्व सूत्रत ।। - यशोधरा चरित्र।

337 राइ , भा , १ पृ ३६३

सम्राट कुमारपाल के समय वहा पहाडी पर बहुत से दिगम्बर जैन (मुनि) थे।[338]

दिगम्बर जैनाचार्य श्री धर्मचन्द्र जी का सम्मान और विनय महाराणा हम्मीर किया करते थे।[339]

झांसी जिले का देवगढ नामक स्थान भी मध्यकाल में दिगम्बर मुनियों का केन्द्र था। वहां पांचवी शताब्दि से तेरहवीं शताब्दी तक का शिल्पकार्य दिगम्बर धर्म की प्रधानता का द्योतक है।

ग्वालियर में कच्छपघाट (कछवाहे) और पडिहार राजाओं के समय में दिगम्बर जैनधर्म उन्नत रहा था। ग्वालियर किले की नग्नजैन मूर्तिया इस व्याख्या की साक्षी हैं। वारानगर के बाद दिगंबर मुनियों का केन्द्रस्थान ग्वालियर हुआ था और वहां के दिगम्बर मुनियों में स 1296 के आचार्य रत्नकीर्ति प्रसिद्ध थे। वह स्याद्वादविद्या के समुद्र, बाल ब्रह्मचारी, तपस्वी और दयालु थे। उनके शिष्य नाना देशो मे फैले हुये थे।[340]

मध्यप्रान्त के प्रसिद्ध हिन्दू शासक कलचूरी भी दिगबर जैनधर्म के आश्रयदाता थे।

बगाल में भी दिगम्बर धर्म इस समय मौजूद था, यह बात जैन कथाओं से स्पष्ट है। 'भक्तामर कथा' में चम्पापुर का राजाकर्ण जैनी लिखा है। भ महावीर की जन्मनगरी वैशाली का राजा लोकपाल जैनी था। पटना का राजा धात्रीवाहन श्रीशिवभूषण नामक मुनि क उपदेश से जैनी हुआ था। गौड देश का राजा प्रजापति बौद्धधर्मी था, परन्तु जैन साधु मतिसागर की वादशक्ति पर मुग्ध होकर प्रजासहित जैनी हुआ था।[341] इस समय का जो जैन शिल्प बंगाल आदि प्रांतों में मिलता है, उससे उक्त जैन कथाओं का समर्थन होता है। आजतक बगाल में प्राचीन श्रावक 'सराक' लोगों का बडी सख्या में मिलना वहा पर एक समय दिगम्बर जैन धर्म की प्रधानता का द्योतक है।

इस प्रकार मध्यकाल के हिन्दू राज्यों में प्राय समग्र उत्तर भारत में दि मुनियो का विहार और धर्म प्रचार होता था। आठवीं शताब्दी के उपरान्त जब दक्षिण भारत मे दिगम्बरजैनों के साथ अत्याचार होने लगा, तो उन्होंने अपना केन्द्र स्थान उत्तरभारत की ओर बढाना शुरु कर दिया था। उज्जैन, वारानगर, ग्वालियर आदि स्थानो का जैन केन्द्र होना, इस ही बात का द्योतक है। ईस्वी 9-10 शताब्दियों मे जब अरब का सुलेमान नामक यात्री भारत में आया तो उसने भी यहा नंगे साधुओं को एक बडी सख्या मे देखा था[342] साराशत. मध्यकालीन हिन्दूकाल में दिगम्बर मुनियों का भारत में बाहुल्य था।

338 "It (जैन कीर्तिस्तम्भ) belongs to the Digambar Jains, many of whom seem to have been upon the Hill in Kumarpal's time" --- मप्राजैस्मा , पृ १३५

339 "श्रीधर्मचन्द्रोऽजनितस्यपट्टे हमीर भूपाल समर्चनीय ।" जैहि - भा , ६ अक ७-८ पृ २६ ।

340 जैहि , भा ६ अंक ७-८ पृ २६

341 जैप्रा , पृ २४०-२४३

342 "In India there are persons, who, in aeecordance with their profession, wander in the woods and mountains and rarely communicate with the rest of mankind some of them go about naked "
------- Sulaiman of Arab, Elliot , I p 6

(20)

भारतीय संस्कृत-साहित्य में दिगम्बर मुनि।

"पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्षमक्षय्यमन्नं
विस्तीर्णं वस्त्रमाशा सुदश कमलं तल्पमस्वल्पमुर्वी।।
येषां निः संग तांगी करणपरिणतिः स्वात्मसन्तोषितास्ते।
धन्या. सन्यस्त दैन्यव्यतिकरनिकराः कर्मनिर्मूलयन्ति।।"

– वैराग्यशतक।

भारतीय संस्कृत साहित्य में भी दिगम्बर मुनियों के उल्लेख मिलते हैं। इस साहित्य से हमारा मतलब उस सर्वसाधारणोपयोगी संस्कृत साहित्य से है, जो किसी खास सम्प्रदाय का नहीं कहा जा सकता। उदाहरणत. कविवर भर्तहरि के शतकत्रय को लीजिये। उनके 'वैराग्यशतक' में उपरोक्त श्लोक द्वारा दिगम्बर मुनि की प्रशसा इन शब्दों में की गई है कि "जिनका हाथ ही पवित्र बर्तन है, माग कर लाई हुई भीख ही जिनका भोजन है, दशों दिशायें ही जिनके वस्त्र हैं, सम्पूर्ण पृथ्वी ही जिनकी शय्या है, एकान्त में नि.संग रहना ही पसद करते हैं, दीनता को जिन्होंने छोड दिया है तथा कर्मों को जिन्होंने निर्मूल कर दिया है और जो अपने में ही सतुष्ट रहते हैं, उन पुरुषों को धन्य है।"[343] आगे इसी 'शतक' में कविवर दिगम्बर मुनिवत् चर्या करने की भावना करते हैं.–

अशीमहिवय भिक्षामाशा वासोवसीमहि।
शयी महि मही पृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः।।90।।

अर्थात् – "अब हम भिक्षा ही करके भोजन करेंगे, दिशा ही के वस्त्र धारण करेंगे अर्थात् नग्न रहेंगे और भूमि पर ही शयन करेंगे। फिर भला हमें धनवानों से क्या मतलब?"[344]

इस प्रकार के दिगम्बर मुनि को कवि क्षमादि गुणलीन अभय प्रकट करते हैं –

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिरचिरगे हिवी।
सत्वं मित्रमिद दया च भगिनी भ्रातामन सयमः।।
शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनं।
ह्येते यस्यकुटंबिनो वद सखे कस्माद्भयं योगिन.।।98।।

अर्थात् – "धैर्य जिसका पिता है, क्षमा जिसकी माता है, शान्ति जिसकी स्त्री है, सत्य जिसका मित्र है, दया जिसकी बहिन है, संयम किया हुआ मन जिसका भाई है, भूमि

---

343 वैजै., पृ ४६
344 वैजै., पृ ४७

जिसकी शय्या है, दशों दिशायें ही जिसके वस्त्र हैं और ज्ञानामृत ही जिसका भोजन है- यह सब जिसके कुटुंबी हों भला उस योगी पुरुष को किसका भय हो सकता है ?[345]

'वैराग्यशतक' के उपरोक्त श्लोक स्पष्टतया दिगम्बर मुनियों का लक्ष्य करके लिखे गये हैं। इनमें वर्णित सबही लक्षण जैन मुनियों में मिलते हैं।

'मुद्राराक्षस' नाटक में क्षपणक, जीवसिद्धिका पार्ट दिगम्बर मुनि का द्योतक है।[346] वहा जीवसिद्धि के मुख से कहलाया गया है कि-

"सासणमलिहंताणं पडिवज्जदि मोहवाहि वेज्जाणां।
जेमुत्तमात्तकडुअं पच्छापत्थं मुपदिसन्ति।। 18।। 4।।"

अर्थात् -"मोहरूपी रोग के इलाज करने वाले अर्हंतों के शासन को स्वीकार करो, जो मुहुर्त मात्र के लिये कड़ुवे हैं, किन्तु पीछे से पथ्य का उपदेश देते हैं।"

इस नाटक के पांचवे अंक में जीवसिद्धि कहता है कि-

"अलहंताण पणमामि जेदेगंभीलदाए बुद्धीए।
लोउत लेहिं लोए सिद्धिं मग्गेहि गच्छन्दि।। 2।।"

भावार्थ -"ससार में जो बुद्धि की गभीरता से लोकातीत (अलौकिक) मार्ग से मुक्ति को प्राप्त होते है, उन अर्हन्तों को मैं प्रणाम करता हूँ।"[347]

'मुद्राराक्षस' के इस उल्लेख से नन्दकाल में क्षपणका दिगम्बर मुनियो के निर्वाध विहार और धर्मप्रचारका समर्थन होता है, जैसे कि पहले लिखा जा चुका है।

'वराहमिहिर सहिता' में भी दिगम्बर मुनियों का उल्लेख है। उन्हें वहा जिन भगवान का उपासक बताया है।[348] वराहमिहिर के इस उल्लेख से उनके समय में दिगबर मुनियों का अस्तित्व प्रमाणित होता है। अर्हत् भगवान की मूर्ति को भी वह नग्न ही बताते हैं।[349]

कवि दण्डिन् (आठवीं श) अपने "दशकुमार चरित में (दिगबर मुनि का उल्लेख 'क्षपणक' नाम से करते हैं, जिससे उनके समय में नग्नमुनियों का होना प्रमाणित है।[350]

'पचतन्त्र' (तन्त्र 4) का निम्न श्लोक उस काल में दिगबर मुनियों के अस्तित्व का द्योतक है -[351]

---

345 वेजै , पृ ४७

346 HDW , p.10

347 वेजै., पृ ४०-४१

348 "शाक्यान् सर्वहितस्य शान्ति मनसो नग्नान् जिनाना विदु "

349 "आजानु लम्बबाहु. श्रीवत्साग प्रशान्तमूर्तिश्च।
दिग्वासास्तरुणो रुपवांश्च कार्योऽर्हतों देव ।।४५।।५८।।
-- वराहमिहिर सहिता।

350 वीर, वर्ष २ पृ. ३१७

351 पत. निर्णयसागर प्रेस स १६०२ पृ १६४ - JG XIV 124

"[illegible] [illegible] [illegible] सर्वार्थं सम्पत् करी ।
ये मुण्डाः प्रविशाय चान्ति कुटियो नित्या कलापेविना: ।।
ते तथैव विहत्य निर्वेतरं मनोकृता मुण्डिताः ।।
केचिद्वस्त्रपटीकृतास्च जटिलाः का पालिकास्चापरे ।।"

"पञ्चतन्त्र" के अपरीक्षितकारक पञ्चमतन्त्र" की कथा दिगम्बर मुनियों से सम्बन्ध रखती हैं। उससे पाटलिपुत्र (पटना) में दिगम्बर धर्म के अस्तित्व का बोध होता है। कथा में एक नाई को क्षपणक विहार में जाकर जिनेन्द्रभगवान् की वन्दना और प्रदक्षिणा देते लिखा है। उसने दिगम्बर मुनियों को अपने यहां निमन्त्रित किया, इस पर उन्होंनें आपत्ति की कि श्रावक होकर यह क्या कहते हो ब्राहमणों की तरह यहाँ आमन्त्रण कैसा ? दि. मुनि तो आहा वेला पर घूमते हुये भक्त श्रावक के यहा शुद्ध भोजन मिलने पर विधिपूर्वक ग्रहण कर लेते है।[352] इस उल्लेख से दिगम्बर मुनियों के निमन्त्रण स्वीकार न करने और आहार के लिये भ्रमण करने के नियम का समर्थन होता है। इस तन्त्र में भी दिगम्बर मुनि को एकाकि, गृहत्यागी, पाणिपात्र भोजी और दिगम्बर कहा है।[353]

"प्रबोधचंद्रोदयनाटक" अक 3 में निम्नलिखित वाक्य दिगम्बर जैन मुनि को तत्कालीन बाहुल्यता के बोधक हैं -

"सहि पेक्ख पेक्ख एसो गलणतकल पक पिच्छिलवीहच्छदेहच्छवी उल्लुचि अचिउरो मुक्कवसवेसदुद्दसणो सिहिसिहदपिच्छआहत्थो इदोज्जेव पडिवहदि।"

भावार्थ - "हे सखि देख देख, वह इस ओर आ रहा है। उसका शरीर भयकर और मलाच्छन्न है। शिर के बाल लुच्जित किये हुए हैं और वह नगा है। उसक हाथ में मोरपिच्छिका है और वह देखने में अमनोज्ञ है।"

इस पर उस सखी ने कहा कि-

"आ ज्ञात मयाख् महामोहप्रवर्तितोडय दिगम्बर सिद्धात ।"

भावार्थ -"मैं जान गई' यह महामोह द्वारा प्रवर्तित दिगम्बर (जैन) सिद्धान्त है।" (क्षपणकवेष में दिगम्बर मुनि ने वहा प्रवेश किया।)[354]

नाटक के उक्त उल्लेख से इस बात का भी समर्थन होता है कि दिगम्बर मुनि स्त्रियों के सम्मुख घरों में धर्मोपदेश के लिये पहुंच जाते थे।

---

352 "क्षपणकविहार गत्वा जिनेन्द्रस्य प्रदक्षिणत्रयं विधाय ।
"भो श्रावक, धर्मज्ञोऽपि किमेवं वदसि। किं वयं ब्राह्मणसमाना यत्र आमन्त्रण करोषि। वयं सदैव तत्काल परिचयया भ्रमन्तो भक्तिभाजं श्रावकमवलोक्य तस्य गृहे गच्छाम ।"
पंत ए पृ २-६ व JG XIV 126 - 130

353 "एकाकीगृहसंत्यक्त पाणिपात्रौ दिगम्बर ।"

354 प्रबोध चन्द्रोदय नाटक अंक ३ -- JG., XIV pp. 46-50

"गोलाध्याय" नामक ज्योतिष ग्रन्थ में दिगम्बर मुनियों की दो सूर्य और दो चन्द्रादि विषयक मान्यता का उल्लेख करके उसका निर्सन किया गया है। इस उल्लेख से 'गोलाध्याय' के कर्ता के समय में दिगम्बर मुनियों का बाहुल्य प्रमाणित होता है। 'गोलाध्याय' के टीकाकार लक्ष्मीदास दिगम्बर सम्प्रदाय से भाव "जैनों" का प्रकट करते है और कहते हैं कि "जैनों में दिगम्बर प्रधान थे।"[355]

संस्कृत साहित्य के उपरोक्त उल्लेखों से दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व और उनके निर्बाध विहार और धर्म प्रचारकरने का समर्थन होता है।

---

355 (Goladhyaya 3, Verses 8-10) -- The naked sectarians and the rest affirm that two sunns, two moons and two sets of stars appear alternately, against them I allege this reasoning How absured is the notion which you have formed of duplicate suns, moons, and stars, when you see the revolution of the polar fish (Ursa Minor)' The commentator Lak shamidas agree that the Jainas are here meant & remarks that they are described as 'naked sectarians' etc because the class of Digambaras is a principal one among these people " -- AR., Vol IX p 317

[21]

दक्षिण भारत में दिगम्बर जैन मुनि।

"सरसा पयसा रिक्तेनाति तुच्छजलेन च।
जिनजन्मादिकल्याणक्षेत्रे तीर्थत्वमाश्रिते।। 40।।
नाशमेष्यति सद्धर्मो मारवीर मदच्छिदः।
स्थास्यतीह क्वचित्प्रान्ते किंचिद् दक्षिणादिके।। 41।।

— श्री भद्रबाहुचरित्र।

दिगम्बर जैन धर्म दक्षिण भारत में रहना निश्चित है।

दिगम्बर जैनाचार्य, राजा चन्द्रगुप्त ने जो स्वप्न देखा उसका फल बताते हुये कह गये है कि "जलरहित तथा कहीं थोडे जल भरे हुवे सरोवर के देखने से यह सच जानो कि जहां तीर्थंकर भगवान के कल्याणादि हुवे हैं तो ऐसे तीर्थस्थानों में काम देव के मद का छेदन करने वाला उत्तर जिन धर्म नाश को प्राप्त होगा तथा कहीं दक्षिणादिं देश में कुछ रहेगा भी।"[356] और दिगम्बराचार्य की यह भविष्यवाणी करीब करीब ठीक ही उतरी है। जबकि उत्तर भारत में कभी-कभी दिगम्बर मुनियों का अभाव भी हुआ, तब दक्षिण भारत में आजतक बराबर दिगम्बर मुनि होते आयें हैं। और दिगंबर जैनों के श्री कुन्दकुन्दादि बडे-बडे आचार्य दक्षिण भारत में ही हुवे हैं। अतः दक्षिण भारत को दिगम्बर मुनियों का गढ कहना बेजा नहीं है।

ऋषभदेव और दक्षिण भारत

अच्छा तो यह देखिये कि दक्षिण भारत में दिगम्बर मुनियों का सद्भाव जैनशास्त्र बतलाते हैं कि इस कल्पकाल में कर्मभूमि के आदि मे श्री ऋषभदेव जी ने सर्व प्रथम धर्म का निरुपण किया था और उनके पुत्र बाहुबलि दक्षिण भारत के शासनाधिकारी थे। पोदनपुर उनकी राजधानी थी। भगवान् ऋषभदेव ही सर्वप्रथम वहा धर्मोपदेश देते हुये पहुचे थे।[357] वह दिगम्बर मुनि थे, यह पहले ही लिखा जा चुका है। उनके समय में ही बाहुबलि भी राजपाठ छोडकर दिगम्बर मुनि हो गये थे इन दिगम्बर मुनि की विशालकाय नग्न मूर्तिया दक्षिण भारत मे अनेक स्थानों पर आज भी मौजूद हैं। श्रवणबेला गोल में स्थित मूर्ति 57 फीट ऊची अति मनोज्ञ है, जिसके दर्शन करने देश-विदेश के यात्री आते हैं। कारकेल-वेनूर आदि स्थानों में भी ऐसी ही मूर्तिया हैं। दक्षिण भारत में बहुबलि मुनिराज की विशेष मान्यता है।[358]

---

356. भद्र, पृ ३३
357 आदिपुराण
358. जैशिसं, भूमिका पृ १७-३२

अन्य तीर्थंकरों का दक्षिण भारत से सम्बन्ध

ऋषभदेव के उपरान्त अन्य तीर्थंकरों के समय में भी दिगम्बर धर्म का प्रचार दक्षिण भारत में रहा था। तेइसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ जी के तीर्थ में हुये राज करकण्डुने आकर दक्षिण भारत के जैन तीर्थों की वन्दना की थी। मलय पर्वत पर रावण के वंशजों द्वारा स्थापित तीर्थंकरों की विशाल मूर्तियों की भी उन्होंने वन्दना की थी।[359] वहीं बाहुबलि की और श्री पार्श्वनाथजी की मूर्तियां थीं जिनको रामचन्द्रजी ने लंका से लाकर वहां स्थापित किया था। अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर ने भी अपने पुनीत चरणों से दक्षिण भारत को पवित्र किया था।[360] मलयपर्वतवर्ती हेमांगदेश में जब वीर प्रभु पहुचे थे तो वहां का जीवन्धर नामक राजा उनके निकट दिगम्बर मुनि हो गया था।[361] इस प्रकार एक अत्यन्त प्राचीनकाल से दिगम्बर मुनियों का सन्द्भव दक्षिण भारत मे है।

दक्षिण भारत के इतिहास के काल

किन्तु आधुनिक इतिहास वेत्ता दक्षिण भारत का इतिहास ईसवी पूर्व छठी या चौथी शताब्दि से आरम्भ करते हैं और उसे निम्न प्रकार छ भागों में विभक्त करते है -[362]

(1) प्रारम्भिक काल-ईस्वी 5 वी शताब्दि तक,
(2) पल्लवकाल-ई 5 वीं से 9 वीं शताब्दि तक,
(3) चोल अभ्युदय काल - ई. 9 वी से 14 वी शताब्दि तक,
(4) विजयनगर साम्राज्य उत्कर्ष - 14 वी से 16 वी शताब्दि
(5) मुसलमान और मरहट्टा काल - 16 वी से 18 वी शताब्दि
(6) ब्रिटिश काल - 18 वीं से 19 वीं शताब्दि ई

दक्षिण भारत के उत्तर सीमावर्ती प्रदेश के इतिहास के छ भाग इस प्रकार हैं-

(1) आन्ध्र काल-ई 5 वीं शताब्दि तक
(2) प्रारम्भिक चालुक्य काल-ई 5 वीं से 7 वीं शताब्दी और राष्ट्रकूट 7 वी शताब्दि
(3) अन्तिम चालुक्य काल-ई 10 वीं से 14 वी शताब्दि
(4) विजयनगर साम्राज्य
(5) मुसलमान-मरहट्टा
(6) ब्रिटिश काल।

---

359 करकण्डु चरित् संधि ५
360. जैशिसं , भूमिका पृ. २६
361 भमबु., पृ. ६६
362 SAI , p 31

प्रारम्भिक काल में दिगम्बर मुनि.

अतएव तो उपरोक्त ऐतिहासिक कालों में दिगम्बर जैन मुनियों के अस्तित्व को दक्षिण भारत में देख लेना चाहिये। दक्षिण भारत के "प्रारम्भिक काल" में चेर, चोल, पाण्ड्य-यह तीन राजवंश प्रधान थे।[363] सम्राट् अशोक के शिलालेख में भी दक्षिण भारत के इन राजवंशों का उल्लेख मिलता है।[364] चेर, चोल और पाण्डय यह तीनों ही राजवंश प्रारम्भ से जैन धर्मानुयायी थे।[365] जिस समय करकण्डु राज सिंहल द्वीप से लौटकर दक्षिण भारत - द्राविड देश में पहुंचे तो इन राजाओं से उनकी मुठभेड़ हुई थी। किन्तु रणक्षेत्र में जब उन्होंने इन राजाओं के मुकुटों में जिनेन्द्र भगवान् की मूर्तियां देखीं तो इनसे सन्धि करली।[366] कलिंडचक्रवर्ती ऐलखारवेल जैन थे। उनकी सेवा में इन राजओं में से पाण्डयराजने स्वत राज-भेंट भेजी थी।[367] इससे भी इन राजाओं का जैन होना प्रमाणित है, क्योंकि एक श्रावक का श्रावक के प्रति अनुराग होना स्वाभाविक है। और जब वे राजा जैन थे तब इनका दिगम्बर जैन मुनियों को आश्रय देना प्राकृत आवश्यक है।

पाण्डयराज उग्रपेरुवलूटी (128-140 ई.) के राजदरबार में दिगम्बर जैनाचार्य श्री कुन्दकुन्द विरचित तामिलग्रन्थ "कुर्रल" प्रगट किया गया था।[368] जैन कथाग्रन्थों से उस समय दक्षिण भारत में अनेक दिगम्बर मुनियों का होना प्रगट है। "करकण्डु चरित्" में कलिंग, तेर, द्रविड आदि दक्षिणवर्ती देशों में दिगम्बर मुनियों का वर्णन् मिलता है। भ महावीर ने संघसहित इन देशों में विहार किया था, यह ऊपर लिखा जा चुका है। तथा मौर्यचन्द्रगुप्त के समय श्रुतकेवली भद्रबाहु का संग सहित दक्षिण भारत को जाना इस बात का प्रमाण है कि दक्षिण भारत में उनसे पहले दिगम्बर जैन धर्म विद्यमान था। जैनग्रन्थ "राजावली कथा" में वहा दिगम्बर जैन मन्दिरों और दिगम्बर मुनियों के होने का वर्णन मिलता है। बौद्धग्रन्थ मणिमेखलै में भी दक्षिण भारत में ईस्वी की प्रारम्भिक शताब्दियों में दिगम्बर धर्म और मुनियों के होने का उल्लेख मिलता है।[369]

---

363 SAI, p 33

364 त्रयोदश शिलालेख

365 "Pandya Kingdom can boast of respectable antiquity The prevailing religion in early times in their Kingdom was Jain creed "
---- मजैस्मा, पृ १०५

366 "तहि अत्थि विकितिय दिणसराउ-संघल्लिउ ताकरकण्डु राउ।
ता दिविददेसुमहि अलु भमन्तु --संपत्तउ तहिं महरवहन्तु।।
तहिं घोटे घोर पंडिय णिवाई -- केणा विखण्ड्ते मिलीयाहि।"
"करकण्डए धरियाते सिरसो सिरमउड मत्तिय वरणेहिं तहो।
मउड् महि देखिवि जिणपणिव करकण्डवोजायउ वहुलु दुहु।।१०।।
--- करकण्डुचरित सन्धि ८

367 JBORS., III p 446

368 मजैस्मा, पृ १०५

369 SSIJ, pp 32-33

"श्रुतावतार कथा" से स्पष्ट है कि ईस्वी की पहली शताब्दि में पश्चिम और दक्षिण भारत दिगम्बर जैन धर्म के केन्द्र थे। श्री धरसेनाचार्य जी का संघ गिरनार पर्वत पर उस समय विद्यमान था। उनके पास आगमग्रन्थों को अवधारण करने के लिये दो तीक्ष्ण-बुद्धि शिष्य दक्षिण मथुरा से उनके पास आए थे और उपरान्त उन्होंने दक्षिण मथुरा में चातुर्मास व्यतीत किया था। इस उल्लेख से उस समय दक्षिण मथुरा का दिगम्बर मुनियों का केन्द्र होना सिद्ध है।[370]

"नाल दियार" और दिगम्बर मुनि

तामिल जैनकाव्य "नालदियार", जो ईस्वी पांचवीं शताब्दि की रचना है, इस बात का प्रमाण है कि पाण्ड्यराज का देश प्राचीन काल में दिगम्बर मुनियों का आश्रय-स्थान था। स्वयं पाण्ड्यराज दिगम्बर मुनियों के भक्त थे। "नालदियार" की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक दफा उत्तर भारत में दुर्भिक्ष पड़ा। उससे बचने के लिये आठ हजार दिगम्बर मुनियों का संघ पाण्ड्यदेश में जा रहा। पाण्ड्यराज उन मुनियों की विद्वत्ता और तपस्या को देखकर उनका भक्त बन गया। जब अच्छे दिन आये तो इस संघ ने उत्तर भारत की ओर लौट जाना चाहा, किन्तु पाण्ड्यराज उनकी सत्संगति छोड़ने के लिये तैयार न थे। आखिर उस मुनिसंघ का प्रत्येक साधु एक-एक श्लोक अपने-अपने आसन पर लिखा छोड़कर विहार कर गये। जब ये श्लोक एकत्र किये गये तो वह संग्रह एक अच्छा खासा काव्यग्रन्थ बन गया। यही "नालदियार" था।[371] इससे स्पष्ट है कि पाण्ड्यदेश उस समय दिगम्बर जैन धर्म का केन्द्र था और पाण्ड्यराज कलभ्रवंश के सम्राट् थे। यह कलभ्रवंश उत्तर भारत से दक्षिण में पहुंचा था और इस वंश के राजा दिगम्बर मुनियों के भक्त और रक्षक थे।[372]

गंगवंश के राजा और दिगम्बर मुनिगण

ईस्वी दूसरी शताब्दि में मैसूर में गंगवंशी क्षत्रीराजा माधव कोंगुणिवर्मा राज्य कर रहे थे।[373] उनके गुरू दिगम्बर जैनाचार्य सिंहनन्दि थे। गंगवंश की स्थापना में उक्त आचार्य का गहरा हाथ था। शिलालेखों से प्रकट है कि इक्ष्वाकु (सूर्यवंश) के राज धनञ्जय की सन्तति में एक गंगदत्त नाम का राजा प्रसिद्ध हुआ और उसी के नाम से इस वंश का नाम गंग वंश पड़ा था। इस गंगवंश में एक पद्मनाभ नामक राजा हुआ, जिसका झगड़ा उज्जैन के राजा महीपाल से होने के कारण वह दक्षिण भारत की ओर चला गया था।

---

370 श्रुता., पृ १६-२०
371 SSIJ, p 91
372 मजैस्मा, भूमिका पृ ८-६
373 रश्रा, परिचय, पृ १६५

उसके दो पुत्र ददिग और माधव भी उसके साथ गये थे। दक्षिण में पेरूर नामक स्थान पर उन दोनों भाइयों की भेट कण्ूगण के आचार्य सिंहनन्दि से हुई जिन्होंने उन्हें निम्न प्रकार उपदेश दिया था:-

"यदि तुम अपनी प्रतिज्ञा भंग करोगे, यदि तुम जिनशासन से हटोगे, यदि तुम पर-स्त्रीका ग्रहण करोगे, यदि तुम मद्य व मांस खाओगे, यदि तुम अधमों का संसर्ग करोगे, यदि तुम आवश्यकता रखने वालों को दान न दोगे और यदि तुम युद्ध में भाग जाओगे तो तुम्हारा वंश नष्ट हो जायगा।"[374]

दिगम्बराचार्य के इस साहस बढ़ाने वाले उपदेश को ददिग और माधव ने शिरोधार्य किया और उन आचार्य के सहयोग से वह दक्षिण भारत में अपना राज्य स्थापित करने में सफल हुये थे। उपरान्त इस वंश के सभी राजाओं ने जैन धर्म का प्रभाव बढ़ाने का उद्योग किया था। दिगम्बर जैनाचार्य की कृपा से राज्य पा लेने की यादगार में इन्होंने अपनी ध्वजा में "मोरपिच्छिका" का चिन्ह रक्खा था, जो दिगम्बर मुनियों के उपकरणों में से एक है।

गगवंशी अविनीत कोंगुणी (सन् 425-478) ने पुन्नाट 10000 में जैनमुनियों को भूमिदान दिया था। गगवंशी दुर्वनीतिके गुरु "शब्दावतार के कर्ता दिगम्बरचार्य श्री पूज्यपाद थे।[375]

कादम्बर राजागण दिगम्बर मुनियो के रक्षक थे

महाराष्ट्र और कोन्कन देशों की ओर उस समय कादम्ववंश के राजा लोग उन्नत हो रहे थे। यह वंश (1) गोआ और (2) बनवासी, ऐसे दो शाखाओं में बटा हुआ था और इसमें जैनधर्म की मान्यता विशेष थी। दिगम्बर गुरूओं की विनय कादम्बराजा खूब करते थे। एक विद्वान् लिखते हैं कि -

"Kadamba kings of the middle period Mrigesa to Harivarma were unable to resist the onset of Jainism, as they had to bow to the "Supreme Arhats" and endow lavishly the Jain ascetic groups Numerous sects of Jaina priests, such as the Yapiniyas, the Nirgranthas and the Kurchakas are found living at Palasika. (IA VII 36-37), Again Svetpatas and Aharashti are also mentioned (Ibid VI 31) Banavase and Palasika were thus crowded centres of powerful Jain monks Four Jaina Mssnamed Jayadhavala, Vijaya Dhavala, Atidhavala and Mahadhavala written by Jaina Gurus Virasena and Jinasena living at Banavase during the rule of the

---

374. मजैस्मा, पृ १४६-१४७
375. मजैस्मा, पृ १४६

early Kadambas were recently discovered."

- QJMS. XXII. 61-62

अर्थात् - "मध्यकाल के मृगेश से हरिवर्मा तक कदम्ब वंशी राजागण जैन धर्म से अपने को बचा न सके। "महान् अर्हतदेव" को नमस्कार करते और जैन साधु संघों को खूब दान देते थे। जैन साधुओं के अनेक संघ जैसे यापनीय[376] निग्रन्थ[377] और कूर्चक[378] कादम्बों की राजधानी पालाशिक में रह रहे थे। श्वेतपट[379] और अहराष्टि[380] संघों के वहा होने का उल्लेख भी मिलता है। इस तरह पालाशिक और बनवासी सबल जैन साधुओं से वेष्टित मुख्य जैनकेन्द्र थे। दिगम्बर जैन गुरु वीरसेन और जिनसेन ने जिन जयधवल, विजयधवल, अतिधवल और महाधवल नामक ग्रंथों की रचना बनवासी में रहकर प्रारंभिक कदम्ब राजाओं के समय में की थी, उन चारों ग्रंथों की प्रतिया हाल की में उपलब्ध हुई है।"

प्रो शेषगिरि राउ उन प्रारंभिक कदम्बों को भी जैन धर्म का भक्त प्रगट करते हैं। उनके राज्य में दिगम्बर जैन मुनियों को धर्मप्रचार करने की सुविधायें प्राप्त थी।[381] इस प्रकार कदम्बवंशी राजाओं द्वारा दिगम्बर मुनियों का समुचित सम्मान किया गया था।

पल्लवकाल में दिगम्बर मुनि।

एक समय पल्लववंश के राजा भी जैन धर्म के रक्षक थे। सातवीं शताब्दि में जब हेनसाग इस देश में पहुचा तो उसने देखा कि वहा दिगम्बर जैन साधुओं (निग्रन्थों) की संख्या अधिक है। पल्लववंश के शिवस्कंदवर्मा नामक राज्य के गुरु[382] दिगबराचार्य कुन्दकुन्द थे। उपरान्त इस वंश का प्रसिद्ध राजा महेन्द्रवर्म्मन् पहले जैन था और दिगम्बरसाधुओं की विनय करता था।[383]

चोलदेश में दिगम्बर मुनि।

चोल देश में भी उस चीनी यात्री ने दिगम्बरधर्म को प्रचलित पाया था।[384] मलकूट (पाण्डयदेश) में भी उसने नगे जैनियों को बहुसख्या में पाया था।[385] सातवी शताब्दि के

376 यापनीय संघ के मुनिगण दिगम्बर भेष में रहते थे, यद्यपि वे स्त्री-मुक्ति आदि मानते थे। देखो दर्शनसार

377 निग्रन्थ = दिगम्बर मुनि

378 'कूर्चक' किन जैनसाधुओं का द्योतक है यह प्रगट नहीं है।

379 श्वेतपट = श्वेताम्बर

380. अहरादि संभवत दिगम्बर मुनियों का द्योतक है। शायद अहीक शब्द से इसका निकास हो।

381 SSIJ., pt II p 69-72

382 P S. Hist , Intro , p XV

383 EHI p 495

384 हुआ , पृ ४६०

385 हुआ , पृ ४७४ - "The nude Jainas were present in multitudes " -- EHI p 473

मध्यभाग में पाण्ड्यदेश का राजा कुण या सुन्दर पाण्ड्य दिगम्बर मुनियों का भक्त था। उसके गुरु दिगम्बराचार्य श्री अमलकीर्ति थे[386] और उसका विवाह एक चोल राजकुमारी के साथ हुआ था, जो शैव थी। उसी के संसर्ग से सुन्दर पाण्ड्य भी शैव हो गया था।[387]

दसवीं शताब्दी तक प्रायः सब राजा दिगम्बर जैन धर्म के आश्रयदाता थे

सच बात तो यह है कि दक्षिण भारत मे दिगम्बर जैनधर्म की मान्यता ईस्वी दसवीं शताब्दि तक खूब रही थी। दिगम्बर मुनिगण सर्वत्र विहार करके धर्म का उद्योत करते थे। उसी का परिणाम है कि दक्षिण भारत में आज भी दिगम्बर मुनियों का सद्भाव है। मि राइस इस विषय में लिखते हैं कि '-

"For more than a thousand years after the begining of the Christian era, Jainism was the religion professed by most of the rulers of the Kanarese People The Ganga king of Talkad, the Rashtra Kuta and Kalachurya Kings of Manyakhet and the early Hoysalas were all Jains The Brahmanical Kadamba and early Chalukya Kings were tolerant of Jainism The Pandya Kings of Madura were Jainas and Jainism was dominant in Gujerat and Kathiawar"[388]

भावार्थ – "ईस्वी सन् के प्रारंभ होने से एक हजार से ज्यादा वर्षों तक कन्नड देश के अधिकांश राजाओं का मत जैन धर्म था। तलकाड के गंग राजागण, मान्यखेट के राष्ट्रकूट और कलाचूर्य शासक और प्रारंभिक होयसल नृप सब ही जैनी थे। ब्राह्मणमत को मानने वाले जो कादम्बराजा थे उन्होंने और प्रारंभ के चालुक्यों ने जैन धर्म के प्रति उदारता का परिचय दिया था। मदुरा के पाण्डयराजा जैन ही थे और गुजरात तथा काठियावाड में भी जैनधर्म प्रधान था।

आन्ध्र और चालुक्तय काल में दिगम्बर मुनि।

आन्ध्रवंशी राजाओं ने जैन धर्म को आश्रय दिया था, यह पहले लिखा जा चुका है। चोल और चालुक्य अभ्युदयकाल में दिगम्बर धर्म प्रचलित रहा था। चालुक्य राजाओ में पुलकेशी द्वितीय, विनयादित्य, विक्रमादित्य आदि ने दिगम्बर विद्वानों का सम्मान किया था। विक्रमादित्य के समय में विजय पडित नामक दिगम्बर जैन विद्वान एक प्रतिभाशाली वादी थे। इस राजा ने एक जैन मदिर का जीर्णोद्धार कराया था।[389] चालुक्यराज गोविन्द तृतीय

---

386 ADJB , p 46
387 EHI , p 475
388. HKL , p 16
389 SSIJ., pt I p 111

ने दिगम्बर मुनि अर्ककीर्ति का सम्मान किया और दान दिया था। वह मुनि ज्योतिष विद्या में निपुण थे।[390] वेंगिराज चौलुक्य विजयादित्य के गुरु दिगम्बराचार्य अर्हन्नन्दि थे। इन आचार्य की शिष्या चामेकाम्बा के कहने पर राजा ने दान दिया था।[391] सारांश यह कि चालुक्यराज्य में दिगम्बर मुनियों और विद्वानों ने निरापद हो धर्मोद्योत किया था।

राष्ट्रकूटकाल में दिगम्बर मुनि

राष्ट्रकूट अथवा राठौर राजवंश जैनधर्म का महान् आश्रय दाता था। इस वंश के कई राजाओं ने अणुव्रतों और महाव्रतों को धारण किया था, जिसके कारण जैनधर्म की विशेष प्रभावना हुई थी। राष्ट्रकूट राज्य में अनेकानेक दिग्गज विद्वान् दिगम्बर मुनि विहार और धर्म प्रचार करते थे। उनके रचे हुए अनूठे ग्रंथरत्न आज उपलब्ध हैं। श्री जिनसेनाचार्य का "हरिवंशपुराण", श्री गुणभद्राचार्य का "उत्तर पुराण", श्रीमहावीराचार्य का "गणितसार संग्रह" आदि ग्रंथ राष्ट्रकूट राजाओं के समय की रचनायें हैं।[392] इन राजओं में अमोघवर्ष प्रथम एक प्रसिद्ध राजा था। उसकी प्रशंसा अरब के लेखकों ने की है और उसे संसार के श्रेष्ठ राजाओं में गिना है।[393] वह दिगम्बर जैनाचार्यों का परमभक्त था।

सम्राट अमोघवर्ष दिगम्बर मुनि थे

उसने स्वयं राज-पाठ त्यागकर दिगम्बर मुनि का व्रत स्वीकार किया था।[394] उसका रचा हुआ "रत्नमालिका" एक प्रसिद्ध सुभाषित ग्रन्थ है। उनके गुरु दिगम्बराचार्य श्री जिनसेन थे, जैसे कि "उत्तर पुराण" के निम्न श्लोक में कहा गया है कि वे श्री जिनसेन के चरणों में नतमसतक होते थे -

> "यस्य प्रांशुन खांशुजाल विसरद्धारान्तराविर्भव-
> त्पादाम्भोजरजः पिशंगमुकुट प्रत्यग्ररत्नद्युति ।
> संस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपति पूतोऽहमद्येत्यलं
> स श्रीमाञ्जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मंगलम् ।।"

अर्थात् - "जिन श्री जिनसे के देदीप्यमान नखों के किरण समूह से फैलती हुई धारा बहती थी और उसके भीतर जो उनके चरणकमल की शोभा को धारण करते थे उनकी रज

---

390 ADJB, p 97 विको., भा ४ पृ ७६

391 ADJB , p 68

392 SSIJ pt I pp 111-112

393. Elliot , Vol, I pp 3-24 --"The greates king of India is the Balahara, whose name imports 'King of Kings'" --IBu Khurdabh व भाप्रारा , भाग ३ पृ १३-११५

394 'रत्नमालिका' में अमोघवर्ष ने इस बात को इन शब्दों में स्वीकार किया है'
"विवेकात्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका
रचिताऽमोघवर्षेण सुधियां सदलङ्कृति ।।"

से जब राजा अमोघवर्ष के मुकुट के ऊपर लगे हुए रत्नों की कांति पीली पड़ जाती थी तब वह राजा अमोघवर्ष आपको पवित्र मानता था और अपनी उसी अवस्था का सदा स्मरण किया करता था, ऐसे श्रीमान् पूज्यपाद भगवान् श्री जिनसेनाचार्य सदा संसार का मंगल करें।"

अमोघवर्ष के राज्य काल में एकान्तपक्ष का नाश होकर स्याद्वाद मतकी विशेष उन्नति हुई थी। इसीलिये दिगम्बराचार्य श्री महावीर "गणितसारसंग्रह" में उनके राज्य की वृद्धि की भावना करते है।[395] किन्तु इन राजा के बाद राष्ट्रकूट राज्य की शक्ति छिन्न भिन्न होने लगी थी। यह बात गंगवाडी के जैन धर्मानुयायी गंगराजा नरसिंह को सहन नहीं हुई। उन्होंने तत्कालीन राठौर राजा की सहायता की थी और राठौर राजा इन्द्र चतुर्थ को पुनः राज्य सिंहासन पर बैठाया था। राजा इन्द्र दिगम्बर जैनधर्म का अनुयायी था और उसने सल्लेखना व्रत धारण किया था।[396]

गंगराजा और सेनापति चामुण्डराय

इस समय गंगवाडी के गंगराजाओं ने जैनोत्कर्ष के लिये खास प्रयत्न किया था। रायमल्ल सत्यवाक्य और उनके पूर्वज मारसिंह के मन्त्री और सेनापति दिगम्बर जैन धर्मानुयायी वीरमार्तण्ड राजा चामुण्डराय थे। इस राजवंश की राजकुमारी पनिब्बेने आर्यिका के व्रत धारण किये थे।[397] श्री अजितसेनाचार्य और नेमिचन्द्राचार्य इन राजाओं के गुरू थे। चामुण्डरायजी के कारण इन राजओं द्वारा जैनधर्म की विशेष उन्नति हुई थी। दिगम्बर मुनियों का सर्वत्र आनन्दमई विहार होता था।[398]

कलचूरि वंश के राजा दिगम्बर मुनियों के बडे संरक्षक थे।

किन्तु गंगों का साहाय्य पाकर भी राष्ट्रकूट वंश अधिक टिक न सका और पश्चमीय चालुक्य प्रधानता पा गये। किन्तु वह भी अधिक समय तक राज्य न कर सके- उनको कलचूरियों ने हरा दिया। कलचूरी वंश के राजा जैनधर्म के परम भक्त थे। इनमें विज्जलराजा प्रसिद्ध और जैनधर्मानुयायी था। इसी राजा के समय में बासव ने "लिंगायत" मत स्थापित किया था।

किन्तु विज्जल राजा की दिगम्बर जैनधर्म के प्रति अटूट भक्ति के कारण बासव अपने मत का बहुप्रचार करने में सफल न हो सका था। आखिर-जब विज्जलराज कोलहपुर के शिलाहार राजा के विरुद्ध युद्ध करने गये थे, तब इस बालव ने धोखे से उन्हें विष देकर

---

395 "विध्वस्तैकान्तपक्षस्य स्याद्वादन्यायवादिन
देवस्य नृपतुङस्य वर्द्धतां तस्य शासनं।।६।।"

396 SSIJ pt I p 112

397 मजैस्मा, पृ १५०

398 वीर, वर्ष ६ अंक १-२ देखो

मार डाला था।[399] और तब कहीं लिंगायत मत का प्रचार हो सका था। इस घटना से स्पष्ट है कि विज्जल राज मेंदिगम्बर मुनियों के लिये कैसा आश्रय था।

होयसालवंशी राजा और दिगम्बर मुनि

मैसूर के होयसाल वश के राजागण भी दिगम्बर मुनियों के आश्रयदाता थे। इस वश की स्थापना के विषय में कहा जाता है कि साल नाम का एक व्यक्ति एक मंदिर में एक जैनयति के पास विद्याध्ययन कर रहा था, उस समय एक शेर ने उन साधु पर आक्रमण किया। साल ने शेर को मारकर उनकी रक्षा की और वह होयसाल नाम से प्रसिद्ध हुआ था।[400] उपरान्त उन्हीं जैन साधु का आशीर्वाद पाकर उसने अपने राज्य की नींव जमाई थी, जो खूब फला फूला था। इस वश के सब ही राजाओं ने दिगम्बर मुनियों का आदर किया था, क्योंकि वे सब जैन थे।[401] होयसाल राजा विनयदित्य के गुरु दिगम्बर साधु श्री शान्तिदेव मुनि थे।[402] इन राजाओं मे विहिदेव अथवा विष्णुवर्द्धन राजा प्रसिद्ध था। वह भी जैन धर्म का दृढ श्रद्धानी था। उस की रानी शान्तलदेवी प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य श्री प्रभाचन्द्र की शिष्या थी।[403] किन्तु उसकी एक दूसरी रानी वैशणवधर्म की अनुयायी थी। एक रोज़ राजा इस रानी के साथ राजमहल के झरोखे में बैठा हुआ था कि सडक पर एक दिगम्बर मुनि दिखाई दिये। रानी ने राजा को बहकाने के लिये यह अवसर अच्छा समझा। उसने राजा से कहा कि "यदि दिगम्बर साधु तुम्हारे गुरु हैं तो भला उन्हें बुलाकर अपने हाथ से भोजन करादो"। राजा दिगम्बर मुनियों के धार्मिक नियम को भूलकर कहने लगे कि "यह कौन बडी बात है"। अपने हीन अग का उसे ख्याल न रहा। दिगम्बर मुनि अगहीन, रोगी आदि के हाथ से भोजन ग्रहण न करेंगे, इसका उसने ध्यान भी न किया और मुनिमहाराज को पडगाह लिया। मुनिराज अतराय हुआ जानकर वापस चले गये। राजा इस पर चिढ गया और वह वैष्णव धर्म में दीक्षित हो गया।[404] किन्तु उसके वैष्णव हो जाने पर भी दिगम्बर मुनियों का बाहुल्य उसके राज्य मे बना रहा। उसकी अग्रमहषी शान्तलदेवी अब भी दिगम्बर मुनियों की भक्त थी और उसक सेनापति तथा प्रधान मत्री गंगराजभी दिगम्बर मुनियों के परम सेवक थे। उनके ससर्ग से विष्णुवर्द्धन ने अन्तिम समय में भी दिगम्बर मुनियों का सम्मान किया और जैन मन्दिरों का दान दिया था।[405] उनके उत्तराधिकारी नरसिंह प्रथम द्वारा भी दिगम्बर मुनियों का सम्मान हुआ था। नरसिंह का प्रधानमत्री हुल्ल दिगम्बर मुनियों का परमभक्त था। उस समय दक्षिण भारत में चामुण्डराय,

399 मजैस्मा, पृ १५५-१५६
400 SSIJ, pt I p 115
401 मजैस्मा, पृ १५६-१५७
402 SSIJ, pt I p 115
403 Ibid p 116
404 AR, vol IX p 266
405 मजैस्मा, प्रस्तावना पृ १३

गंगराज और हुल्ल दिगम्बरधर्म के महान् प्रभावक और स्तंभ समझे जाते थे।[406] बल्लालराय होयसाल के गुरु श्री वासपूज्य व्रती थे। राजा नृसिंह होयसाल के गुरु अजितमुनि थे।[408]

विजयनगर साम्राज्य में दिगम्बर मुनि

विजयनगर साम्राज्य की स्थापना आर्य-सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के लिये हुई थी। वह हिन्दू संगठन का एक आदर्श था। शैव, वैष्णव, जैन-सभी कंधे से कंधा जुटा कर धर्म और देश रक्षा के कार्य में पगे हुए थे। स्वयं विजयनगर सम्राटों में हरिहर द्वितीय और राजकुमार उग्र दिगम्बर जैनधर्म में दीक्षित होकर दिगम्बर मुनियों के महान् आश्रयदाता हुये थे।[409] दिगम्बर मुनि श्री धर्मभूषणजी राजा देवराय के गुरु थे तथा आचार्य विद्यानन्दि ने देवराज और कृष्णराय नामक राजाओं के दरबार में वाद किया था तथा विलगी और कारकलमें दिगम्बर धर्म की रक्षा की थी।[410]

मुस्लिम काल में दिगम्बर मुनि।

मुस्लिमकाल में देश त्रसित और दुःखित हो रहा था। आर्य धर्म संकटाकुल थे। किन्तु उग्र पर भी हम देखते हैं कि प्रसिद्ध मुसलमान शासक हैदरअली ने श्रवणबेलगोल की नग्नदेवमूर्ति श्री गोमट्टदेव के लिये कई गाँवों की जागीर भेंट की थी।[411] उस समय श्रवणबेलगोल के जैनमठ में जैन साधु विद्याध्ययन कराते थे। दिगबराचार्य विशालकीर्तिने सिकन्दर और वीरू पक्षरायके सामने वाद किया था।[412]

मैसूर के राजा और दिगम्बर मुनि

मैसूर के ओडयरवंशी राजाओं ने दिगबर जैनधर्म को विशेष आश्रय दिया था और वर्तमान शासकभी जैनधर्म पर सदस्य है। सत्रहवीं शताब्दि में भट्टाकलंक देव नामक दिगम्बराचार्य हदुवल्ली जैनमठके गुरु के शिष्य और महावादी थे। उन्होंने सर्वसाधारण में वाद करके जैन धर्म की रक्षा की थी। वह संस्कृत और कन्नड के विद्वान् तथा छः भाषाओं के ज्ञाता थे।[413] जैनरानी भरवदेवी ने मणिपुर का नाम बदलकर इनकी स्मृति में

---

406 Ibid ,

407 मजैस्मा , पृ १६२

408 ADJB , p 31

409 SSIJ pt I p 118

410 मजैस्मा , पृ १६३

411 AR , Vol IX 267 & SSIJ , pt I p 117

412. मजैस्म., पृ. १६३

413 HKI , p 83

"भट्टाकलंकापुर" रक्खा था– वही आजकल का भटकल है।[414] श्री कृष्णराय और अच्युतराय राजा के सम्मुख श्री दिगंबर मुनि नेमिचन्द्र ने वाद किया था।[415]

पण्डाइविड् राजा और दिगम्बर मुनि

पुण्डी (उत्तर अर्काट) के तीसरे ऋषभदेव मंदिर के विषय में कहा जाता है कि पण्डाइविड् राजा की लड़की को भूतबाधा सताती थी। उसी समय कुछ शिकारियों के पास एक दिगंबर मुनिने श्री ऋषभदेव की मूर्ति देखी। मुनिजी ने वह मूर्ति उनसे लेली। इन्हीं शिकारियों ने राजा से मुनिजी की प्रशंसा की। उस पर राजा ने मुनिजी की वन्दना की और उनसे भूतबाधा दूर करने का अनुरोध किया। मुनिजी ने लड़की की भूतबाधा दूर कर दी। राजा बहुत प्रसन्न हुआ ओर उसके उक्त मंदिर बनवाया।[416]

दो सौ वर्ष पहले दिगम्बर मुनि

दक्षिण भारत में दो सौ वर्ष पहले कई एक दिगंबर मुनियों का सद्भावव था। उनमें मन्नरगुडी के पर्णकुटिवासी ऋषि प्रसिद्ध है। उन्होंने कई मूर्तियों और मंदिरों की प्रतिष्ठा कराई थी।[417] उनके अतिरिक्त सधि महा मुनि और पण्डित महामुनि भी प्रसिद्ध हैं। उन्होंने चिताम्बूर नामक ग्राम में वहां के ब्राहमणों के साथ वाद किया था और जैनधर्म का डंका बजाया था। तब से वहां पर एक जैन विद्यापीठ स्थापित है।[418] सचमुच दक्षिण भारत में एक अत्यन्त प्राचीनकाल से सिलसिलेवार दिगम्बर मुनियो का सद्भाव रहा है। प्रो ए.एन उपाध्याय इस विषय में लिखते हैं कि दक्षिण भारत में नियमितरूप में दिगम्बर मुनि इस ओर से गुजरे हैं, किन्तु खेद है, उनकी जीवन सम्बन्धी वार्ता उपलब्ध नहीं है।

महाराष्ट्र देश के दिगम्बर जैन मुनि

दक्षिण भारत की तरह ही महाराष्ट्रदेश भी जैनधर्म का केन्द्र था।[419] वहा अब तक दिगंबर जैनों की बाहुल्यता है। कोल्हापुर, बेलगाम आदि स्थान जैनों की मुख्य बस्तियाँ थीं। कहते हैं एक मरतबा कोल्हापुर में दिगंबर मुनियों का एक वृहत् संघ आकर ठहरा था। राजा और रानी ने भक्तिपूर्वक उसकी वन्दना की थी। दैवयोग से संघ जहाँ पर ठहरा था। वहां आग लग गई। मुनिगण उसमें भस्म हो गये। राजा को बड़ा परिताप हुआ। उसने

---

414 बृजैश, भा १ पृ १०

415 मजैस्मा, पृ १६३

416 दिजैडा, पृ ८५७

417 Ibid, p 864

418 दिजैडा, पृ ८५६

419 Jainism was specially popular in the Southern Maratha country " - EHI, p 444

उनके स्मारक में 108 दिगम्बर मन्दिर बनवाये। संघ में 108 ही दिगम्बर मुनि थे।[420] इस घटना से महाराष्ट्र में एक समय में दिगम्बर मुनियों की बाहुल्यता का पता चलता है। सचमुच महाराष्ट्र के राष्ट्रकूट, चालुक्य, शिलाहार आदि वंश के राजा दिगम्बर जैनधर्म के पोषक थे और यही कारण है कि यहाँ दिगम्बर मुनियों का बड़ी संख्या में विहार हुआ था। अठारहवीं शताब्दि में हुये दो दिगंबर मुनियों का पता चलता है। मराठी एक कवि जिनदास के गुरु विद्वान् दिगम्बराचार्य श्री उज्ज्वलकीर्ति थे। दूसरे महतिसागर जी थे। उन्होंने स्वतः क्षुल्लकवत् दीक्षा ली थी। उपरान्त देवेन्द्र कीर्ति भट्टारक से विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण की थी। वन्हाडदेश में उन्होंने खूब धर्मप्रभावना की थी। गूजरों को उन्होंने जैनी बनाया था। दही गाव उनका समाधिस्थान है, जहा सदा मेला लगता है। उनके रचे हुए ग्रन्थ भी मिलते हैं (मजइ पृ 65–72)

शाके 1127 में कोल्हापुर के अजरिका स्थान में त्रिभुवन तिलक चैत्यालय में श्री विशालकीर्ति आचार्य के श्री सोमदेवाचार्य ने ग्रंथ रचना की थी।

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध दि. जैनाचार्य।

दिगबर जैनियों के प्राय सब ही दिग्गज विद्वान् और आचार्य दक्षिण भारत में ही हुवे हैं। उन सबका सक्षिप्त वर्णन उपस्थित करना यहाँ सम्भव नहीं है, किन्तु उनमें से प्रख्यात दिगबराचार्यों का वर्णन यहा पर दे देना इष्ट है। अग-ज्ञान के ज्ञाता दिगबराचार्यों के उपरान्त जैन संघ में श्री कुन्दकुन्दाचार्य का नाम प्रसिद्ध है। दिगम्बर जैनों में उनकी मान्यता विशेष है। वह महातपस्वी और बड़े ज्ञानी थे। दक्षिण भारत के अधिवासी होने पर भी उन्होंने गिरिनार पर्वत पर जाकर श्वेताबरों से वाद किया था।[421] तामिल साहित्य का नीतिग्रन्थ कुरल उन्ही की रचना थी।[422] उन और उन्हीं के समान अन्य दिगंबराचार्यों के विषय में प्रो रामास्वामी ऐयंगर लिखते हैं -

"First comes Yatindra Kunda, a great Jain Guru, 'who in order to show that both within & without he could not be assisted by Rajas, moved about leaving a space of four inches between himself and the earth under his feet' Uma Svami, the compiler of Tattvartha Sutra, Griddhrapinchha, and his disciple Balakapinchha follow, Then comes Samantabhadra, 'ever fortunate', 'whose discourse lights up the palace of the three worlds filled with the 'all meaning Syadvada, This Samantabhadra was the first of a series of celebrated Digambara writers who acquired considerable

---

420 संप्राजैस्मा, पृ. ८३
421. दिजैहा., पृ. ७८४
422. SSIJ, I pp 40–44 89

predominance, in the early Rashtrakuta period. Jain tradition assigns him Saka 60 or 138 A D. ... He was a great Jaina missionary who tried to spread far and wide Jaina doctrines and morals and that he met with no opposition from other sects wherever he went. Samantabhadra's appearance in South India marks and epoch not only in the annals of Digambara tradition, but also in the history of Sanskrit literature .... After Samantabhadra a large number of Jain Munis took up the work of proselytism The more important of them have contributed much for the uplift of the Jain world in literature and secular affairs There was, for example, Simbhanandi, the Jain sage, who, according to tradition, founded the state of Gangavadi Other names are those of Pujyapada the author of the incomparable grammar , Jinedndra, Vyakarana and of Akalanka who, in 788 A D , is believed to have confuted the Buddhists at the court of Himasitala in Kanchi, and thereby procured the expulsion of the Buddhists from South India." SSIJ , pt [pp.29-31]

भावार्थ -"पहले ही महान् जैनगुरु यतीन्द्र कुन्द का नाम मिलता है जो राजाओं के प्रति निस्पृहता दिखाते हुये अधर चलते थे। "तत्त्वार्थ सूत्र" के कर्ता उमास्वामी गृद्धपिच्छ और उनके शिष्य बलाकपिच्छ उनके बाद आते हैं। तब समन्तभद्र का नाम दृष्टि पड़ता है जो सदा भाग्यवान् रहे और जिनकी स्याद्वाद्वाणी तीन लोक को प्रकाशमान् करती थी। यह समन्तभद्र प्रारभिक राष्ट्रकूट काल के अनेक प्रसिद्ध दिगबर मुनियों में सर्व प्रथम थे। उनका समय जैनमतानुसार सन् 138 ई है। यह महान् जैन प्रचारक थे, जिन्होने यहु ओर जेनसिद्धान्त और शिक्षा का प्रसार किया और उन्हें कही भी किसी विधर्मी सप्रदाय के विरोध को सहन न करना पडा। उनका प्रदुर्भाव दक्षिण भारत के दिगबर जैन इतिहास के लिये ही युगप्रवर्तक नहीं है, बल्कि उससे ससकृत साहित्य में एक महान् परिवर्तन हुआ था। समन्तभद्र के बाद बहुसंख्यक जैन साधुओं ने अजैनों को जैनी बनाने का कार्य किया था। उनमें से प्रसिद्ध साधुओं ने जैन ससार को साहित्य और राष्ट्रीय अपेक्षा उन्नत बनाया था। उदाहरणत जैनाचार्य सिंहनन्दिने गंगवाडी का राज्य स्थापित कराया था। अन्य आचार्यों में पूज्यपाद, जिनकी रचना आद्वितीय "जिनेन्द्र व्याकरण" है और अकलंक देव हैं जिन्होंने काची के हिमशीतल राजा के दरबार में बौद्धों को वाद में परास्त करके उन्हें दक्षिण भारत से निकलवा दिया था।"

श्री उमास्वामी - श्री कुन्दकुन्दाचार्य के उपरान्त श्री उमास्वामी प्रसिद्ध आचार्य थे, प्रो सा. का यह प्रकट करना निस्सन्देह ठीक है। उनका समय वि.स 76 है। गुजरात प्रान्त के गिरिनगर में जब यह मुनिराज विचार कर रहे थे और एक द्वैपायक नाम श्रावक

के घर पर उनकी अनुपस्थिति में आहार लेने गये थे, तब वहां पर एक अशुद्ध सूत्र देखकर उसे शुद्ध कर आये थे। द्वैपायकने जब घर आकर वह देखा तो उसने उमास्वामी से "तत्वार्थसूत्र" रचने की प्रार्थना की थी। तदनुसार वह ग्रन्थ रचा गया था। उमास्वामी दक्षिण भारत के निवासी और आचार्य कुन्दकुन्द के शिष्य थे, ऐसा उनके "गृद्धपिच्छ" विशेषण से बोध होता है।[423]

श्री समन्तभद्राचार्य – श्री समन्तभद्राचार्य दिगम्बर जैनों में बड़े प्रतिभाशाली नैयायिक और वादी थे। मुनिदशा में उन को भस्मक रोग हो गया था, जिसके निवारण के लिये वह काशीपुर के शिवालय में शैव-संन्यासी के भेष में जा रहे थे। वहीं स्वयंभू स्तोत्र रचकर शिवकोटि राजा को आश्चर्यचकित कर दिया था। परिणामतः वह दिगम्बर मुनि हो गया था। समन्तभद्राचार्य ने सारे भारत में विहार करके दिगम्बर जैनधर्म का डका बजाया था। उन्होंने प्रायश्चित लेकर पुनः मुनिवेष और फिर आचार्य पद धारण किया था। उनकी ग्रंथरचनायें जैन धर्म के लिए बड़े महत्व की है।[424]

श्री पूज्यपादाचार्य – कर्नाटक देश के कोलंगाल नामक गाव में एक ब्राह्मण माधवभट्ट विक्रम की चौथी शताब्दि में रहता था। उन्हीं के भाग्यवान पुत्र श्रीपूज्यपादाचार्य थे। उनका दीक्षा नाम श्री देवनन्दि था। नाना देशो में विहार करके उन्होंने धर्मोपदेश दिया था, जिसके प्रभाव से सैकड़ों प्रसिद्ध पुरुष उनके शिष्य हुये थे। गगवंशी दुर्विनीत राजा उनका मुख्य शिष्य था। "जैनेन्द्रव्याकरण", "शब्दावतार" आदि उनकी श्रेष्ठ रचनायें हैं।[425]

श्री वादीभसिंह – यतिवर श्री वादीभसिंह श्री पुष्पसेन मुनिके शिष्य थे। उनका गृहस्थ दशा का नाम "ओड्यदेव" था, जिससे उनका दक्षिण देशवासी होना स्पष्ट है। उन्होंने सातवी शताब्दी में "क्षत्रचूडामणि" "गद्यचिन्तामणि" आदि ग्रन्थों की रचना की थी।[426]

श्री नेमिचन्द्राचार्य – श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्त चक्रवर्ती नन्दिसघ के स्वामी अभयनन्दि के शिष्य थे। वि स 735 में द्रविड देश के मथुरा नगर मे वह रहते थे। उन्होंने जैनधर्म का विशेषप्रचार किया था और उनके शिष्य गगवश के राजा श्री राचमल्ल और सेनापति चामुण्डराय आदि थे। उनकी रचनाओं में "गोम्मट्टसार" ग्रन्थ प्रधान है।[427]

श्री अकलंकाचार्य – श्री अकलकाचार्य देवसघ के साधु थे। बौद्धमठ में रहकर उन्होंने विद्याध्ययन किया था। उपरात बौद्धों से वाद करके उनका पराभव और जैनधर्म का उत्कर्ष प्रकट किया था। कॉंची का हिमशीतल राजा उनका मुख्य शिष्य था। उनके रचे हुये ग्रन्थ में राजवार्तिक, अष्टशती, न्यायविनिश्यालङाकार आदि मुख्य है।[428]

---

423 मजैइ, पृ ४४
424 Ibid., पृ. ४५
425 Ibid., पृ ४६
426 Ibid , पृ. ४७
427 Ibid , पृ ४८
428 Ibid., पृ. ४९

श्री जिनसेनाचार्य - राजाओं से पूजित श्री वीरसेन स्वामी के शिष्य श्री जिनसेनाचार्य सम्राट् अमोघवर्ष के गुरु थे। उस समय उनके द्वारा जैनधर्म का उत्कर्ष विशेष हुआ था। वह अद्वितीय कवि थे। उनका "पार्श्वाभ्युदयकाव्य" कालिदास के मेघदूत काव्य की समस्यापूर्ति रूप में रचा गया था। उनकी दूसरी रचना "महापुराण" भी काव्यदृष्टि से एक श्रेष्ठ ग्रंथ है। उनके शिष्य गुणभद्राचार्य ने इस पुराण के शेषांश की पूर्ति की थी।[429]

श्री विद्यानन्दिआचार्य - श्री विद्यानन्दि आचार्य कर्णाटकदेशवासी और गृहस्थदशा में एक वेदानुयायी ब्राह्मण थे। देवागम स्तोत्र को सुनकर वह जैनधर्म में दीक्षित हो गये थे। दिगम्बर मुनि होकर उन्होंने राजदरबारों में पहुंच कर ब्राह्मणों और बौद्धों से वाद किये थे, जिनमें उन्हें विजय श्री प्राप्त हुई थी। अष्टसहस्त्री, आप्तपरीक्षा आदि ग्रंथ उनकी दिव्य रचनायें हैं।[430]

श्री वादिराज - श्रीवादिराजसूरि नन्दिसंघ के आचार्य थे। उनकी षटतर्कषणमुख स्याद्वादविद्यापति और जग देकमल्लवादी उपाधियाँ उनके गौरव और प्रतिभा की सूचक हैं। उनको एक बार कुष्ट रोग हो गया था, किन्तु अपने योगबल से एकीभावस्तोत्र रचते हुए उस रोग से वह मुक्त हुए थे। यशोधर चरित्र, पार्श्वनाथ चरित्र आदि ग्रंथ भी उन्होंने रचे थे।[431]

आप चालुक्यवंशीय नरेश जयसिंह की सभा के प्रख्यात् वादी थे। वे स्वयं सिंहपुर के राजा थे। राज्य त्यागकर दिगम्बर मुनि हुए थे। उनके दादा-गुरु श्रीपाल भी सिंहपुराधीश थे। (जैनि ,वर्ष 33 अंक 5 पृ.72)

इसी प्रकार श्री मल्लिषेणाचार्य, श्रीसोमदेवसूरि आदि अनेक लब्धप्रतिष्ठ दिगंबर जैनाचार्य दक्षिणभारत में हो गुजरे हैं, जिनका वर्णन अन्य ग्रन्थों से देखना चाहिए।

इन दिगंबराचार्यों के विषय में उक्त विद्वान आगे लिखते हैं कि "समग्र दक्षिण भारत विद्वान जैन साधुओं के छोटे-छोटे समूहों से अलकृत था, जो धीरे - धीरे जैनधर्म का प्रचार जनता की विविध भाषाओं में ग्रन्थ रचकर कर रहे थे। किन्तु यह समझना गलत है कि यह साधुगण लौकिक कार्यों से विमुख थे। किसी हद तक यह सच है कि वे जनता से ज्यादा मिलते जुलते नहीं थे। किन्तु ई पू चौथी शताब्दि में मेगास्थनीज के कथन से प्रगट है कि जैन श्रमण, जो जंगलों में रहते थे, उनके पास अपने राजदूतों को भेजकर राजा लोग वस्तुओं के कारण के विषय में उनका अभिप्राय जानते थे। जैन गुरुओं ने ऐसे कई राज्यों

429 Ibid., पृ. ५०-५१

430 Ibid., पृ. ५१-५२

431 Ibid., पृ. ५३

की स्थापना की थी, जिन्होंने कई शताब्दियों तक जैन धर्म को आश्रय दिया था।[432]

प्रो. डॉ. बी. शेषगिरिराव ने दक्षिण भारत के दिगम्बर मुनियों के सम्बन्ध में लिखा है कि "जैन मुनिगण विद्या और विज्ञान के ज्ञाता थे, आयुर्वेद और मन्त्रशास्त्र के भी वे महाविद्वान् थे, ज्योतिषशास्त्र उनका अच्छा खासा था, व्याकरणशास्त्र सिद्धांत और साहित्य को उन्होंने रचा था। जैनमान्यतामें ऐसे सफल एक प्राचीन आचार्य कुन्दकुन्द कहे गए हैं, जिन्होंने बेलारी जिले के कोनकुण्डल प्रदेश में ध्यान और तपस्या की थी।[433]

इस प्रकार दक्षिण भारत में दिगंबर मुनियों के अस्तित्व का चमत्कारिक वर्णन है और वह इस बात का प्रमाण है कि दक्षिण भारत एक अत्यन्त प्राचीनकाल से दिगंबर मुनियों का आश्रयस्थान रहा है तथा वह आगे भी रहेगा, इसमें संशय नहीं।

---

432 "The whole of south India strewn with small groups of learned Jain ascetics, who were slowly but surely spreading their morals through the medium of their sacred literature composed in the various vernaculars of the country But it is a mistake to suppose that these ascetics were indifferent towards secular affairs in general. to a certain extent it is true that they did not mingle with the world But we know from the account of Megasthenes that, so late as the 4th century B.C., "The Sarmanes or the Jain Sarmanes who lived in the woods were frequently consulted by the kings through their messengers regarding the cause of things' Jaina Gurus have been founders of States that for centuries together were tolerant towards the Jain faith" - SSIJ, I 106.

433 SSIJ, pt II pp 9-10

[22]

तामिल-साहित्य में दिगम्बर मुनि।

"Among the systems controverted in the Manimelchalai the Jainsystem also figures as one and the words Samanas and Amana are of frequent occurance, as also references to their <Mi>Viharas<D>, so that from the earliest times reachable with our present means, Jainism apparently flourished in the Tamil Country "[434]

तामिल साहित्य के मुख्य और प्राचीन लेखक दिगबर जैन विद्वानरहे हैं। और उसका सर्वप्राचीन व्याकरण-ग्रन्थ "तोल्काप्पियम्" (Tolkappiyam) एक जैनाचार्य की ही रचना है।[435] किन्तु हम यहा पर तमिल-साहित्य के जैनों द्वारारचे हुये अग को नहीं छूयेंगे। हमें तो जैनेतर तामिल-साहित्य में दिगम्बर मुनियों के वर्णन को प्रकट करना इष्ट है।

अच्छा तो, तामिलसाहित्य का सर्वप्राचीन समय"सगम-काल" अर्थात् ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दि से ईस्वी से पाचवी शताब्दि तक का समय है। इस काल की रचनाओं में बौद्ध विद्वान् द्वारा रचित काव्य "मणिमेखलै" प्रसिद्ध है। "मणिमेखलै" में दिगम्बरमुनियों और उनके सिद्धान्तों तथा मठों का अच्छा खासा वर्णन है। जैनदर्शन को इस काव्य में दो भागों में विभक्त किया है- (1) आजीविका और (2) निग्रन्थ।[436]

आजीविक भ महावीर के समय में एक स्वतत्र सम्प्रदाय था, किन्तु उपरान्तकाल में वह दिगम्बर जैनसंप्रदाय में समाविष्ट हो गया था। निर्ग्रन्थ संप्रदाय को 'अरुहन'(अर्हत्) का अनुयायी लिखा है, जो जैनों का द्योतक है। इस काव्य के पात्रों में सेठ कोवलन् की पत्नी कणिकके पिता मानाइकन् के विषय में लिखा है कि 'जब उसने अपने दामाद के मारे जाने के समाचार सुने तो उसे अत्यन्त दु ख और खेद हुआ। और वह जैन सघ में नगा मुनि हो गया।'[437] इस काव्य से यह भी प्रगट है कि चोल और पाण्डय राजाओं ने जैनधर्म को अपनाया था।[438]

---

434. Sc., p 32 भावार्थ - तामिल काव्य "मणिमेखलै" में जैन संप्रदाय और शब्द "समण" - "अमण" तथा उनके विहारों का उल्लेख विशेष है: जिससे तामिल देश में भतीव प्राचीनकाल से जैनधर्म का अस्तित्व सिद्ध है।"

435. SSIJ., pt. 1. p.89

436. BS., p. 15

437. Ibid., p 681

438. SSIJ., pt. 1 p 47

"मणिमेखलै" के वर्णन से प्रकट है कि "निग्रन्थगण ग्रामों के बाहर शीतल मठों में रहते थे। इन मठों की दिवालें बहुत ऊंची और लाल रंग से रंगी हुई होती थी। प्रत्येक मठ के साथ एक छोटा सा बगीचा भी होता था। उनके मंदिर तिराहों और चौराहों पर अवस्थित थे। जैनों ने अपने प्लेटफार्म भी बना रक्खे थे, जिन पर से निग्रन्थाचार्य अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। जैन साधुओं के मठों के साथ साथ जैनसाध्वीयों के आराम भी होते थे। जैन साध्वीयों का प्रभाव तमिल महिला समाज पर विशेष था। कावेरीप्पूमट्टिनम् जो चोल राजाओं की राजधानी थी, वहां और कावेरी तट पर स्थित उदेपुर में जैनों के मठ थे। मदुरा जैन धर्म का मुख्य केन्द्र था। सेठ कोवलन् और उनकी पत्नी कण्णकि ने उन्हें किसी जीव कोपीड़ा न पहुंचाने के लिये सावधान किया था, क्योंकि मदुरा में निग्रन्थों द्वारा यह एक महान् पाप करार दिया गया था। यह निग्रन्थगण तीन छत्रयुक्त और अशोक वृक्ष के तले बैठाये गये। अर्हत भगवान् की दैदीप्यमान मूर्ति की विनय करते थे। यह सब जैन दिगम्बर थे, यह उक्त काव्य के वर्णन से स्पष्ट है। पुहर में जब इन्द्रोत्सव मनाया गया तब वहा के राजा ने सब धर्मों के आचार्यों को वाद और धर्मोपदेश करने के लिये बुलाया था। दिगम्बर मुनि इस अवसर पर बड़ी सख्या में पहुचे थे और उनके धर्मोपदेश से अनेकानेक तामिल स्त्रीपुरुष जैन धर्म में दीक्षित हुये थे।"[439]

"मणिमेखलै" काव्य में उसकी मुख्य पात्री मणिमेखला एक निग्रन्थ साधु से जैन धर्म के सिद्धान्तों के विषय में जिज्ञासा करती भी बताई गई है।[440] इस तथा इस काव्य के अन्य वर्णन से स्पष्ट है कि ईस्वी की प्रारम्भिक शताब्दयों में तामिल देश में दिगम्बर मुनियों की एक बड़ी सख्या मौजूद थी और तामिल देश में विशेष मान्य तथा प्रभावशाली थे।

शैव और वैष्णव सम्प्रदायों के तामिल साहित्य में भी दिगम्बर मुनियों का वर्णन मिलता है। शैवों के 'पेरियपुराणम्' नामक ग्रन्थ में मूर्ति नायनार के वर्णन में लिखा है कि कलभ्र वंश के क्षत्री जैसे ही दक्षिण भारत में पहुचे वैसे ही उन्होंने दिगम्बर जैन धर्म को अपना लिया। उस समय दिगम्बर जैनों की सख्या वहा अत्यधिक थी और उनके आचार्यों का प्रभाव कलभ्रों पर विशेष था।[441] इस कारण शैवधर्म उन्नत नहीं हो पाया था। किन्तु कलभ्रों के बाद शैवधर्म को उन्नति करने का अवसर मिला था। उस समय बौद्ध प्रायः निष्प्रभ हो गये थे, किन्तु जैन अब भी प्रधानता लिये हुये थे।[442] शैवाचार्यों का वादशाला में मुकाबला लेने

439 Ibid pp 47-48. "That these Jains were the Digambaras is clearly seen from their description . . The Jains took every advantage of the opportunity and large was the number of those that embraced this faith "

440 "Manimekalai asked the Nigantha to state who was his god and what he was tanght in his sacread books etc " -- SSIJ, pt I p 50

441 Ibid, p 55

442 "It would appear from a general study of the literature of the period that Buddhism had declined as an active religion but jainism had still its stroughold. The chief opponents of these saints were the as or the Jainas " - BS., p 689

के लिये दिगम्बराचार्य-जैन श्रमण ही अवशेष थे। शैवों में सम्बन्दर और अप्पर नामक आचार्य जैन धर्म के कट्टर विरोधी थे। इनके प्रचार से साम्प्रदायिक विद्वेष की आग तामिल देश में भड़क उठी थी[443] जिसके परिणाम स्वरूप उपरान्त के शैव ग्रन्थों में ऐसा उपदेश दिया हुआ मिलता है कि बौद्धों और समणों (दिगम्बर मुनियों) के न तो दर्शन करो और न उनके धर्मोपदेश सुनो। बल्कि शिव से यह प्रार्थना की गई है कि वह शक्ति प्रदान करें जिससे बौद्धों और समणों (दि. मुनियों) के सिर फोड़ डाले जावें, जिनके धर्मोपदेश को सुनते- सुनते उन लोगों के कान भर गये हैं।[444] इस विद्वेष का भी कोई ठिकाना है। किन्तु इससे स्पष्ट है कि उस समय भी दि मुनियों का प्रभाव दक्षिण भारत में काफी था।

वैष्णव तामिल साहित्य में भी दिगम्बर मुनियों का विवरण मिलता है। उनके 'तेवारम' (Tevaram) नामक ग्रंथ से ई. सातवीं आठवीं शताब्दि के जैनों का हाल मालूम होता है। उक्त ग्रन्थ से प्रगट है कि "इस समय भी जैनों का मुख्य केन्द्र मदुरा में था। मदुरा के चहुंओर स्थित अनैमलै, पसुमलै आदि आठ पर्वतों पर दिगम्बर मुनिगण रहते थे और वे ही जैन संघ का संचालन करते थे। वे प्राय जनता से अलग रहते थे-उससे अत्यधिक सम्पर्क नहीं रखते थे। स्त्रियों से तो वे बिल्कुल दूर-दूर रहते थे। नासिका स्वर से वे प्राकृत व अन्य मंत्र बोलते थे। ब्राह्मणों और उनके वेदों का वे हमेशा खुला विरोध करते थे। कड़ी धूप में वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर वेदों के विरुद्ध प्रचार करते हुए विचरते थे। उनके हाथ में पींछी, चटाई और एक छत्री होती थी। इन दिगम्बर मुनियों को सम्बन्दर द्वेषवश बन्दरों की उपमा देता है, किन्तु वे सैद्धान्तिक वाद करने के लिये बड़े लालायित थे और उन्हें विपक्षी को परास्त करने में आनन्द आता था। केशलोंच ये मुनिगण करते थे और स्त्रियों के सम्मुख नग्न उपस्थित होने में उन्हें लज्जा नहीं आती थी। भोजन लेने के पहले वे अपने शरीर की शुद्धि नहीं करते थे (अर्थात् स्नान नहीं करते थे) मंत्रशास्त्र वे खूब जानते थे और उसकी खूब तारीफ करते थे।[445]

त्रिज्ञानसम्बन्दर और अप्पर ने जो उपरोक्त प्रमाण दिगम्बर मुनियों का वर्णन दिया है, यद्यपि वह द्वेष को लिये हुये है, परन्तु तो भी उससे उस काल में दिगम्बर मुनियों के बाहुल्य रुप में सर्वत्र विहार करने, विकट तपस्वी और उत्कट वादी होने का समर्थन होता है।

दक्षिण भारत की 'नन्दयाल कैफियत' (Nandyala Kaiphiyat) में लिखा है[446] कि "जैन मुनि अपने सिरों पर बाल नहीं रखते थे कि शायद कहीं जू न पड़ जावें और वे हिंसा के भागी हों। जब वे चलते थे तो मोर पिच्छी से रास्ता को साफ कर लेते थे कि कहीं सूक्ष्म जीवों की विराधना न हो जाय। वे दिगम्बर वेष धारण किये थे, क्योंकि उन्हे भय था कि कहीं उनके कपड़े और शरीर के संसर्ग से सूक्ष्म जीवों को पीड़ा न पहुंचे। वे सूर्यास्त के उपरान्त भोजन नहीं करते थे, क्योंकि पवन के साथ उड़ते हुए जीवजन्तु कहीं

---

443 SSIJ., pt. I pp 60-66

444 तिरुमलै - BS., p 692

445. SSIJ., pt. I pp 68-70

446 Ibid , pt II pp 10-11

उनके भोजन में गिर कर मर न जाय।" इस वर्णन से भी दक्षिण भारत में दिगम्बर मुनियों का बाहुल्य और निर्बाध धर्म प्रचार करना प्रमाणित है।

"सिद्धवत्तम् कैफियत" (Siddhavattam Kaiphiyat) से प्रकट है[447] कि "वरंगल के जैन राजा उदार प्रकृति थे। वे दिगम्बरों के साथ 2 अन्य धर्मों को भी आश्रय देते थे।" "वरंगल कैफियत" से प्रकट है[448] कि वहां वृषभाचार्य नामक दिगम्बर मुनि विशेष प्रभावशाली थे।

दक्षिणभारत के ग्राम्य-कथा साहित्य में एक कहानी है, उससे प्रकट है कि "वरंगल के काकतीय वंशी एक राजा के पास ऐसी खड़ाऊं थीं, जिनको पहनकर वह उड़ सकता था और रोज बनारस में जाकर गंगा स्नान कर आता था। किसी को भी इसका पता न चलता था। एक रोज उसकी रानी ने देखा कि राजा नहीं है। वह जैन धर्मपरायण थी। उसने अपने गुरुओं से राजा के संबंध में पूछा। जैनगुरु ज्योतिष के विद्वान विशेष थे, उन्होंने राजा का सब पता बता दिया। राजा जब लौटा तो रानी ने बताया कि वह कहां गया था और प्रार्थना की कि वह उसे भी बनारस ले जाया करे। राजा ने स्वीकार कर लिया। वह रानी भी बनारस जाने लगी। एक रोज मार्ग में वह मासिक धर्म से हो गई। फलतः खड़ाऊं की वह विशेषता नष्ट हो गई। राजा को उस पर बड़ा दुःख हुआ और उसने जैनों को कष्ट देना प्रारंभ कर दिया।"[449] इस कहानी से विधर्मी राजाओं के राज्य में भी दिगम्बर मुनियों का प्रतिभाशाली होना प्रकट है।

अरुलनन्दि शैवाचार्य कृत "शिवज्ञानसिद्धियार" में परपक्ष संप्रदायों में दिगम्बर जैनों का "श्रमणरूप" उल्लेख है। तथा "हालास्यमाहात्म्य" में मदुरा के शैवों और दिगम्बर मुनियों के वाद का वर्णन मिलता है।[450]

इस प्रकार तामिल साहित्य के उपरोक्त वर्णन से भी दक्षिण भारत में दिगम्बर मुनियों का प्रतिभाशाली होना प्रमाणित है। वे वहां एक अत्यन्त प्राचीनकाल से धर्म प्रचार कर रहे थे।

---

447 Ibid., p 17

448 Ibid p 18

449 SSIJ, pt II pp 27 - 28 SC, p 243

450 IHQ, Vol IV p 564

[23]

भारतीय पुरातत्व और दिगम्बर मुनि।

"Chalcolithic civilisation of the Indus Valley was something quite different from the Vedic civilisation" "On the eve of the Aryan immigration the Indus Valley was in possession of a civilized and war like people"

– R B Ramprasad Chanda [451]

मोहन-जो-दारों का पुरातत्व और दिगम्बरत्व

भारतीय पुरातत्व में सिंधुदेश के मोहन जोदरो और पजाब के हरप्पा नामक ग्रामों से प्राप्ति पुरातत्व अतिप्राचीन है। वह ईस्वी सन् से तीन चार हजार वर्ष पहले का अनुमान किया गया है। जिन विद्वानों ने उसका अध्ययन किया है, वह इस परिणाम पर पहुचे हैं कि सिन्धुदेश में उस समय एक अतीव सभ्य और क्षत्रिय प्रकृति के मनुष्य रहते थे, जिनका धर्म और सभ्यता वैदिक-धर्म और सभ्यता से नितान्त भिन्न थी। एक विद्वान ने उनहें "व्रात्य" सिद्ध किया है[452] और मनु के अनुसार "व्रात्य" वह वेद विरोधी सम्प्रदाय था "जिसके लोग द्विजों द्वारा उनकी सजातीय पत्नियों से उत्पन्न हुए थे, किन्तु जो (वैदिक) धार्मिक नियमों का पालन न कर सकने के कारण सावित्री से प्रथक कर दिये गये थे।" (मनु 10/20) वह मुख्यत क्षत्री थे। मनु एक व्रात्य क्षत्री से ही झल्ल, मल्ल, लिच्छवि, नात, करण, खस और द्राविड वशों की उत्पत्ति बतलाते हैं। (मनु 10/22) यह पहले भी लिखा जा चुका है। सिन्धु देश के उपरोक्त मनुष्य इसी प्रकार के क्षत्री थे और वे ध्यान तथा योग का स्वंय अभ्यास करते थे और योगियों की मूर्तियों की पूजा करते थे। मोहन-जो- दरो से जो कतिपय मूर्तिया मिली हैं उनकी दृष्टि जैन मूर्तियों के सदृश 'नासाग्रदृष्टि' है। किन्तु ऐसी जैन मूर्तिया प्राय ईस्वी पहली शताब्दि तक की ही मिलती विद्वान् प्रकट करते है[453] यद्यपि जैनों की मान्यता के अनुसार उनके मदिरों में बहुप्राचीनकाल की मूर्तिया मौजूद हैं। उस पर, हाथी गुफा के शिलालेख से कुमारी पर्वत पर नन्दकाल की मूर्तियों का होना प्रमाणित है[454] तथा मथुरा के 'देवों' द्वारा निर्मित जैनस्तूप से भगवान पार्श्वनाथ के समय में भी ध्यानदृष्टिमय मूर्तियों का होना सिद्ध है।[455] इसके

---

451 SPOIV, p 1 & 25
452 Ibid, pp 25-34
453 Ibid pp 25-26
454 JBORS
455. वीर वर्ष ४ पृ. २६६

अतिरिक्त प्राचीन जैन साहित्य तथा बौद्धों के उल्लेख से भ. पार्श्वनाथ और भ. महावीर के पहले के जैनों में भी ध्यान और योगाभ्यास के नियमों का होना प्रमाणित है। 'संयुक्तनिकाय' में जैनों के 'अवितर्क और अविचार श्रेणी के ध्यानों का उल्लेख है[456] और "दीर्घनिकाय" के ब्रह्मजालसुत्त से प्रकट है कि गौतम बुद्ध से पहले ऐसे साधु थे जो ध्यान और विचार द्वारा मनुष्य के पूर्वभवों का बतलाया करते थे।[457] जैन शास्त्रों में ऋषभादि प्रत्येक तीर्थंकर के शिष्यसमुदाय में ठीक ऐसे साधुओं का वर्णन मिलता है, यह पहले ही लिखा जा चुका है। अतः यह स्पष्ट है कि जैन साधु एक अतीव प्राचीनकाल से ध्यान और योग का अभ्यास करते आये हैं तथा झल्ल,मल्ल, लिच्छवि, ज्ञातृ आदि व्रात्य प्रायः जैन थे। अन्यत्र यह सिद्ध किया जा चुका है कि 'व्रात्य' क्षत्रिय बहुत कट्टक जैन थे औरउनमें से ज्येष्ठ व्रात्य सिवाय 'दिगम्बर मुनि के' और कोई न थे।[458] इस अवस्था में सिन्धुदेश के उपरोक्त कालवर्ती मनुष्यों का प्राचीन जैन ऋषियों का भक्त होना बहुत कुछ सम्भव है। किन्तु मोहन जोहरों से जो मूर्तिया मिली हैं वह वस्त्र सयुक्त हैं और उनहें विद्वान् लोग 'पुजारी'(Priest) व्रात्यों की मूर्तिया अनुमान करते हैं। हमारे विचार से वे हीन-व्रात्य (अणुव्रती श्रावकों) की मूर्तिया हैं। व्रात्य-साधु की मूर्ति वह हो नहीं सकती, क्योंकि उसे शास्त्रों में नग्न प्रगट किया गया है। वहा 'ज्येष्ठव्रात्य' का एक विशेषण 'समनिचमेढ्र' अर्थात् 'पुरुषलिंग से रहित' दिया हुआ है जो नग्नता का द्योतक है। हीनव्रात्यों की पोशाक के वर्णन में कहा गया है कि वे एक पगड़ी (निर्यन्नद्ध), एक लाल कपड़ा और एक चांदी का आभूषण 'निश्क' नामक पहनते थे। उक्त मूर्ति की पोशाक भी इसी ढग की है। माथे पर एक पट्ट रूप पगडी जिसके बीच में एक आभूषण जड़ा है, वह पहने हुवे प्रगट है और वगल से निकला हुआ एक छिटदार कपड़ा वह ओढे हुये है।[459] इस अवस्था में इन मूर्तियों को हीन व्रात्यों की उक्त मूर्तियां मानना ही ठीक है और इस तरह पर यह सिद्ध है कि व्रात्यक्षत्रिय एक अतीव प्राचीनकाल में अवश्य ही एक वेद -विरोधी सप्रदाय था, जिसमें ज्येष्ठव्रात्य दिगम्बर मुनि के अनुरुप थे। अत प्रकारान्तर से भारत का सिंधुदेशवर्ती सर्वप्राचीन पुरातत्व भी दिगम्बर मुनि और उनकी योगमुद्रा का पोषक है।[460]

अशोक के शासन लेख में निग्रन्थ

सिंधु देश के पुरातत्व के उपरात सम्राट अशोक द्वारा निर्मित पुरातत्व ही सर्व प्राचीन है। वह पुरातत्व भी दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व का द्योतक है। सम्राट अशोक ने अपने

---

456 PTS, IV, 287

457 भमबु, पृ २१६-२२०

458 भपा, प्रस्तावना पृ ४४-४५

459 SPCIV, Plate I, Fig., 'b'

460 'SPCIV' pp. 25-33 में मोहन जोदड़ो की मूर्तियों को जिन मूर्तियों के समान और उनका पूर्ववर्ती टाइप प्रकट किया गया है।

एक शासन लेख में आजीविका साधुओं के साथ निग्रन्थ साधुओं का भी उल्लेख किया है।[461]

खंडगिरि-उदयगिरी के पुरातत्व में दि. मुनि

अशोक के पश्चात् खण्डगिरि उदयगिरि का पुरातत्व दिगम्बर धर्म का पोषक है। जैन सम्राट् खारवेल के हाथी गुफा वाले शिलालेख में दिगम्बर मुनियों का "तापस" (तपस्वी) रूप उल्लेख है[462] और उन्होंने सारे भारत के दिगम्बर मुनियों का सम्मेलन किया था, यह पहले लिखा जा चुका है। खारवेल की पटरानी ने भी दिगम्बर मुनियों कलिंग श्रमणों के लिये गुफा निर्मित कराकर उनका उल्लेख अपने शिलालेख में निम्न प्रकार किया है:-

"अरहन्तपसादायम् कलिंगानम् समनाम लेन कारितम् राञो लालकसहथीसाहसपपोतस् धुतुनाकलिंगचक्र वर्तिनो श्री खारवेलस्स अगमहिसीमा कारितम्।"

भावार्थ - "अर्हन्त के प्रसाद या मन्दिर रूप यह गुफा कलिंग देश के श्रमणों (दिगम्बर मुनियों) के लिये कलिंग चक्रवर्ती राजा खारवेल की मुख्य पटरानी ने निर्मित कराई, जो हथीह इसके पौत्र लालकस की पुत्री थी।"[463]

खण्डगिरी की तत्वगुफा पर जो लेख है वह बाल्मुनि का लिखा हुआ है।[464] 'अनन्तगुफा' में लेख है कि "दोहद के दिग मुनियों श्रमणों की गुफा" (दोहद समनानम् लेनम्)।[465]

इस प्रकार खण्डगिरी-उदयगिरि के शिलालेखों से ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दि में दिगम्बर मुनियों के कल्याणकारी अस्तित्वका पता चलता है।

खण्डगिरी-उदयगिरी पर जो मूर्तियां हैं, वे प्राचीन और नग्न है और उनसे दिगम्बरत्व तथा दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व का पोषण होता है। वह अब भी दिगम्बर मुनियों का मान्य तीर्थ है।

मथुरा का पुरातत्व और दिगम्बर मुनि

मथुरा का पुरातत्व ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दि तक का है और उससे भी दिगम्बर मुनियों का जनता में बहुमान्य और कल्याणकारी होना प्रगट है। वहां की प्रायः सब ही प्राचीन मूर्तियां नग्न-दिगम्बर हैं। एक स्तूप के चित्र में जैन मुनि नग्न पीछी व कमण्डल लिये दिखाये गये हैं।[466]

---

461 स्थम्भलेख न ६

462 'सवदिसान तापसानं' पंक्ति १५ JBORS

463 बांवेबो जैस्मा, पृ ८१

464 Ibid p 94

465 Ibid, p 97

466 जैसिभा, वर्ष १ किरण ४ पृ १०३

उन पर के लेख दिगम्बर मुनियों के द्योतक है, यथा -

"नमो अर्हतो वर्धमानस आराये गणिकायें लोण शोभिकायें धितु समग साविकाये नादाये गणिकाये वसु(ये) आर्हतोदेविकुल आयाग सभा प्रयाशिल। पटी पतिस्थापितो निग्रन्थानम् अर्हता वसनेसहमातरे भगिनिये धितरे पुत्रेण सर्वेन च परिजनेन अर्हत् पुजाये।"

अर्थात् - "अर्हत् वर्द्धमान को नमस्कार। श्रमणों की श्राविका आरायागणिका लोणशोभिका की पुत्री नादाय गणिका वसु ने अपनी माता, पुत्री, पुत्र और अपने सर्व कुटुम्ब सहित अर्हत एक मन्दिर, एक आयाग सभा, ताल और एक शिला निर्ग्रंथ अर्हतों के पवित्र स्थान पर बनवाये।"[467]

इसमें दानशीला श्राविका को श्रमणो-दिगम्बर मुनियों का भक्त तथा निग्रंथ दिगम्बर मुनियों के लिये एक शिला बनाया जाना प्रगट किया गया है। एक आयागपट पर के लेख में भी श्रमण-दिगम्बर मुनियों का उल्लेख है।[468] प्लेट नं. 28 पर के लेख में भी ऐसा ही उल्लेख है।[469] तथा एक दिगम्बर मूर्ति पर निम्न प्रकार लेख है -

". स. 15 ग्री 3 दि 1 अस्या पूर्व्वाय . हिका तो आर्य जयभूतिस्य शिषीनिनं अटर्य सनामिके शिषीन अरुर्य वसुल ये (निर्व्वर्त्त) न . लस्य धीतु 3 . घु वेणि श्रेष्टिस्य धर्मपत्निये भट्टिसेनस्य. (मातु) कुमरमितयों दन भगवतो (प्र) मा सब्ब तो भद्रिका।"

अर्थात् - "(सिद्ध) स 15 ग्रीष्म के तीसरे महीने में पहले दिन को, भगवत की एक चतुर्मुखी प्रतिमा कुमरमिता के दानरूप, जो ल की पुत्री, की बहू, श्रेष्टि वेणि की प्रथम पत्नी, भट्टिसेन की माता थी, कैहिककुल के आर्य जयभूति की शिष्या अर्य सगमिका की प्रति शिए वसुला की इच्छानुसार (अर्पित हुई थी)"[470]

इसमें दिगम्बर मुनि जयभूति का उल्लेख 'आर्य' विशेपण से हुआ है। ऐसे ही अन्य उल्लेखों से वहा का पुरातत्व तत्कालीन दिगम्बर मुनियों के सम्माननीय व्यक्तित्व का परिचायक है।

अहिच्छत्र (बरेली) के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि।

अहिच्छत्र (बरेली) पर एक समय नागवशी राजाओं का राज्य था और वे दिगम्बर जैन धर्मानुयायी थे। वहा के कटारी खेड़ा की खुदाई में डा. फुहरर सा ने एक समूचा सभामदिर खुदवा कर निकलवाया था। यह मदिर ई पूर्व प्रथम शताब्दि का अनुमान किया गया है और यह श्री पार्श्वनाथ जी का मन्दिर था। इसमें से मिली हुई मूर्तियां सन् 96 से 152 तक की है, जो नग्न हैं। यहा एक इटों का बना हुआ प्राचीन स्तूप भी मिला था, जिसके एक स्तम्भ पर निम्न प्रकार लेख था -

---

467 होलीदरवाजा से मिला आयागपट - वीर, वर्ष ४ पृ ३०३

468 आर्यवती आयागपट --वीर वर्ष ४ पृ ३०४

469 JOAM, Plate No 28

470 वीर, वर्ष ४ पृ. ३१०

"महाचार्य इन्द्रनन्दि शिष्य पार्श्वयतिस्य कोट्टकारी।"
आचार्य इन्द्रनन्दि उस समय के प्रख्यात् दिगम्बर मुनि थे।[471]

कौशाम्बी के पुरातत्व में दिगम्बर संघ।

कोशाम्बी का पुरातत्व भी दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व का पोषक है। वहा से कुशानकाल का मथुरा जैसा आयागपट्ट मिला है, जिसे राजा शिवमित्र के राज्य में आर्य शिवनन्दि की शिष्या बडी स्थविरा बलदासा के कहने से शिवपालित ने अर्हत् की पूजा के लिये स्थापित किया था।[472] इस उल्लेख से उस समय कौशाम्बी में एक वृहत् दिगम्बर जैन सघ के रहने का पता चलता है।

कुहाऊं का गुप्तकालीन लेख दि. मुनियों का द्योतक हैं।

कुहाऊ (गोरखपुर) से प्राप्त पुरातत्व गुप्तकाल में दिगम्बर धर्म की प्रधानता का द्योतक है।वहा के पाषाण -स्तम्भ में नीचे की ओर जैन तीर्थंकर और साधुओं की नग्न मूर्तियां हैं और उस पर निम्नलिखित शिलालेख हैं -[473]

"यस्योपस्थानभूमिर्नृपति-शतशिर पात-वातवाधूता। गुप्तानां वशजस्य प्रविसृतयशस्तस्य सर्वोत्तमर्द्धे।। राज्ये शक्रोपमस्य क्षितिपशतपते स्कन्दगुप्तस्य शान्ते। वर्षे त्रिशद्दशैकोत्तर क-शत त में ज्येष्ठ मासे प्रपन्ने-ख्यातेऽस्मिन् ग्राम रत्ने कुकुभ इति जनैस्साधु -संसर्गपूते पुत्रो यस्सोमिलस्य प्रचुर गुण निधेर्भट्टिसोमो महार्थः तत्सून रुद्रसोम पृथलुमतियशा व्याघ्ररत्यन्य सज्ञो मद्रस्तस्यात्म जो-भूद्द्विज-गुरुय तिषु प्रायश प्रीतिमान्य ।। इत्यादि"

भाव यही है कि संवत् 141 में प्रसिद्ध तथा साधुओं के संसर्ग से पवित्र ककुभ ग्राम में ब्राह्मण-गुरु और यतियों को प्रिय मद्र नामक विप्र रहते थे, जिन्होंन पाच अर्हत्बिम्ब निर्मित कराये थे। इससे स्पष्ट है कि उस सम ककुभ ग्राम में दिगम्बर मुनियों का एक वृहत् सघ रहता था।

राजगृह (विहार) के पुरातत्व में दि. मुनियों की साक्षी।

राजगृह (विहार) का पुरातत्व भी गुप्तकाल में वहां दिगम्बर मुनियों के बाहुल्य का परिचायक है। वहा पर गुप्तकाल की निर्मित अनेक दिगम्बर जैनमूर्तियां मिलती हैं[474] और निम्न शिलालेख वहा पर दिगम्बर जैन सघ का अस्तित्व प्रमाणित करता है -

---

471 समाजैस्मा, पृ ८१-८२ (General Cunningham) found a number of fragmentary naked Jain statues, some inscribed with dates ranging from 96 to 152 A d'

472 संप्राजैस्मा, पृ २७

473 पूर्व, पृ ३-४

474 SPCIV, Plate II (b)

"निर्वाणलाभाय तपस्वि योग्ये शुभेगुहेऽर्हत्प्रतिमाप्रतिष्ठे।
आचार्यरत्नम् मुनि वैरदेवः विमुक्तये कारय दीर्घतेजाः॥"

अर्थात् – निर्वाण की प्राप्ति के लिये तपस्वियो के योग्य और श्री अर्हन्त की प्रतिमा से प्रतिष्ठित शुभगुफा में मुनि वैरदेव को मुक्ति के लिये परम तेजस्वी आचार्य पद रूपी रत्न प्राप्त हुआ यानि मुनि वैरदेव को मुनि संघ ने आचार्य स्थापित किया। "इस शिलालेख के निकट ही एक नग्न जैन मूर्ति का निम्न भाग उकेरा हुआ है, जिससे इसका सम्बन्ध दिगम्बर मुनियों से स्पष्ट है।"[475]

बंगाल के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि।

गुप्तकाल और उसके बाद कई शताब्दियों तक बगाल, आसाम और ओड़ीसा प्रान्तों में दिगम्बर जैन धर्म बहुत प्रचलित था। नग्न जैन मूर्तियां वहा के कई जिलों में बिखरी हुइ मिलती है। पहाड़पुर (राजशाही) गुप्तकाल में एक जैनकेन्द्र था।[476] वहां से प्राप्त एक ताम्र लेख दिगम्बर मुनियों के सघ का द्योतक हैं।

उसमें अंकित हैं कि "गुप्त सं 159 (सन् 479 ई) में एक ब्राह्मण दम्पति ने निग्रर्न्थ विहार की पूजा के लिये बटगोहली ग्राम में भूमिदान दी। निग्रन्थसंघ आचार्य गुहनन्दि और उनके शिष्यों द्वारा शासित था।"[477]

कादम्बर राजाओं के ताम्रपत्रों में दिगम्बर मुनि

देवगिरी (धाड़वाड) से प्राप्त कादम्बवंशी राजाओं के ताम्रपत्र ईस्वी पाचवी शताब्दि में दिगम्बर मुनियों के वैभव को प्रकट करते हैं। एक लेख में है कि महाराजा कादम्ब श्री कृष्णवर्मा के राजकुमार पुत्र देववर्मा ने जैन मुन्दिर के लिये यापनीय संघ के दिगम्बर मुनियों को एक खेत दान दिया था। दूसरे लेख से प्रगट है कि "काकुष्ठवशी श्री शान्तिवर्मा के पुत्र कादम्ब महाराज मृगेश्वरवर्मा ने अपने राज्य के तीसरे वर्ष परलूरा के आचार्यों को दान दिया था।" तीसरे लेख में कहा गया है कि इसी मृगेश्वर वर्मा ने जैन मन्दिरों और निग्रन्थ (दिगम्बर) तथा श्वेतपट (श्वेताबर) सघों के साधुओं के व्यवहार के लिये एक कालवड़ नामक ग्राम अर्पण किया था।[478]

उदयगिरी (विदिशा) में पाचवी शताब्दि की बनी हुई गुफायें है, जिनमें जैन साधु ध्यान किया करते थे। उनमें लेख भी है।[479]

---

475 बंविऔजैस्मा, पृ १६
476 IHQ, Vol VII p 441
477 Modern Review, August 1931, p. 150
478 IA VII 33-34 व बंप्राजैस्मा., पृ १२६
479 मप्राजैस्मा., पृ. ६६

अजन्ता की गुफाओं में दि. मुनियों का अस्तित्व

अजन्ता (खानदेश) की प्रसिद्धगुफाओं के पुरातत्व से ईस्वी सातवीं शताब्दि में दिगम्बर जैन मुनियों का अस्तित्व प्रमाणित है वहां की गुफा नं 13 में दिगम्बर मुनियों का संघ चित्रित है। नं 33 की गुफा में भी दिगम्बर मूर्तियों हैं।[480]

बादामी की गुफा

बादामी (बीजापुर) में सन् 650 ई की जैन गुफा उस जमाने में दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व की द्योतक है। उसमें मुनियों के ध्यान करने योग्य स्थान हैं और नग्न मूर्तिया अंकित हैं।[481]

चालुक्य राजा विक्रमादित्य के लेख में दिगम्बर मुनि।

लक्ष्मेश्वर (धाड़वाड़) की सखवस्त्री के शिला लेख से प्रगट है कि सखतीर्थ का उद्धार पश्चिमीय चालुक्यवशी राजा विक्रमादित्य द्वितीय (शाका 656) ने कराया था और जिन पूजा के लिये श्री देवेन्द्र भट्टारक के शिष्य मुनि एकदेव के शिष्य जयदेव पडित को भूमि दान दी थी। इससे विक्रमादित्य का दिगम्बर मुनियों का भक्त होना प्रगट है। वहीं के एक अन्य लेख से मूलसघ के श्री रामचन्द्राचार्य और श्रीविजय देव पडिताचार्य का पता चलता है।[482] साराशत वहा उस समय एक उन्नत दिगम्बर जैन सघ विद्यमान् था।

एलोरा की गुफाओं में दिगम्बर मुनि

ईस्वी आठवीं शताब्दि की निर्मित एलोरा की जैन गुफायें भी उस समय दिगम्बर मुनियों के विहार और धर्म प्रचार को प्रगट करती हैं। वहा की इन्द्रसभा नामक गुफा मे जैन मुनियों के ध्यान करने और उपदेश देने योग्य कई स्थान हैं और उनमें अनेक नग्न मूर्तियां अंकित हैं। श्रीबाहुबलि गोमटस्वामी की भी खड्गासन मूर्ति हैं। "जगन्नाथसभा" "छोटा कैलास" आदि गुफाये भी इसी ढग की हैं और उनसे तत्कालीन दिगम्बरत्व की प्रधानता का परिचय मिलता है।[483]

राष्ट्रराजा आदि के शिलालेखों में दिगम्बर मुनि।

सौदत्ति (बेलगाम) के पुरातत्व में दिगम्बर मुनियों की मूर्तियों और उनका वर्णन मिलता है।[484] वहा एक आठवी शताब्दी का शिलालेख है, जिससे प्रकट है कि "मैलेयतीर्थ की कारेयशाखा में आचार्य श्री मूल भट्टारक थे, जिनके शिष्य विद्वान गणकीर्ति

480 बंगाजैस्मा, पृ ५५-५६
481 Ibid p 103
482 Ibid p 124-125
483 Ibid p 163-171
484 बंग्रा जस्मा पृ ८३-८६

थे और उनके शिष्य इच्छा को जीतने वाले श्रीमुनि इन्द्रकीर्ति स्वामी थे, उनका शिष्य मेरड़ का बड़ा पुत्र राजा पृथ्वीवर्मा था, जिसने एक जैन मंदिर बनवाया था और उसके लिये भूमि का दान दिया था।" एक दूसरे सन् 981 के लेख से विदित है कि कुन्दुर जैन शाखा के गुरु अति प्रसिद्ध थे उनको चौथे राट्टराजा शांत ने 150 मत्तर भूमि उस जैन मन्दिर के लिये दी जो उन्होंने सौदत्ति में बनवाया था और उतनी ही भूमि उसी मंदिर का उनकी स्त्री निजिकब्बे ने दे दी थी। उन दिगम्बराचार्य का नाम श्री बाहुबलीजी और वे व्याकरणाचार्य थे। उस समय श्री रविचन्द्र स्वामी, अर्हनन्दी शुभचन्द्र भट्टारकदेव, मौनी देव, प्रभाचन्द्रदेव मुनिराज विद्यमान थे। राजाकत्तम की स्त्री पद्मलादेवी जैनधर्म के ज्ञान व श्रद्धान में इन्द्राणी के समान थी। वह दिगम्बर मुनियों की भक्ति में दृढ थी।

चालुक्यराजा विक्रम के लेख में दि. मुनियों का उल्लेख

एक अन्य लेख वहीं पर चालुक्य राजा विक्रम के 12 वें राज्यवर्ष का लिखा हुआ है, जिसमें निम्नलिखित दिगम्बराचार्यों के नाम दिये हुए हैं -

"बलात्कारगण मुनि गुणचन्द, शिष्य नयनंदि, शिष्य श्रीधराचार्य, शिष्य चन्द्रकीर्ति, शिष्य श्रीधरदेव, शिष्य नेमिचन्द्र और वासुपूज्य त्रैविद्यदेव, वासुपूज्य के लघुभ्राता मुनि विद्वान मल्लपाल थे। वासुपूज्य के शिष्य सर्वोत्तम साधु पद्मप्रभ थे। नैरिंग का वंश का अधिकारी गुरु वासुपूज्य का सेवक था।"

इस प्रकार उपरोक्त लेखों से सौदति और उसके आस पास में दिगम्बर मुनियों का बाहुल्य और उनका प्रभावशाली तथा राजमान्य होना प्रकट है।

राठौर राजाओं द्वारा मान्य दि. मुनियों के शिलालेख

गोविन्दराय तृतीय राठौर मान्यखेट के सन् 813 के ताम्रपत्र से प्रकट है कि गंगवंशी चाकराज की प्रार्थना पर उन्होंने विजयकीर्ति कुलाचार्य के शिष्य मुनि अर्ककीर्ति को दान दिया था। अमोघवर्ष प्रथम ने सन् 860 में मान्यखेट में देवेन्द्रमुनि को भूमिदान किया था।[485] इनसे दिग. मुनियों का राठौर राजाओं द्वारा मान्य होना प्रमाणित है।

मूलगुड के पुरातत्व में दि. संघ

मूलगुड (धाडवाड) की 9 वीं -10वीं शताब्दी का पुरातत्व भी वहां पर दिगम्बर मुनियों के प्रभुत्व का द्योतक है। वहा के एक शिलालेख में वर्णन है कि "चीकारि, जिसने जैन मन्दिर बनवाया था, उसके पुत्र नागार्य के छोटे भ्राता आगार्य ने दान किया। यह आगार्य नीति और धर्मशास्त्र में बड़ा विद्वान था। इसने नगर के व्यापारियों की सम्मति से 1000 पान के वृक्षों के खेत को सेनवंश के आचार्य कनक सेन की सेवा में जैन मन्दिर के लिए अर्पण किया था। कनकसेनाचार्य के गुरु श्री वीर सेनस्वामी थे, जो पूज्य पाद कुमार

---

485. भाप्रारा भा, 3 पृ 38-39

सेनाचार्य के दिगम्बर मुनियों के संघ के गुरु थे। चन्द्रनाथ मन्दिर के शिलालेख से मूलगुंड के राजा मदरसा की स्त्री भामती की मृत्यु का वर्णन प्रकट है।[486] गर्ज यह कि मूल गुंड में दिगम्बर मुनियों को एक समय प्रधानपद मिला हुआ था-वहा का शासक भी उनका भक्त था।

सुन्दी के शिलालेखों में राजमान्य दिगम्बर मुनि

सुन्दी (धाडवाड) के जैन मन्दिर विषयक शिलालेख (10वीं श) में पश्चिमीय गंगवशीय राजकुमार बुट्टग का वर्णन है जिसने उस जैन मन्दिर के लिये दिगम्बर गुरु को दान दिया था। जिसको उसकी स्त्री दिवलम्बा ने सुन्दी में स्थापित किया था। राजा बुट्टग गगमण्डल पर राज्य करता था और श्री नागदेव का शिष्य था। रानी दिवलम्बा दिगम्बर मुनियों और आर्यिकाओं की परम भक्त थी। उसने छै आर्यिकाओं को समाधिमरण कराया था।[487] इससे सुन्दी में दिगम्बर मुनियों का राज मान्य होना प्रकट है।

कुम्भोज बाहुबलि पहाड (कोल्हापुर) श्री दिगम्बर मुनि बाहुबलि के कारण प्रसिद्ध है, जो वहां हो गये हैं और जिनकी चरण पादुका वहा मौजूद हैं।[488]

कोल्हापुर के पुरातत्व में दिग मुनि और शिलाहार राजा

कोल्हापुर का पुरातत्व दिगम्बर मुनियो के उत्कर्ष का द्योतक है। वहा के इरविन म्यूजियम में एक शिलालेख शाका दसवी शताब्दि का है जिससे प्रगट है कि दण्डनायक दासी मरस ने राजा जगदेकमल्ल के दूसरे वर्ष के राज्य मे एक ग्राम धर्मार्थ दिया था। उस समय यापनीयसघ पुन्नागवृक्षमूलगण राद्धान्तादिकं ज्ञाता परमतिद्भिन् मुनि कुमार कीर्तिदेव विराजित थे।[489] उपरान्त कोल्हापुर के शिलाहार वशी राजा भी दिगम्बर मुनियों के परमभक्त थे। वहां के एक शिलालेख से प्रकट है कि "शिलाहार वशीय महामण्डलेश्वर विजयादित्यने माघ सुदी 15 शाका 1065 को एक खेत और एक मकान श्री पार्श्वनाथ जी के मन्दिर में अष्टद्रव्य पूजा के लिये दिया। इस मन्दिर को मूल सघ देशीयगण पुस्तक गचछ के अधिपति श्री माघनन्दि सिद्धान्तदेव (दिगम्बराचार्य) के शिष्य सामन्त कामदेव के अधीनस्थ वासुदेव ने बनवाया था। दान के समय राजा ने श्री माघनन्दि सिद्धान्तदेव के शिष्य माणिक्यनन्दि प के चरण धोये थे।" बमनी ग्राम से प्रापत शाका 1073 के लेख से प्रगट है कि "शिलाहार राजा विजयादित्य ने जैन मन्दिर के लिये श्री कुन्दकुन्दान्वयी श्री कुलचन्द्र मुनि के शिष्य श्रीमाघनदि सिद्धान्तदेव के शिष्य श्री अर्हनन्दि सिद्धान्तदेव के चरण धोकर भूमिदान किया था।"[490] इनसे उस समय दिगम्बर मुनियां का प्रभुत्व स्पष्ट है।

---

486 बंप्राजैस्मा, पृ १२०-१२१
487 बंप्राजैस्मा, पृ १२७
488. बंप्राजैस्मा, पृ १५३
489 जैनमित्र वर्ष ३३ अंक ५ पृ ७१
490 बंप्राजैस्मा, पृ १५३-१५४

आरटाल शिला-लेख में चालुक्य राज रजित दिगम्बर मुनि

आरटाल (धारवाड़) से एक शिलालेख शाका 1045 का चालुक्यराज भुवनैकमल्ल के राज्य काल का मिला है। उसमें एक जैन मन्दिर बनने का उल्लेख है तथा दिगम्बर मुनि श्री कनकचन्द्र जी के विषय में निम्न प्रकार वर्णन है:-[491]

"स्वस्तियम-नियम-स्वाध्याय-ध्यान-मौनानुश्टान-समाधिशील-गुण संपन्नरप्प कनकचन्द्र सिद्धान्त देव ।"

इससे उस समय के दिगम्बर मुनियों की चरित्रनिष्ठा का पता चलता है।

ग्वालियर और दूबकुंड के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि

ग्वालियर का पुरातत्व ईस्वी ग्यारहवीं से सोलहवीं शताब्दी तक वहा पर दिगम्बर मुनियों के अभ्युदय को प्रगट करता है। ग्वालियर किले में इस काल की बनी हुई अनेक दिगम्बर मूर्तिया है, जो बाबर के विध्वसक हाथ से बच गई हैं। उन पर कई लेख भी हैं, जिनमें दिगम्बर गुरुओं का वर्णन मिलता है।[492] ग्वालियर के दूबकुण्ड नामक स्थान से मिला हुआ एक शिलालेख सन् 1088 में दिगम्बर मुनियों के सघ का परिचायक है। यह लेख महाराज विक्रमसिंह कछवाहा का लिखाया हुआ है , जिसने श्रावक ऋषि को श्रेष्टीपद प्रदान किया था और जो अपने भुजविक्रम के लिये प्रसिद्ध था। इस राजा ने दूबकुण्ड के जैन मन्दिर के लिये दान दिया था और दिगम्बर मुनियों का सम्मान किया था। ये दिगम्बर मुनिगण श्री लाटबागटकण के थे और इनके नाम क्रमश (1) देवसेन (2) कुलभूषण (3) श्री दुर्लभसेन (4) शातिसेन और (5) विजयकीर्ति थे। इनके श्री देवसेनाचार्य ग्रथरचना के लिये प्रसिद्ध थे और श्रीशातिसेन अपनी वादकला से विपक्षियों का मद चूर्ण करते थे।[493]

खजुराहो के लेखों में दि. मुनि"

खजराहा के जैन मन्दिर में एक लेख सबत् 1011 का है । उस से दिगम्बर मुनि श्री वासवचन्द्र (महाराज गुरु श्री वासवचन्द्र) का पता चलता है। वह धागराना द्वारा मान्य सरदार पाहिल के गुरु थे।[494]

---

491 दिजैडा , पृ ६४१

492 मप्राजैस्मा , ६५-६६

493 मप्राजैस्मा , पृ ६३-८४ - "श्रीलाटवागटगणोन्नतरोहणादि माणिक्यभूतचरितोगुरु देवसेन। सिद्धान्तोद्विविधोप्यवाधितधिया येनप्रमाण ध्वनि। ग्रंथेषु प्रभव. श्रियामवगतो हस्तस्थ मुक्तोपम । ----- आस्थानाधिपतौ गुधादविगुणे श्रीभोजदेवे नृपे सभ्येष्वंवरसेन पण्डित शिरोरत्नादिषूण्न्यमदान। योनेकान्शतसो अजेष्ट पटुताभीष्टोद्यमो वादिम.। शास्त्राभोनिधि पाणगो भवदन्त श्री शान्तिसेनो गुरु ।"

494 मप्राजैस्मा , पृ ११६

झालरापाटन में दि. मुनियों की निषिधिकायें

झालरापाटन शहर के निकट एक पहाड़ी पर दिगम्बर मुनियों के कई समाधिस्थल हैं। उन पर के लेखों से प्रगट है कि सं. 1066 में श्री नेमिदेवाचार्य और श्री बलदेवाचार्य ने समाधिमरण किया था।[495]

अलवरराज्य के लेखों में दि. मुनि

अलवर राज्य के नौगमा ग्राम में स्थित दि. जैन मन्दिर श्री अनन्तनाथ जी की एक कायोत्सर्ग मूर्ति है जिसके आसन पर लिखा है कि सं. 1175 में आचार्य विजय कीर्ति के शिष्य नरेन्द्र कीर्ति ने उसकी प्रतिष्ठा की थी।[496]

देवगढ़ (झांसी) के पुरातत्व में दि. मुनि-

देवगढ़ (झांसी) का पुरातत्व वहां तेरहवीं शताब्दि तक दिगम्बर मुनियों के उत्कर्ष का द्योतक है। नग्न मूर्तियों से सारा पहाड़ ओत-प्रोत है। उन पर के लेखों से प्रगट है कि 11वीं शताब्दि में वहां एक शुभदेवनाथ नामक प्रसिद्ध मुनि थे। सं. 1209 के लेख में दिगम्बर गुरुओं की भक्त आर्यिका धर्मश्री का उल्लेख है। सं. 1224 का शिलालेख पण्डित मुनि का वर्णन करता है। सं. 1207 में वहां आचार्य जयकीर्ति प्रसिद्ध थे। उनके शिष्यों में भावनन्दि मुनि तथा कई आर्यिकायें थीं। धर्म नन्दि, कमलदेवाचार्य, नागसेनाचार्य, व्याख्याता माघनन्दि, लोकनन्दि और गुणनन्दि नामक दिगम्बर मुनियों का भी उल्लेख मिलता है। नं. 222 की मूर्ति मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका, इस प्रकार चतुर्विधिसंघ के लिये बनी थी।[497]

गर्ज यह कि देवगढ़ में लगातार कई शताब्दियों तक दिगम्बर मुनियों का दौरदौरा रहा था।

बिजोलिया (मेवाड़) में दिग. साधुओं की मूर्तियां-

बिजोलिया (पार्श्वनाथ-मेवाड़) का पुरातत्व भी वहां पर दिगम्बर मुनियों के उत्कर्ष को प्रगट करता है। वहां पर कई एक दिगम्बर मुनियों की नग्न प्रतिमायें बनी हुई हैं। एक

---

495 Ibid., p. 191

496 Ibid., p. 195

497 देजै., पृ. १३-२४

मानस्तम्भ पर तीर्थंकरों की मूर्तियों के साथ दिगम्बर मुनिगण के प्रतिबिम्ब व चरणचिन्ह अंकित हैं। दो मुनि राज शास्त्रस्वाध्याय करते प्रगट किये हैं। उनके पास कमंडल पीछी रक्खे हुये हैं। वे अजमेर के चौहान राजाओं द्वारा मान्य थे।[498] शिलालेख से प्रगट है कि वहां पर भी मूलसंघ के दिगम्बराचार्य श्री बसन्त कीर्ति देव, विशालकीर्तिदेव, मदनकीर्ति देव, धर्मचन्द्रदेव, रत्नकीर्तिदेव, प्रभाचन्द्रदेव, पद्मनन्दिदेव और शुभचन्द्र देव विद्यमान थे।[499] इनको चौहान राजा पृथ्वी राज और सोमेश्वर ने जैन मन्दिर के लिये ग्राम भेंट किये थे।[500] साराशत बीजोल्या में एक समय दिगम्बर मुनि प्रभावशाली हो गये थे।

अंजनेरी की गुफाओं में दि. मुनि

अंजनेरी और अंकई (नासिक जिला) की जैन गुफायें वहां पर 12 वीं-13 वीं शताब्दि दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व को प्रकट करती हैं। पांडुलेना गुफाओं का पुरातत्व भी इसी बात का समर्थक है।[501]

बेलगाम के पुरातत्व में राजमान्य दि. मुनि

बेलगाम का पुरातत्व वहा पर 12वीं -13वी शताब्दियों में दिगम्बर मुनियों के महत्व को प्रगट करते हैं, जो राज मान्य थे। यहां के राट्टराजाओं ने जैनमुनियों का सम्मान किया था यह उनके लेखों से प्रगट है। सन् 1205 के लेख में वर्णन है कि बेलगाम में जब राट्टराजा कीर्तिवर्म्मा और मल्लिकार्जुन राज्य कर रहे थे तब श्री शुभचन्द्र भट्टारक की सेवा में राजा बीचा के बनाए गए राट्टों के जैन मन्दिर के लिये भूमिदान किया गया था। एक दूसरा लेख भी इन्हीं राजाओं द्वारा शुभचन्द्र जी को अन्यभूमि अर्पण किये जाने का उल्लेख करता है। इसमें कातवीर्य की रानी का नाम पद्मावती लिखा है।[502] सचमुच उस समय वहा पर दिगम्बर मुनियो का काफी प्रभुत्व था।

बेलगामान्तर्गत कोन्नूर स्थान से भी राट्टराजा का एक शिलालेख शाका 1009 का मिला है जिसका भाव है कि "चालुक्यराजा जयकर्ण के अधीन रट्टराज मण्डलेश्वर सेन कोन्नूर आदि प्रदेशों पर राज्य करता था, तब बलात्कारगण के वंशधरों को इन नगरों का अधिपति उसने बना दिया था। यहा के जैन मन्दिरों को चालुक्य राजा कोन्न व जयकर्ण द्वारा दान दिये जाने का उल्लेख मिलता है।[503] इनसे दिगम्बर मुनियों का महत्व स्पष्ट है।

---

498 दिजैडा, पृ ५०१
499 मप्राजैस्मा, पृ १३३
500 राई, पृ ३६३
501 बंप्राजैस्मा, पृ ५६-५८
502 बंप्राजैस्मा, पृ ६४-६५
503 Ibid pp 80-81

बेलगाम जिले के कलहोले ग्राम में एक प्राचीन जैनमंदिर है, जिसमें एक शिलालेख राट्टराजा कीर्तवीर्य चतुर्थ और मल्लिकार्जुन का लिखाया हुआ मौजूद है। उस में श्री शांतिनाथ जी के मन्दिर को भूमिदान देने का उल्लेख है। उसमें श्रीशांतिनाथ जी के मन्दिर को भूमिदान देने का उल्लेख है। मंदिर के गुरु श्री मूलसंघ कुन्दकुन्दाचार्य की शाखा हणसोगी वंश के थे। इस वंश के तीन गुरु मलधारी थे, जिनके एक शिष्य सैद्धांतिक नेमिचन्द्र थे। श्रीनेमिचन्द्र के शिष्य शुभचन्द्र थे, जिन्होंने दिगम्बर धर्म की बहुत उन्नति की थी। उनके शिष्य श्री ललितकीर्ति थे।[504]

बेलगाम जिले में स्थित रायबाग ग्राम में भी एक जैन शिलालेख राट्टराजा कीर्तवीर्य का है। उससे विदित है कि कीर्तवीर्य ने भ. शुभचन्द्र को शाका 1124 में राटों के उन जैन मंदिरों के लेये दान दिया था जिन्हें उसकी माता चन्द्रिकादेवी ने स्थापित किया था।[505] इससे चन्द्रकादेवी का दि. मुनियों और तीर्थंकरों का भक्त होना प्रगट है।

बीजापुर किले की मूर्तियों दि. मुनियों की द्योतक

बीजापुर के किले की दिगम्बर मूर्तिया सं. 1001 में श्री विवजसूरी द्वारा प्रतिष्ठित है।[506] उनसे प्रकट है कि बीजापुर में उस समय दिगम्बर मुनियों की प्रधानता थी।

तेवरी की दि मूर्ति

तेवरी (जबलपुर) के तालाब में स्थित दि जैन मदिर की मूर्ति पर बारहवीं शताब्दि का लेख है कि "मानादित्य की स्त्री रोज नमन करती है"।[507]

इससे वहा पर जैनमुनियों का राजमान्य होना प्रगट है।

दिल्ली के मूर्ति लेखों में दि. मुनि

दिल्ली नयामंदिर कटघर की मूर्तियों पर एक लेख 15 वीं शताब्दि में वहा दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व प्रगट करते हैं। श्री आदिनाथ की मूर्ति पर लेख है कि "स 1428 ज्येष्ठ सुदि 12 सोमवार से काष्ठासघे माथुरान्वये भ श्रीदेवसेनदेवासतत्पदे श्रीयशविधधारित्रेनालकृता सकल विमल मुनिमंडली शिष्य शिखामणय प्रतिष्ठाचार्य वर्य श्री विमल सेनदेवास्तेषामुकपदेशेन जाइसवालान्वये सा पुरइपति। इत्यादि।"

---

504 Ibid pp 82-83

505 Ibid p 87

506 Ibid p 108

507 दिजैडा, पृ २८७

इन्हीं मुनि विमलसेन की शिष्य आर्जिका मुख्य श्री विमलश्री थी, यह बात उसी मंदिर की एक अन्य मूर्ति पर के लेख से प्रकट है।

लखनऊ के मूर्ति-लेख में निग्रन्थाचार्य

लखनऊ चौक के जैन मंदिर में विराजमान श्री आदिनाथ की मूर्ति पर के लेख से विदित है कि सं. 1503 में श्री भ. सकलकीर्ति के शिष्य श्री निग्रन्थाचार्य विमलकीर्ति थे, जिनका उपदेश और विहार चहुंओर होता था।

चावलपट्टी (बंगाल) के जैन मंदिर में विराजमान दशधर्म यंत्रलेख से प्रकट है कि सं. 1586 में आचार्य श्री रत्नकीर्ति के शिष्य मुनि ललितकीर्ति विद्यमान थे, जिनकी भक्ति भ्रमरी बाई करती थीं।[508]

कलकत्ता की मूर्तियाँ और दि. मुनि

वहीं के एक अन्य सम्यक्ज्ञान यंत्र के लेख से विदित होता है कि सं. 1634 में विहार में भ. धर्मचन्द्र जी के शिष्यमुनि श्री बाहुनन्दी का विहार और धर्मप्रचार होता था।[509]

एटा, इटावा और मैनपुरी के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि

कुरावली (मैनपुरी) के जैनमंदिर में विराजमान सम्यक्दर्शन यंत्र पर के लेख से प्रगट है कि स 1578 में मुनि विशालकीर्ति विद्यमान् थे। उनका विहार सयुक्त प्रान्त में होता था।[510] अलीगंज (एटा) के लेखों से मुनि माघनंदि और मुनि धर्मचन्द्र जी का पता चलता है।[511] इटावा नशियां जी पर कतिपय जैन स्तूप हैं और उन पर के लेख से यहां अठारवीं शताब्दि में मुनि विनयसागरजी का होना प्रमाणित है।[512]

उधर पटना के श्री हरकचद वाले जैन मदिर में स 1964 की बनी हुई एक दिगम्बर मुनि की काष्टमूर्ति विद्यमान है।[513]

---

508 जैप्रयलेसं पृ २४

509 जैप्रयलेसं , पृ २६

510 प्राजैलेसं, पृ

511 Ibid., p 70

512. Ibid , pp 90-91 .

513 Mr Ajitaprasada, Advocate, Lueknow reports "Patna Jain temple renovated in 1964 V.S by daughter-in-law of Harakchand On the entrance door is the life-size image in wood of a muni with a Kamandal in the right hand & the broken end of what must have been a pichi in the left."

सारांशत उत्तरभारत और महाराष्ट्र में प्राचीनकाल से बराबर दिगम्बर मुनि होते आये हैं, यह बात उक्त पुरातत्त्व विषयक साक्षी से प्रमाणित है। अब यह आवश्यक नहीं है कि और भी अनगिनत से शिलालेख आदि का उल्लेख करके इस व्याख्या को पुष्ट किया जाय। यदि सबही जैन शिलालेख यहां लिखे जायें तो इस ग्रंथ का आकार-प्रकार तिगना-चौगुना बढ़ जाय, जो पाठकों के लिये अरुचिकर होगा।

दक्षिण भारत का पुरात्व और दि. मुनि

अच्छा तो अब दक्षिण भारत के शिलालेखादि पुरातत्त्व पर एक नजर डाल लीजिये। दक्षिण भारत की पाण्डवमलय आदि गुफाओं का पुरातत्त्व एक अति प्राचीनकाल में वहां पर दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व प्रमाणित करता है। अनुमनामलें (ट्राइवनकोर) की गुफाओं में दिगंबर मुनियों का एक प्राचीन आश्रम था। वहा पर दीर्घकाय दिगम्बर मूर्तियाँ अंकित हैं। दक्षिण देश के शिलालेखों में मदुरा और रामनद जिलों से प्राप्त प्रसिद्ध ब्राह्मीलिपि के शिलालेख अति प्राचीन है। यह अशोक की लिपि में लिखे हुये हैं। इसलिये इनको ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दि का समझना चाहिये। यह जैन मदिरों के पास बिखरे हुये मिले है और इनके निकट ही तीर्थंकरों की नग्न मूर्तिया भी थी। अत इनका सबध जैन धर्म से होना बहुत कुछ संभव है। इनसे स्पष्ट है कि ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दि से ही जैन मुनि दक्षिण भारत में प्रचार करने लगे थे।[514] इन शिलालेखों के अतिरिक्त दक्षिण भारत में दिगम्बर मुनियों से सम्बन्ध रखने वाले सैकड़ों शिलालेखों हैम्। उन सबकों यहा उपस्थित करना असम्भव है। हा, उनमें से कुछ एक का परिचय हम यहा पर अंकित करना उचित समझते हैं। अकेले श्रवणवेलगोल में ही इतने अधिक शिलालेख हैं कि उनका सम्पादन एक बड़ी पुस्तक में किया गया है। अस्तु

श्रवणवेलगोल के शिलालेखों में प्रसिद्ध दिगम्बर साधुगण

पहले श्रवण वेलगोल के शिलालेखों से ही दिगम्बर मुनियों का महत्व प्रमाणित करना श्रेष्ठ है। शक स 522 के शिलालेख से वहां पर श्रुतकेवली भद्रवाहु और मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त का परिचय मिलता है। इन दोनों महानुभावों ने दिगम्बर वेष में श्रवणवेलगोल को पवित्र किया था।[515] शक स 622 के लेख में मौनिगुरु की शिष्या नागमति को तीन मास का व्रत धारण करके समाधिमरण करते लिखा है। इसी समय के एक अन्य लेख में

514. SSIJ , pt I pp 33-35
515 जैशिस . पृ १-२

चरित्रश्री नामक मुनि का उल्लेख है।[516] धर्मसेन, बलदेव, पट्टिनिगुरु, उग्रसेन गुरु गुणसेन, पेरुमालु , उल्लिकल, तीर्थद, कुलापक आदि दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व भी इसी समय प्रमाणित है।[517] शक सं 896 के लेख से प्रगट है कि गंग राजा मारसिंह ने अनेक लड़ाइयां लड़कर अपना भुजविक्रम प्रगट किया था और अंत में अजितसेनाचार्य के निकट बंकापुर में समाधिमरण किया था।[518]

तार्किक चक्रवर्ती श्री देवकीर्ति

शक सम्वत् 1085 के लेख से तार्किक चक्रवर्ती श्री देवकीर्ति मुनि का तथा उनके शिष्य लक्खनन्दि, माधवेन्दु और त्रिभुवनमल्ल का पता चलता है। उनके विषय में कहा है –

"कुर्व्वंनम कपिल-वादि वनोप्रकम्पये
चार्व्वाकवादि मकराकर बाडवाग्नये।
बौद्धोग्रवादितिमिरप्रविभेदभानवे
श्रीदेवकीर्तिमुनये कविवादिवाग्मिने।।"

x x x

"चतुर्म्मुख चतुर्व्वक्त्र निर्गमागमदुस्सहा।
देवकीर्तिमुखाम्भोजे नृत्यतीति सरस्वती।।"

सचमुच मुनि देवकीर्तिजी अपने समय के अद्वितीय कवि, तार्किक और वक्ता थे। वे महामण्डलाचार्य और विद्वान और उनके समक्ष सांख्यिक, चार्वाक, नैयायिक, वेदान्ती, बौद्ध आदि सभी दार्शनिक हार मानते थे।[519]

महाकविमुनि श्री श्रुतकीर्ति

उक्त समय के एक अन्य शिलालेख में मुनि देवकीर्ति की गुरुपरम्परा दी है, जिससे स्पष्ट है कि मुनि कनकनन्दि और देवचन्द्र के भ्राता श्रुतकीर्ति त्रै विद्य मुनि ने देवेन्द्र सदृश विपक्षवादियों को पराजित किया था और एक चमत्कारी काव्य राघव पाण्डवीय की रचना की थी, जो आदि से अन्त को व अन्त से आदि को, दोनों ओर पढ़ा जा सके। इससे प्रकट है कि उपरोक्त मुनि देवकीर्ति के शिष्य यादव-नरेश नारसिंह प्रथम के प्रसिद्ध सेनापति और मंत्री हुल्लप थे।[520]

---

516 Ibid p 3
517 Ibid pp 4-18
518 Ibid p 20
519 जैशिसं., पृ २३-२४
520 Ibid pp 24-30

श्री शुभचन्द्र और रानी जवक्कणब्बे

शक सं. 1099 के लेख में मत्री नामदेव के गुरु श्री नयकीर्ति योगीन्द्र व उनकी गुरुपरम्परा का उल्लेख है।[521] शक स 1045 के लेख से प्रगट है कि होयसाल महाराज गंगनरेश विष्णुवर्द्धन ने अपने गुरु शुभचन्द्र देव की निषद्या निर्माण कराई थी। इनकी भावज जवक्कणब्बे की जैन धर्म मे दृढ श्रद्धा थी और वह दिगम्बर मुनियो का दानादि देकर सत्कार किया करती थीं।[522] उनके विषय में निम्नप्रकार उल्लेख है -

"दोरेये जवकणिकब्बेगी भुवनदोल् चारित्रदोल् शीलदोल्
पर श्रीजिनपूजेयोल् सकलदानाश्चर्यदोल् सत्यदोल्।
गुरुपादाम्बुजभक्तियोल् विनयदोल् भव्यर्कलकन्ददा-
दरिदं मन्निसुतिर्प्प पेम्पिनेडेयोल् मत्तन्यकान्ताजनम्।।"

श्री गोल्लाचार्य प्रभृत अन्य दिगंबराचार्य

शक सं 1037 के लेख मे है कि मुनि त्रैकाल्ययोगी के तप के प्रभाव से एक ब्रह्म राक्षस उनका शिष्य हो गया था। उनके स्मरण मात्र से बड़े-बड़े भूत भागते थे, उनके प्रताप से करंज का तैल घृत में परिवर्तित हो गया था। गोल्लाचार्य मुनि होने के पहले गोल्लदेश के नरेश थे। नूत्न चन्दिल नरेश के वंश चूड़ामणि थे। सकलचन्द्रमुनि के शिष्य मेघचन्द्र त्रैविद्य थे, जो सिद्धान्त में वीरसेन, तर्क में अकलक और व्याकरण में पूजवपाद के समान विद्वन् थे।[523] शक स. 1044 के लेख में दण्डनायक गगराज की धर्मपत्नी लक्ष्मीमति के गुण, शील और दान की प्रशसा है। वह दिगम्बराचार्य श्री शुभचन्द्र जी की शिष्या थी। इन्हीं आचार्य की एक अन्य धर्मात्मा शिष्या राज सम्मानित चामुण्ड की स्त्री देवमति थी।[524] शक स 1068 के लेख में अन्य दिगम्बर मुनियो के साथ श्री शुभकीर्ति आचार्य का उल्लेख है, जिनके सम्मुख बाद में बौद्ध, मीमासकादि कोई भी नही ठहर सकता था। इसी में श्री प्रभाचन्द्र जी की शिष्या विष्णुवर्द्धन नरेश की पटरानी शान्तलदेवी की धर्म परायणता भी उल्लेख है।[525]

शक स. 1050 के लेख में श्री महावीर स्वामी के बाद दि मुनियों की शिष्यपरपरा का बखान है जिनमें श्रुतकेवली भद्रबाहु और सम्राट चन्द्रप्तमौर्य्य का भी उल्लेख है। कुन्दकुन्दाचार्य के चारित्र गुणादि का परिचय भी एक श्लोक द्वारा कराया गया है।

---

521 Ibid pp 33-42
522 Ibid pp 43-49
523 Ibid pp 56-66
524 Ibid pp 67-70
525 Ibid pp 90-81

श्री कुन्दकुन्द और समन्तभद्र आचार्य

इन आचार्य को एक अन्य शिलालेख में मूलसंघ का अग्रणी लिखा है। उन्होंने चारित्र की श्रेष्ठता से चारणऋद्धि प्राप्त की थी, जिसके बल से वह पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर चलते थे।[526] श्री समन्तभद्राचार्य जी के विषय में कहा गया है।

पूर्व पाटलिपुत्र-मध्य नगरे भेरी मया ताड़िता
पश्चान्मालव-सिन्धु ठक्क विषये कांचीपुरे वैदिशे।
प्राप्तोऽहंकरहाटकं बहु भटं विद्योत्कटं संकटं
वादार्थी विचराम्यहम्नरपते शार्दूलविक्रीडितम्।। 7।।
अवटु-तटमटतिझटिति स्फुट पटुवाचाट धूर्जटेरपिजह्वा।
वादिनि समन्तभद्रे स्थितवतितवसदसि भूपकास्थान्येषां।। 8।।"

भाव यही है कि श्री समन्तभद्रस्वामी ने पहले पाटलिपुत्र नगर में वादभेरी बजाई थी। उपरान्त वह मालव, सिंधु, पंजाब काचीपुर, विदिशा आदि में वाद करते हुये करहाटक नगर (कराड) पहुंचे थे और वहां की राजसभा में वाद गर्जना की थी। कहते हैं कि वादी समन्तभद्र की उपस्थिति में चतुराई के साथ स्पष्ट, शीघ्र और बहुत बोलेने वाले धूर्जटिकी जिह्वा ही जब शीघ्र अपने बिल में घुस जाती है उसे कुछ बोल नहीं आता- तो फिर दूसरे विद्वानों की तो कथा ही क्या है ? उनका अस्तित्व तो समन्तभद्र के सामने कुछ भी महत्व नहीं रखता। सचमुच समन्तभद्राचार्य जैनधर्म के अनुपम रत्न थे। उनका वर्णन अनेक शिलालेखों में गौरवरुप से किया गया है। तिरुमकूडलु तरसीपुर तालुके के शिलालेख न 105 निम्न पद्य में उनके विषय में ठीक ही कहा गया है कि -

समन्तभद्रस्संस्तुत्य कस्य न स्वान्मुनीश्वर'।
वाराणसीश्वरस्याग्रेनिर्जिता येन विद्विष'।।

अर्थात् -"वे समन्तभद्र मुनीश्वर जिन्होंने वाराणसी(बनारस) के राजा के सामने शत्रुओं को मिथ्यैकान्तवादियों को परास्त किया है, किसके स्तुतिपात्र नहीं है? वे सभी के द्वारा स्तुति किये जाने के योग्य है।"

शिवकोटी नामक राजा ने श्री समन्तभद्रजी के उपदेश से ही जैनेन्द्रीय दीक्षा ग्रहण की थी।

---

526 Ibid Intro 140

श्री वक्रग्रीव आदि दिगम्बराचार्य

दिगम्बराचार्य श्री वक्रग्रीव के विषय में उपरोक्त श्रवणबेल गोलीय शिला लेख बताता है कि वे छः मास तक अथ शब्द का अर्थ करने वाले थे। श्री पात्रकेसरी गुरु त्रिलक्षण सिद्धान्त के खण्डनकर्ता थे। श्रीवर्द्धदेव चूड़ामणि काव्य के कर्ता कवि दण्डी द्वारा स्तुत्य थे। स्वामी महेश्वर ब्रह्मराक्षसों द्वारा पूजित थे। अकलंक स्वामी बौद्धों के विजेता थे। उन्होंने साहस तुंग नरेश के सन्मुख, हिमशीतल नरेश की सभा में उन्हें परास्त किया था। विमलचन्द्र मुनि ने शैव पाशुपतादिवादियों के लिये शत्रुभयंकर के भवनद्वार पर नोटिस लगा दिया था। पर वादिमल्ल ने कृष्ण राज के समक्ष वाद किया था। मुनि वादिराज ने चालुक्य चक्रेश्वर जयसिंह के कटक में कीर्ति प्राप्त की थी। आचार्य शान्तिदेव होयशाल नरेश विनयादित्य द्वारा पूज्य थे। चतुर्मुख देव मुनिराज ने पाण्डय नरेश से 'स्वामी' की उपाधि प्राप्त की थी और आहवमल्लनरेश ने उन्हें चतुर्मुख देव रुपी सम्मानित नाम दिया था। गर्ज यह कि यह शिला लेख दिग. मुनियों के गौरव गाथा से समन्वित है।[527]

दिगम्बराचार्य श्री गोपनन्दि

शक सं. 1022 (न. 55) के शिला लेख से जाना जाता है कि मूल संघ देशीयगण आचार्य गोपनन्दि बहु प्रसिद्ध हुऐ थे। 'वह बडे भारी कवि और तर्क प्रवीण थे। उन्होंने जैन धर्म की वैसी ही उन्नति की थी जैसी गगनरेशों के समय में हुई थी। उन्होंने धूर्जटिकी जिह्वा को भी स्थगित कर दिया था।' देशदेशान्तर में विहार करके उन्होंने साख्य, बौद्ध, चार्वाक, जैमिनि, लोकायत आदि विपक्षी मतों को हीनप्रभ बना दिया था। वह परमतप के निधान, प्राणीमात्र के हितैशी और जैन शासन के सकल कलापूर्ण चन्द्रमा थे।[528] होयसल्लनरेश एरेयग उनके शिष्य थे, जिन्होंने कई ग्राम उन्हें भेट किये थे।[529]

धारानरेश पूजित प्रभाचन्द्र

इसी शिला लेख में मुनि प्रभाचन्द्र जी के विषय में लिखा है कि वे एक सफल वादी थे और धारानरेश भौज ने अपना शीश उनके पवित्र चरणों में रक्खा था।[530]

---

527 जैशिस , पृ १०१-११४

528 जैशिसं , पृ ११७ "परमतपो निधान, वसुधैककुटुम्बजैनशानाम्बर-परिपूर्णचन्द-सकलागम - तत्व-पदार्थ-शास्त्र-विस्तर-वचनाभिगम गुण-रत्न-विभूषण गोपणन्दि ।"

529 जैशिस , पृ ३८५

530 जैशिसं , पृ ११८

श्री दामनन्दि

श्री दामनन्दि मुनि को भी इस शिला लेखों में एक महावादी प्रगट किया गया है, जिन्होंने बौद्ध, नैयायिक और वैष्णवों को शास्त्रार्थ में परास्त किया था। महावादी 'विष्णु भट्ट' को परास्त करने के कारण वे 'महावादी विष्णुभट् घरट्' कहे गये हैं।[531]

श्रीजिनचन्द्र

श्री जिनचन्द्र मुनि को यह शिलालेख व्याकरण में पूज्यपाद, तर्क में भट्टाकलंक और साहित्य में भारवि बतलाता है।[532]

चालुक्यनरेश पूजित श्री वासवचन्द्र

श्री वासवचन्द्र मुनि ने चालुक्य नरेश के कटक में 'बाल-सरस्वती' की उपाधि प्राप्त की थी, यह भी इस शिलालेख से प्रगट है। स्याद्वाद और तर्क शास्त्र में प्रवीण थे।[533]

सिंहलनरेश द्वारा सम्मानित यश: कीर्ति मुनि--

श्री यश कीर्ति मुनि को उक्त शिलालेख सार्थक नाम बताता है। वे विशाल कीर्ति को लिये हुये स्याद्वद सूर्य ही थे। बौद्धादि वादियो को उन्होंने परास्त किया था। तथा सिंहल-नरेश के उनके पूज्यपादों का पूजन किया था।[534]

श्री कल्याण कीर्ति

श्री कल्याण कीर्ति मुनि को उक्त शिलालेख जीवों के लिये कल्याण कारक प्रगट करता है। वह शाकनी आदि वाधाओं को दूर करने में प्रवीण थे।[535]

---

531 "बौद्धोर्व्वीधर-शम्ब नयायिक-कुज्ज-कुज्ज-विधु-बिम्ब ।
श्री दामनन्दिविबुध क्षुद्र-पहावादि-विष्णुभट्ट-घरट्ट।। १६।।" - जैशिस, पृ ११८

532 जैनेन्द्र पूज्य (पाद) सकलसमयतक च भट्टाकलक ।
साहित्ये भारविस्स्यात्कवि गमक-महावाद-वाग्मित्व-रुन्द ।
गीते वाद्ये च नृत्ये दिशि विदिशि च सवर्ति सत्कीर्ति मूर्ति ।
स्थेयाश्श्रीयोगिवृन्दार्तितपद जिनचन्द्रो वितन्द्रोमुर्नान्द्र ।।

533 जैशिस, पृ ११६- "चालुक्य-कटक-मध्ये वाल-सरस्वतीरिति प्रसिद्धि प्राप्त ।"

534 "श्रीमान्यश कीर्ति-विशालकीर्ति स्स्याद्वाद तर्काब्ज विबोधनार्क्क ।
बौद्धादि वादी द्विप कुम्भ भेदी श्री सिंहलाधीश कृतार्घ्य पाद्य । २६ ।

535 कल्याणकीर्नि नामाभूद्भव्य कलयाण कारक
शाकिन्यादि ग्रहणाच निघाटन दुर्हर ।। - जैशिस, पृ १२१

श्री त्रिमुष्टि मुनीन्द्र बड़े सैद्धान्तिक बताये गये हैं। वे तीन मुट्ठी अन्न का ही आहार करते थे। सारांश यह कि उक्त शिलालेख दिगम्बर मुनियों की गौरव गाथा को जानने के लिये एक अच्छा साधन है।[536]

वादीन्द्र अभयदेव

शक सं. 1320 (नं. 105) के शिलालेख में भी अनेक दिगम्बराचार्यों की कीर्ति गाथा का बखान है। वादीन्द्र अभयदेवसूरि ने बौद्धादि परवादियों को प्रतिभाहीन बना दिया था। यही बात आचार्य चारुकीर्ति के विषय में कहीं गई है।[537]

होयसाल वंश के राज गुरु दि. मुनि

शक सं. 1205 (नं. 129) में होयसाल वंश के राजगुरु महामण्डलाचार्य माघनंदि का उल्लेख है, जिनके शिष्य बेल्गोल के जौहरी थे।[538]

योगी दिवाकरनन्दि

नं. 139 के शिलालेख में योगी दिवाकरनन्दि तथा उनके शिष्यों का वर्णन है। एक गन्ती नामक भद्रमहिला ने उनसे दीक्षा लेकर समाधिमरण किया था।[539]

एक सौ आठ वर्ष तप करने वाले दि. मुनि

नं. 159 शिलालेख प्रगट करता है कि कालन्तूर के एक मुनीराज ने कटवप्र पर्वत पर एक सौ आठ वर्ष तक तप करके समाधिमरण किया था।[540]

गर्ज यह है कि श्रवणबेलगोल के प्राय सब ही शिलालेख दिगम्बर मुनियों की कीर्ति और यश को प्रगट करते हैं और राजा और रक सब ही का उन्होंने उपकार किया था। रणक्षेत्र में पहुंच कर उन्होंने वीरों को सन्मार्ग सुझाया था। राजा रानी, स्त्री-पुरुष, सब ही उनके भक्त थे।

---

536. "मुष्टि त्रय प्रमिताशन तुष्ट शिष्ट प्रिय स्त्रिमुष्टिमुनीन्द्र।"
537 जैशिसं, पृ. १९८-२०७
538. Ibid., p 253
539. Ibid., p 289
540. Ibid, p 308

दक्षिण भारत के अन्य शिला लेखों में दिग. मुनि

श्रवणबेलगोल के अतिरिक्त दक्षिण भारत के अन्य स्थानों से भी अनेक शिलालेख मिले हैं, जिनसे दिगम्बर मुनियों का गौरव प्रकट होता है। उनमें से कुछ का संग्रह प्रो. शेषगिरिराव ने प्रगट किया है, जिससे विदित होता है कि दिगम्बर मुनि इन शिलालेखों में यम-नियम-स्वाध्याय-ध्यान धारण मौनानुष्ठान-जप-समाधि -शीलगुण-सम्पन्न लिखे गये हैं।[541] उनका यह विशेषण उन्हें एक सिद्ध योगी प्रगट करता है। प्रो सा उनके विषय में लिखते हैं कि.-

"From these epigraphs we learn some details about the great ascetics and acharyas who spread the gospel of Jainism in the Andhra-karnatadesa They were not only the leaders of lay and ascetic disciples, but of royal dynasties of warrior clans that held the destinies of the peoples of these lands in their hands "[542]

भावार्थ - "उक्त शिलालेख सग्रह से उन महान् दिगम्बर मुनियों और आचार्यों का परिचय मिलता है, जिन्होंने आँध्रकर्णाट देश में जैन धर्म का सदेश विस्तृत किया था। वे मात्र श्रावक और साधु शिष्यों के ही नेता नहीं थे, बल्कि उन क्षत्रिय कुलों के राजवशों के नेता थे कि जिनके हाथों में उन देशों की प्रजा के भाग्य की बागडोर थी।"

दिगम्बराचार्यों का महत्वपूर्ण कार्य

सचमुच दिगम्बर मुनियों ने बडे बडे राज्यों की स्थापना और उनके सचालन में गहरा भाग लिया था। पुलल (मद्रास) के पुरातत्व से प्रगट है कि एक दिगम्बराचार्य ने असभ्य कुटुम्बों को जैन धर्म में दीक्षित करके सभ्य शासक बना दिया था। वे जैन धर्म के महान् रक्षक थे और उन्होंने धर्म लगन से प्रेरित हो कर बडी-बडी लड़ाइया लड़ी थीं।[543] उनने ही क्या, बल्कि दिगम्बराचार्यों के अनेक राजवशी शिष्यों ने धर्म संग्राम में अपना भुज-विक्रम प्रगट किया था। जैन शिलालेख उनकी रणगाथाओं से ओतप्रोत हैं। उदाहरणत गग सेनापति क्षत्रचूडामणि श्री चामुण्डराय को ही ले लीजिए, वह जैन धर्म के दृढ श्रद्धानी ही नहीं बल्कि उसके तत्व के ज्ञाता थे। उन्होंने जैन धर्म पर कई श्रेष्ठ ग्रन्थ लिखे हैं और वह श्रावक के धर्माचार का भी पालन करते थे, किन्तु उस पर भी उन्होंने एक नहीं अनेक

---

541 SSIJ, pt II p 6

542 Ibid., p 68

543 OJI, p 236

सफल संग्रामों में अपनी तलवार का जौहर जाहिर किया था।[544] सचमुच जैन धर्म मनुष्य को पूर्ण स्वाधीनता का सन्देश सुनाता है। जैनाचार्य नि:शंक और स्वाधीन होकर वही धर्मोपदेश जनता को देते हैं जो जनकल्याणकारी हो। इसीलिये वह वसुधैवकुटुम्बक कहे गये है। भीरुता और अन्याय तो जैनमुनियों के निकट फटक भी नहीं सकता है।

प्रो. सा के उक्त संग्रह में विशेष उल्लेखनीय दिगम्बराचार्य श्री भावसेन त्रैवेद्य चक्रवर्त्ती, जो वादियों के लिये महाभयानक (Terror to disputant) थे, वह और बहराज के गुरु (Preceptor of Bava king) श्री भावनन्दि मुनि हैं।[545] अन्य श्रोत से प्रगट है कि-

उपरान्त के शिलालेखों में दि. मुनि

सन् 1478 ई में जिंजी प्रदेश में दिगम्बराचार्य श्री वीरसेन बहु प्रसिद्ध हुये थे। उन्होंने लिंगायत प्रचारकों को समक्ष वाद में विजय पाकर धर्मोद्योत किया था और लोगो को पुन जैन धर्म में दीक्षित किया था।[546] कारकल में राजा वीरपाण्डय ने दिगम्बराचार्यों को आश्रय दिया था और उनके द्वारा सन् 1432 में श्री गोम्मट-मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी, जिसे उन्होंने स्थापित कराया था। एक ऐसी ही दिगम्बर मूर्ति की स्थापना वेणूर में सन् 1604 में श्री तिम्मराज द्वारा की गई थी। उस समय भी दिगम्बराचार्यों नें धर्मोद्योत किया था। शासक विधर्मी हो गया था, उसे जैन साधु विद्यानन्दि ने पुन जैन धर्म में दीक्षित किया था।[547]

दि. मुनि श्री विद्यानंदि

इसी शिलालेख से यह भी प्रगट है कि "इन मुनिराज ने नारायणपट्टन के राजा नददेव की सभा में नदनमल्ल भट्ट को जीता, सातवेन्द्र राजा केशरीवर्मा की सभा म वाद में विजय पाकर 'वादी' पाया, सालुवदेव राजा की सभा में महान विजय पाई, बलिंग के राजा नरसिंह की सभा में जैन धर्म का महात्म्य प्रगट किया, कारकल नगर के शासक भैरव राजा की सभा में जैन धर्म का प्रभाव विस्तारा, राजा कृष्णराय की राजसभा म विजयी हुए कोपन व अन्य तीर्थों पर महान उत्सव कराय श्रवणबेलगोल क श्री गोम्मटस्वामी के चरणों के निकट आपने अमृत की वर्षा के समान योगाभ्यास का सिद्धात मुनियों को प्रगट किया, जिरसप्पा में प्रसिद्ध हुये, उनकी आज्ञानुसार श्रीवरदेव राजा ने कल्याण पूजा कराई

---

544 वीर, वर्ष ७ पृ २-११
545 SSIJ, VI pp 61-62
546 वीर, वर्ष ५ पृष्ठ २४६
547 मैथ, पृ ७० व DG

और वह सभी राजा पल्लवपुर कृष्णदेव के पूज्य थे।"[548] वह एक प्रतिभाशाली साधु थे और उनके अनेक शिष्य दिगम्बर मुनिगण थे।

सारांशतः दक्षिण भारत के पुरातत्व से वहां के दिगम्बर मुनियों का प्रभावशाली अस्तित्व एक प्राचीनकाल से बराबर सिद्ध होता है। इस प्रकार भारत भर का पुरातत्व दिगम्बर जैन मुनियों के महती उत्कर्ष का द्योतक है।

वे मुनिवर कब मिलि हैं उपकारी .....

वे मुनिवर कब मिलि हैं उपकारी ।।टेक।।
साधु दिगम्बर नगन निरम्बर, संवर भूषण धारी ।।१।।
कंचन कांच बराबर जिनकै, ज्यौं रिपु त्यौं हितकारी ।
महल मसान मरन अरु जीवन, सम गरिमा अरु गारी ।।२।।
सम्यग्ज्ञान प्रधान पवन बल, तप पावक परजारी ।
सेवत जीव सुवर्ण सदा जे, काय-कारिमा टारी ।।३।।
जोरि जुगल कर 'भूधर' विनवै, तिन पद धोक हमारी ।
भाग उदय दरसन जब पाऊँ, ता दिन की बलिहारी ।।४।।

---

548 मजैस्मा, पृ ३२०-३२१

[24]

विदेशों में दिगम्बर मुनियों का विहार

'India had pre-eminently been the cradle of culture and it was from this country that other nations had understood even the rudiments of culture, For example, they were told, the Buddhistic missionaries and jaina monks went forth to Greece and Rome and to places as far as Norway and had spread their culture ' $[549]

- Prof-M S Ramaswamy Iyengar.

जैन पुराणों के कथन से स्पष्ट है कि तीर्थंकरों और श्रमणों का विहार समस्त आर्यखंड में हुआ था। वर्तमान की जानी हुई दुनिया का समावेश आर्यखंड में हो जाता है।[550] इसलिये यह मानना ठीक है कि अमरीका, यूरोप, एशिया आदि देशों में एक समय दिगम्बर धर्म प्रचलित था और वहां दिगम्बर मुनियो का विहार होता था। आधुनिक विद्वान् भी इस बात को प्रकट करते हैं कि बौद्ध और जैन भिक्षुगण यूनान, रोम और नारवे तक धर्म प्रचार करते हुये पहुचे थे।

किन्तु जैन पुराणों के वर्णन पर विशेष ध्यान न देकर यदि ऐतिहासिक प्रमाणा पर ध्यान दिया जाय, तो भी यह प्रगट होता है कि दिगम्बर मुनि विदशों में अपने धर्म प्रचार करने को पहुचे थे। भ महावीर के विहार के विषय में कहा गया है कि व आकर्नीय, वृकार्थप, वाल्हीक, यवनश्रुति, गाधार क्वाथतोय, तार्ण और कार्णदिशो में भी धर्मप्रचार करत हुये पहुचे थे।[551] ये देश भारतवर्ष के बाहर ही प्रगट होते हैं। आकनीय सभवत आक्सीनया (Oxiana) है। यवनश्रुति यूनान अथवा पाग्ग्य का द्योतक है। वाल्हीक बल्ख (Balkh) है। गाधार कधार है। क्वाथतोय रेड-सी (Red Sea) के निकट क दश हो सकते हैं। तार्ण-कार्ण तूरान आदि प्रतीत होते हैं।[552] इस दशा में कधार, यूनान, मिश्र आदि देशों में भगवानका विहार हुआ मानना ठीक है।[553]

---

549 The "Hindu" of 25th July 1919 & JG XV27

550 भपा, १५६-१५७

551 हरिवंशपुराण, सर्ग ३ श्लो ३-७

552 वीर, वर्ष ८ अंक ७

553 संजैई, भा २ पृ १०२-१०३

सिकन्दर महान् के साथ दिगम्बर मुनि कल्याण यूनान के लिये वहां से प्रस्थानित हो गये थे और एक अन्य दिगंबराचार्य यूनान धर्म प्रचारार्थ गये थे यह पहले लिखा जा चुका है। यूनानी लेखकों के कथन से बैक्ट्रिया (Bactria)[554] और इथ्यूपिया (Ethiopia)[555] नामक देशों में श्रमणों के विहार का पता चलता है। वे श्रमणगण दि. जैन ही थे, क्योंकि बौद्ध श्रमण तो सम्राट् अशोक के उपरान्त विदेशों में पहुंचे थे।

अफ्रिका के मिश्र और अबीसिनिया देशों में भी एक समय दिगम्बर मुनियों का विहार हुआ प्रगट होता है, क्योंकि वहां की प्राचीन मान्यता में दिगम्बरत्व को विशेष आदर मिला प्रमाणित है। मिश्र में नग्न मूर्तियाँ भी बनी थीं और वहां की कुमारी सेंटमेरी (St Mary) दिगम्बर साधु के भेष में रही थी। मालूम होता है कि रावण की लंका अफ्रिका के निकट ही थी और जैन पुराणों से यह प्रगट ही है कि वहा अनेक जैन मन्दिर और दिगम्बर मुनि थे।[556]

यूनान में दिगम्बर मुनियों के प्रचारका प्रभाव काफी हुआ प्रगट होता है। वहा के लोगों में जैन मान्यताओं का आदर हो गया था। यहा तक कि डायजिनेस (Diogenes) और सम्भवत पैर्रहो (Pyrrho of Elis) नामक यूनानी तत्व वेत्ता दिगम्बर वेष में रहे थे।[557] पैर्रहोने दिगम्बर मुनियों के निकट शिक्षा ग्रहण की थी। यूनानियों ने नग्न मूर्तियाँ भी बनाई थीं। जैसे कि लिखा जा चुका है।

जब यूनान और नारवे जैसे दूर के देशों में दिगम्बर मुनि गण पहुचे थे,तो भला मध्य-ऐशिया के अरब ईरान और अफगानिस्तान आदि देशों मे वे क्यों न पहुचते ? सचमुच दिगम्बर मुनियों का विहार इन देशों में एक समय में हुआ था। मौर्य सम्राट् सम्प्रति ने इन देशों में जैन श्रमणों का विहार कराया था, यह पहले ही लिखा जा चुका है। मालूम होता है कि दिगम्बर मुनि अपने इस प्रयास में सफल हुये थे, क्योंकि यह पता चलता है कि इस्लाम मजहब की स्थापना के समय अधिकाश जैनी अरब छोडकर दक्षिण भारत में आ बसे थे।[558] तथा हुएन साग के कथन से स्पष्ट है कि ईस्वी सातवी शताब्दि तक दिगम्बर मुनिगण अफगानिस्तान में अपने धर्म का प्रचार करते रहे थे।[559]

---

554 AL p 104

555 AR III p 6 व जैन होस्टल मैगजीन भाग ११ पृ ६

556 भपा, पृ १६०-२०२

557 NJ, Intro p 2 & "Diogenes Lacrtius (IX 61 & 63) refers to the Gymnosophists and asserts that Pyrrho of Elis, the founder of pure Scepticism came under their influence and on his return the Elis imitated their havits of life " -XII 753

558. Ar, IX. 284

559 हुभा, पृ. ३७

दिगम्बर मुनियों के धर्मोपदेश का प्रभाव इस्लाम मजहब पर बहुत कुछ पड़ा प्रतीत होता है। दिगम्बरत्व के सिद्धांत का इस्लाम मजहब में मान्य होना, इस बात का सबूत है कि अरबी कवि और तत्वेत्ता अबु-लू-अला (Abu-L-Ala) ई. 973-1058) की रचनाओं में जैनत्व की काफी झलक मिलती है। अबु-लू-अला शाकभोजी तो थे ही परन्तु वह म. गांधी की तरह वह भी मानते थे कि एक अहिंसक को दूध नहीं पीना चाहिये। मधु का भी उन्होंने जैनों की तरह निषेध किया था। अहिंसा धर्म को पालन के लिये अबु-लू-अला ने चमड़े के जूतों का पहनना भी बुरा समझा था और नग्न रहना वह बहुत अच्छा समझते थे। भारतीय साधुओं का अन्त समय अग्नि चिता पर बैठकर शरीर को भस्म करते देखकर, वह बड़े आश्चर्य में पड़ गये थे। इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि अबु-लू-अला पर दिगम्बर जैन धर्म का काफी प्रभाव पड़ा था और उनने दिगम्बर मुनियों को सल्लेखनाव्रत का पालन करते हुये देखा था।[560] वह अवश्य ही दिगम्बर मुनियों के संसर्ग में आये प्रतीत होते हैं। उनका अधिक समय बगदाद में व्यतीत हुआ था।

लंका (Ceylon) में जैन धर्म की गति प्राचीनकाल से है। ईस्वी पूर्व चौथी शताब्दि से सिंहलनरेश पाण्डु का भय ने वहा के राजनगर अनुरुद्धपुर में एक जैनमन्दिर और जैन मठ बनवाया था। निग्रन्थ साधु वहां पर निर्बाध धर्म प्रचार करते थे। इक्कीस राजाओं के राज्य तक वह जैन विहार और मठ वहा मौजूद रहे थे, किन्तु ई पू. 38 में राजा वट्टगामिनी ने उनको नष्ट कराकर उनके स्थान पर बौद्ध विहार बनवाया था।[561]

उस पर भी दिगम्बर मुनियों ने जैन धर्म के प्राचीन केन्द्र लका या सिंहलद्वीप को बिल्कुल ही नहीं छोड दिया था। मध्यकाल में मुनि यश कीर्ति इतने प्रभावशाली हुये थे कि तत्कालीन सिंहल नरेश ने उनके पाद-पद्मों की अर्चा की थी।[562]

सारांशत. यह प्रकट है कि दिगम्बर मुनियों का विहार विदेशो में भी हुआ था। भारतेतर जनता का भी उन्होंने कल्याण किया था।

---

560 जैध., पृ ४८६

561 महावंश, AISJ p 37

562 जैशिसं , पृ ११०

मुसलमानी बादशाहत में दिगम्बर मुनि

"O Son, the kingdom of India is full of different religions... It is incumbent on the to wipe all religious prejudices off the tablet of the heart: administer justice according to the ways of every religion "[563]

- Babar.

मुसलमान और हिन्दुओं का पारस्परिक सम्बन्ध

ई. 8वीं 10वीं शताब्दि से अरब के मुसलमानों ने भारतवर्ष पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया था किन्तु कई शताब्दियों तक उनके पैर यहा पर नहीं जमे थे। वह लूटमार करके जो मिला उसे लेकर अपने देश को लौट जाते थे। इन प्रारम्भिक आक्रमणों में भारत के स्त्री-पुरुष की एक बड़ी संख्या में हत्या हुई थी और उनके धर्म मन्दिर और मूर्तिया भी खूब तोड़ी गई थी। तिमूरलग ने जिस रोज दिल्ली फतह की उस रोज उसने एक लाख भारतीय कैदियों को तोप दम करवा दिया।[564] सचमुच प्रारम्भ में मुसलामान आक्रमणकारियों ने हिनदुस्तान को बेतरह तबाह किया किन्तु जब उनके यहां पर पैर जम गये और वे यहा रहने लगे तो उन्होंने हिनुदुस्तान का होकर रहना ठीक समझा। यहां की प्रजाको संतोषित रखना उन्होंने अपना मुख्य कर्तव्य माना। बाबर ने अपने पुत्र हुमायूं को यह शिक्षा दी कि "भारत में अनेक मतमतान्तर हैं, इसलिये अपेन हृदय को धार्मिक पक्षपात से साफ रख और प्रत्येक धर्म की रिवाजों के मुताबिक इन्साफ कर" परिणाम इसका यह हुआ कि हिन्दुओं और ग्सलमानों में परस्पर विश्वास और प्रेम का बीज पड़ गया। जैनों के विषय में प्रो डॉ हेल्मुथ वॉन ग्लाजेनाप कहते है कि "मुसलमानों और जैनों के मध्य हमेशा वैरभरा सम्बन्ध नहीं था (बल्कि) मुसलमानों और जैनों के बीच मित्रता का भी सम्बन्ध रहा है।"[565] इसी मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध का ही यह परिणाम था कि दिगम्बर मुनि मुसलमान बादशाहों के राज्य में भी अपने धर्म का पालन कर सके थे।

---

563 QJMS, Vol. XVIII p 116

564 Elliot III p 436 "100000 in fidels, impious idolators were on that day slain " – *Maljuzat-i Timuri*

565 DD, p 66 & जैध, नृ ६८

ईस्वी दसवीं शताब्दी में जब अरब का सौदागर सुलेमान यहां आया तो उसे दिगम्बर साधु बहु संख्या में मिले थे, यह पहले लिखा जा चुका है। गर्ज यह कि मुसलमानों ने आते ही यहां पर नगे दरवेशों को देखा। महमूद गजनी (1001) और महमूद गौरी (1175) ने अनेक बार भारत पर आक्रमण किये किन्तु वह यहां ठहरे नहीं। ठहरे तो यहां पर 'गुलाम खानदान' के सुल्तान और उन्हीं से भारत पर मुसलमानी बादशाहत की शुरूआत हुई समझना चाहिये। उन्होंने सन् 1206 से 1290 ई. तक राज्य किया और उनके बाद खिलजी, तुगलक और लोदी वंशों के बादशाहों ने सन् 1290 से 1526 ई. तक यहां पर शासन किया।[566]

मुहम्मद गौरी और दिगम्बर मुनि

इन बादशाहों के जमाने में दिगम्बर मुनिगण निर्बाध धर्म प्रचार करते रहे थे, यह बात जैन एवं अन्य स्रोतों से स्पष्ट है गुलाम बादशाहों के पहले ही दिगम्बर मुनि सुल्तान महमूद का ध्यानअपनी और आकृष्ट कर चुके थे।[567] सुल्तान मुहम्मद गोरी के सम्बन्ध में तो यह कहा जाता है कि उसकी बेगम ने दिगम्बर आचार्य के दर्शन किये थे।[568] इससे स्पष्ट है कि उस समय दिगम्बर मुनि इतने प्रभावशाली थे कि वे विदेशी आक्रमणकारियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ थे।

गुलाम बादशाहत में दिगंबर मुनि

गुलाम बादशाहत के जमाने में भी दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व मिलता है। मूलसंघ सेनगण में उस समय श्रीदुर्लभसेनाचार्य श्री धरसेनाचार्य श्री पंण श्री लक्ष्मीसेन, श्री सोमसेन प्रभृत मुनिपुंगव शोभा को पा रहे थे। श्री दुर्लभसेनाचार्य ने अंग कलिंग, काश्मीर, नैपाल, द्राविड़, गौड़, केरल, तैलंग उड़ आदि देशों में विहार करके विधर्मी आचार्यों को हतप्रभ किया था।[569] इसी समय में श्रीकाष्ठासंघ में मुनिश्रेष्ट विजयचन्द्र तथा मुनि यश कीर्ति, अभयकीर्ति, महासेन, कुन्दकीर्ति, त्रिभुवनचन्द्र, रामसेन आदि हुये प्रतीत होते हैं।[570] ग्वालियर में भी अकलंकचन्द्र जी दिगम्बर वेष में सं 1257 तक रहे थे।[571]

566 Oxford pp 109-130

567 "अलकःखरपुराद्रवच्छनगरे राजाधिराजपरमेश्वर यवन रायशिरोमणि महम्मदपातशाह सुरत्राणसमस्या पूर्णाखिल निपातिनाष्टादश वर्षप्राप्तवल्लाकश्रीश्रुतवीरस्वामिनाम्।" - अर्थात् --"अलकःखरपुर भगवनगर में राजेश्वर स्वामी यवनराजाओं में श्रेष्ठ महम्मद बादशाह के याग समस्या की पूर्ति से तथा दृष्ट होने से १८ वर्ष की अवस्था में स्वर्ग गए हुए श्री श्रुतवीर स्वामी हुए। - जैसिभा, भा १ कि २-३ पृ ३४

568 IA, Vol XXI p 361 - "wife of Muhammad ghori desired to see the chief of the Digambaras"

569 जैसिभा, भा १कि २-३ पृ ३८

570 Ibid, किरण ४ पृ १०६

571 बृजेश., पृ १०

खिलजी, तुगलक और लोदी बादशाहों के राज्य और दिगम्बर मुनि

खिलजी, तुगलक, और लोदी बादशाहों के राज्यकाल में भी अनेक दिगम्बर मुनि हुये थे। काष्ठासंघ में श्री कुमारसेन, प्रतापसेन, महातपस्वी, माहवसेनआदि मुनिगण प्रसिद्ध थे। महातपस्वी श्री माहवसेन तथा महासेन के विषय में कहा जाता है कि उन्होंने खिलजी बादशाह अल्लाउद्दीन से सम्मान पाया था।[572] इतिहास से प्रगट है कि अलाउद्दीन धर्म की परवाह कुछ नहीं करता था। उस पर राधों और चेतन नामक ब्राह्मणों ने उसको और भी बरगला रक्खा था। एकदा उन्हीं दोनों ने बादशाह को दिगम्बर मुनियों के विरुद्ध कहा सुना और उनकी बात मानकर बादशाह ने जैनियों से अपने गुरु को राजदरबार में उपस्थित करने के लिये कहा। जैनियों ने नियत काल में आचार्य माहवसेन को दिल्ली में उपस्थित पाया। उनका विहार दक्षिण की ओर से वहा हुआ था।

सुल्तान अलाउद्दीन और दिगम्बराचार्य

आचार्य माहवसेन दिल्ली के बाहर श्मशान में ध्यानारूढ तिष्ठे थे कि वहा एक सर्प-दश से अचेत सेठ पुत्र दाह कर्म के लिये लाया गया। आचार्य महाराज ने उपकार भाव से उसका विष प्रभाव अपने योग बल से दूर कर दिया। इस पर उनकी प्रसिद्धि सारे शहर में हो गई। बादशाह अल्लाउद्दीन ने भी यह सुना और उसने उन दिगम्बदराचार्य के दर्शन किये। बादशाह के बाद राजदरबार में उनका शास्त्रार्थ भी षट्दर्शन वादियों से हुआ, जिसमे उनकी विजय रही। उस दिन महासेन स्वामी ने पुन एक बार स्याद्वाद की अखण्ड ध्वजा भारत वर्ष की राजधानी दिल्ली में आरोपित कर दी थी।[573]

इन्हीं दिगम्बराचार्य की शिष्य परम्परा में विजयसेन नयसेन, श्रेयासरसेन, अनन्तकीर्ति, कमलकीर्ति, क्षेमकीर्ति, श्री हेमकीर्ति, कुमारसेन, हेमचन्द्र, पद्मनन्दि, यश कीर्ति, त्रिभुवनकीर्ति, सहस्त्रकीर्ति, महीचन्द्र आदि दिगम्बर मुनि हुये थे। इनमें श्रीकमल कीर्ति जी विशेष प्रख्यात थे।[574]

---

572 "(The Jain) Acharyas ------ by their character attainments and scholarship ------- commanded the respect of even Muhammadas Sovereigns like Allauddin and Auranga Padusha (Aurangazeb)" - SSIJ, pt II p 132

573 जैसिभा., भा १ कि पृ १०८

574. Ibid

सुल्तान अलाउद्दीन का अपरनाम मुहम्मदशाह था।[575] सन् 1530 ई. के एक शिलालेख में मुनि विद्यानन्दि के गुरुपरम्परीण श्री आचार्य सिंहनन्दि का उल्लेख है कि वह बड़े नैयायिक थे और उन्होंने दिल्ली के बादशाह महमूद सूरित्राण की सभा में बौद्ध व अन्यों को वाद में हराया था। यह बात उक्त शिलालेख में है। यह उल्लेख बादशाह अलाउद्दीन के संबंध में हुआ प्रतिभाषित होता है।[576]

सारांशत: यह कहा जा सकता है कि बादशाह अलाउद्दीन के निकट दिगम्बर मुनियों का विशेष सम्मान प्राप्त हुआ था। दिल्ली के श्री पूर्णचन्द्र दिगम्बर जैन श्रावक की भी इज्जत अलाउद्दीन करता था[577] और उसने श्वेताम्बराचार्य श्री रामचन्द्रसूरि को कई भेंटें अर्पण की थीं।[578] सच बात तो यह है कि अलाउद्दीन के निकट धर्म का महत्व न कुछ था। उससे अपने राज्य का ही एक मात्र ध्यान था। उसके सामने वह 'शरीअत' को भी कुछ न समझता था। एक दफा उसने नव मुस्लिमों को तोपदम करा दिया था।[579] हिन्दुओं के प्रति वह ज्यादा उदार नहीं था और जैन लेखकों ने उसे 'खूनी' लिखा है। किन्तु अलाउद्दीन में 'मनुष्यत्व' था। उसी के बल पर वह अपनी प्रजा को प्रसन्न रख सकता था। और विद्वानों का सम्मान करने में सफल हुआ था।[580]

तत्कालीन अन्य दिगम्बर मुनिगण

सं.1462 में ग्वालियर में महामुनि श्री गुणकीर्तिजी प्रसिद्ध थे।[581] मेदपाद देश में स 1536 में श्री मुनि रामसेन जी के प्राशिष्य मुनि सोमकीर्ति जी विद्यमान थे और उन्होने

---

575. Oxford. p 130

576 मजैस्मा, पृ ३२२श् "सुल्तान शब्द को जैनाचार्यों ने सुरित्राणा लिखकर बादशाहो को मुनिरक्षक प्रकट किया है।

577 जैहि, भा १४ पृ १३२

578 जैध, पृ १६८

579 "He (Allau-ddin) was by nature cruel and implacable, and his only care was the welfare of his kingdom No consideration for religion (Islam) ever troubled him He disregarded the provisions of the Law
He now gave commands that the race of "New-Muslims" should be destroyed " %%Tarikhi-Firozshahi " - Elliot III, p 205

580 सुल्तान अलाउदीन ने शराब की बिक्री रुकवा दी थी। नाज, कपड़ा आदि बेहद सस्ते थे। उसके राज में राजभक्ति की बाहुल्यता थी। विद्वान काफी हुए थे। (Without the patronage of the Sultan many learned and great men flourished) -- Elliot, III 206

581 जैहि, भा १४ पृ २२४

'यशोधरचरित्' की रचना की थी।[582] श्री 'भद्रबाहु चरित्' के कर्ता मुनि रत्ननन्दि भी इसी समय हुये थे। वस्तुतः उस समय अनेक मुनिजन अपने दिगम्बर वेष में इस देश में विचर रहे थे।

लोदी सिकन्दर निजामखां और दिगम्बराचार्य विशालकीर्ति

लोदी खानदान में सिकन्दर (निजामखां) बादशाह सन् 1489 में राज सिंहासन पर बैठा था।[583] हूमस मठ के गुरु श्री विशालकीर्ति भी लगभग इसी समय हुये थे। उनके विषय में एक शिलालेख से पाया जाता है कि उन्होंने सिकन्दर बादशाह के समक्ष वाद किया था।[584] वह वाद लोदी सिकन्दर के दरबार में हुआ प्रतीत होता है।

अतः यह स्पष्ट है कि दिगम्बर मुनि तब भी इतने प्रभावशाली थे कि वे बादशाहों के दरबार में भी पहुंच जाते थे।

तत्कालीन विदेशी यात्रियों ने दिगम्बर साधुओं को देखा था

जैन साहित्य के उपरोक्त उल्लेखों की पुष्टि अजैन श्रोत से भी होती है। विदेशी यात्रियों के कथन से यह स्पस्ट है कि गुलाम से लोदी राज्य काल तक दिगम्बर जैन मुनि इस देश में विहार और धर्म प्रचार करते रहे। देखिये तेरहवीं शताब्दि में यूरोपीय यात्री मार्को पोलो (Morco Polo) जब भारत में आया तो उसे ये दिगम्बर साधु मिले। उनके विषय में वह लिखता है कि –[585]

---

582 "नदीतटाख्यगच्छे वशे श्रीरामसेन देवस्य जातौगुणार्णविक श्रीमाश्च भीमसेवेति। निर्मित तस्य शिष्येण श्री यशोधर सज्ञिक श्री सोमकीर्ति मुनिनानिशोदयाधीपतांबुधावषैषट् विंशशख्येतिथिपरिगणनायुक्त संवत्सरेति पचम्भा पौषकृष्णादिनकर दिवसे ह्योत्तरास्पट्ट वटि ।। इत्यादि ।।"

583 Oxford, p 130

584 मजैस्मा, पृ १६२ व ३२२

585 "Some Yogis went stark naked, because, as they said, they had come naked into the world and desired nothing that was of this world and desired nothing that was of this world 'Moreover, they declared, "we havce no sin of the flesh to be conscious of, and, therefore, we are not ashamed of our nakedness, and more than you are to show your hand or face You, who are conscious of the sins of the flesh, do well to have shame and to cover your nakedness" – Yule's Morco Polo, II, 366, & HARI, p 364

"कतिपय योगी मादरजात नंगे घूमते थे, क्योंकि जैसे उन्होंने कहा वे इस दुनियां में नंगे आये हैं और उन्हें इस दुनियां की कोई चीज चाहिये नहीं खासकर उन्होंने यह कहा कि हमें शरीर सम्बन्धी किसी भी पाप का भान नहीं है और इसलिये हमें अपनी नंगी दशा पर शरम नहीं आती है, उसी तरह जिस तरह तुम अपना मुहं और हाथ नंगे रखने में नहीं शरमाते हो। तुम जिन्हें शरीर के पापों का भान है, यह अच्छा करते हो कि शरम के मारे अपनी नग्नता ढक लेते हो।"

इस प्रकार की मान्यता दिगम्बर मुनियों की है। मार्को पोलों का समागम उन्हीं से हुआ प्रतीत होता है। वह उनके ससर्ग में आये हुये लोगों में अहिंसा धर्म की बाहुल्यता प्रकट करता है। यहां तक कि वह साग सब्जी तक ग्रहण नहीं करते थे। सूखे पत्तों पर रखकर भोजन करते थे। वे इन सब में जीव तत्व का होना मानते थे। हैवेल सा गुजरात के जैनों में इन मान्यताओं का होना प्रकट करते हैं।[586] किन्तु वस्तुत गुजरात ही क्या प्रत्येक देश का जैनी इन मान्यताओं का अनुयायी मिलेगा। अत इसमें सन्देह नहीं कि मार्को पोलों को जो नंगे साधु मिले थे, वह जैन साधु ही थे।

अलबेरुनी के आधार पर रशीदुद्दीन नामक मुसलमान लेखक ने लिखा है कि "मलाबार के निवासी सबही श्रमण हैं और मूर्तियों की पूजा करते हैं। समुद्र किनारे के सिन्दबूर, फक्नूर, मजरूर, हिला, सदर्स, जगलि और कुलम नामक नगरों और देशों के निवासी भी श्रमण हैं।"[587] यह लिखा ही जा चुका है कि दिगम्बर मुनि श्रमण नाम से भी विख्यात हैं। अत कहना होगा की रशीदुदीन के अनुसार मलाबार आदि देशों के निवासी दिगम्बर जैन ही थे, और तब उनमें दिगम्बर मुनियों का होना स्वाभाविक है।

---

586 'Moreco Polo also noticed the customs, which the orthodox Jaina community of Gujerat maintains to the present day 'They do not kill an animal on any account, not even a fly or a flea, or a louse, or anything in fact that has life: for they say, these have all sould and it would be sin to do so ' (Yule's Morco polo , II 366) - HARI , p 365

587 Rashi-uddm from Al-Biruni writes "The whole country (or Malibar produces the pan ------ The people are all Samanis and worship idols. Of the cities of the shore the first is Sindabur, the Faknur, then the country of Mamjarur, then the country of Hili, then the country of Sadarsa, then Jangli, then Kulam The men of all these countries are Samanis " - Elliot Vol. I p 68
इलियट सा ने इन श्रमणों को बौद्ध लिखा है, किन्तु उस समय दक्षिण भारत में बौद्धों का होना असम्भव है। श्रमण शब्द बौद्धभिक्षुके अतिरिक्त दिगम्बर साधुओं के लिये भी व्यवहृत होता है।

मुगल साम्राज्य में दिगम्बर मुनि

उपरान्त सन् 1526 से 1761 ई. तक भारत पर मुगल और सूरवंशों के राजाओं ने राज्य किया था।[588] उनके समय में भी दिगम्बर मुनियों का बाहुल्य था। पाटोदी (जयपुर) के वि. स 1575 की प्रशस्ति से प्रगट है कि उस समय श्री चन्द्र नामक मुनि विद्यमान थे।[589] लखनऊ चौक के जैन मंदिर में विराजमान एक प्राचीन गुटका के पत्र 163 पर दी हुई प्रशस्ति से निग्रन्थाचार्य श्री माणिक्य चन्द्र देव का अस्तित्व सं 1611 में प्रमाणित है।[590] "भावत्रिभंगी" की प्रशस्ति से स. 1605 मुनि क्षेमकीर्ति का होना सिद्ध है।[591] सचमुच बादशाह बाबर, हुमायू और शेरसाहू के समय में दिगम्बर मुनियों का विहार सारे देश में होता था। मालूम होता है कि उन्हीं का प्रभाव मुसलमान दरवेशों पर पड़ा था जिसके फलस्वरुप वे नग्न रहने लगे थे। मुगल बादशाह शाहजहा के समय में वे एक बड़ी सख्या में मौजूद थे।[592] शेरशाह के समय में दिगबर मुनियों का निर्बाध विहार होता था, यह बात शेरशाह के अफसर मलिक मुहम्मद जायसी के प्रसिद्ध हिन्दीकाव्य पद्मावत (2/60) के निम्नलिखित पद्य से स्पष्ट है -

"कोई ब्रह्मचारज पन्थ लागे।
कोई सुदिगंबर आछा लागे।।"

अकबर और दिगम्बर मुनि

बादशाह अकबर जलालुद्दीन स्वय जैनों का परम भक्त था और यदि हम उस समय के ईसाई लेखकों के कथन को मान्यता दे तो कह सकते हैं कि वह जैन धर्म मे दीक्षित हो गया था। नि सन्देह श्वेताम्बराचार्य श्रीहीरविजयसूरी आदि का प्रभाव उस पर विशेष पड़ा था।[593] इस दशा में अकबर दिगम्बर साधुओं का विरोधी नहीं हो सकता। बल्कि अबुलफजल ने आईन अकबरी भाग 3 पृष्ठ 87 में उनका उल्लेख स्पष्ट शब्दों में किया है और लिखा है कि वे नगे रहते थे।

---

588 Oxford , p 151

589 "श्री संघाचार्यसत्कवि शिष्येण श्रीचन्द्रमुनि।" --- जैमि , वर्ष १२ अंक ४५ पृ ६६८

590 "सं १६११ चैत्र सु २ ----- मूलसंघे ----- भ श्रीविद्यानंदि तत्पट्टे श्री कल्याणकीर्ति तत्पट्टे नैग्रन्थ्याचार्य ---- तपोवललब्धातिशय श्र माणिकचन्द्रदेवा -----। -- जैमि , वर्ष २२ अंक ४५ पृ ७४०

591 "सं १६०५ वर्षे ---- तत्शिष्य सर्वगुणविराजमान मडलाचार्य मुनि श्री क्षेमकीर्तिदेवा।"

592 Bernier pp 315-318

593 पादरी पिन्हेरो (Pinheiro) ने लिखा है कि अकबर जैन धर्मानुयायी है। (He Akbar) follows the sect of the Jainas

वैराट काष्ठि. संघ

वैराटनगर में उस समय दिगम्बर मुनियों का संघ विद्यमान था। वहां पर साक्षात् मोक्ष मार्ग की प्रवृत्ति के लिये यथाजात जिनलिंग शोभा पा रहा था। वह नगर बड़ा समृद्धशाली था और उस पर अकबर शासन करता था कवि राजमल्ल ने 'लाटी संहिता' की रचना यहीं के जैनमन्दिर में की थी।[594] उन्होंने अपने 'जम्बूस्वामी चरित्' में लिखा है कि भटानिया कोल के निवासी साहु टोडर जब तीर्थयात्रा करते हुये मथुरा पहुंचे तो उन्होंने वहां पर 514 दिगम्बर मुनियों के समाधि सूचक प्राचीन स्तूपों को जीर्णशीर्ण दशा में देखा। उन्होंने उनका उद्धार करा दिया और उन की प्रतिष्ठा शुभतिथि वार को चतुर्विधिसंघ -- (1) मुनि(2) आर्यिका (3) श्रावक (4) श्राविका- एकत्र करके कराई थी।[595] इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि बादशाह अकबर के राज्य में अनेक दिगम्बर मुनि विद्यमान थे और उनका निर्वाध विहार सारे देश में होता था।

बादशाह औरंगजेब ने दिगम्बर मुनि सम्मान किया था

अकबर के बाद मुगल खानदान में जितने भी शासक हुये उन सबके ही शासन काल में दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व मिलता है। औरगजेब सदृश कट्टर बादशाह को भी दिगम्बर मुनियों ने प्रभवित कर लिया था यहा तक कि औरगजेब ने उनका सम्मान किया था।[596] उस समय के किन्हीं मुनि महाराजों का उल्लेख इस प्रकार है।

---

594 "वीर" वर्ष ३ पृ व "लाटी , पृ , १२
"श्रीमुडिडीरपिण्डोपमतितमितनभ पाण्डुराखण्डकीर्त्या,
कृष्टं ब्रह्माण्डकाण्डं निजभुजशयशस ।मण्डपाडम्बराऽस्मिन्।
येनासी पातिसाहि प्रतपदकव्वर प्रक्विख्यातकीर्ति -
जींयाद्भोक्लाथ नाथ प्रभुरिति नगरस्यास्य वैराटनाम्न ।।६२।।
जैनो धम्रोनवद्यो जगति विजयतेऽद्यापि सन्तानवर्ती
साक्षादैगम्बरास्ते यतय इह यथाजातरूपालक लक्ष ।
तस्मैतेभ्यो नमोस्तु त्रिसमयनियतं प्रोल्लसद्यत्प्रसादा -
दर्वागावर्द्धमानं प्रतिघविरहितो वर्तते मोक्षमार्ग. ।।६३।।"

595 अनेकान्त, भा , १ पृ १३६-१४१ "चतुर्विधमहासंघ समाहुया त्रधोम्ता।

596 SSIJ , pt II p 132 जैन कवियों ने औरगोजेब की प्रसन्ना ही की हे
"औरगोसाह बली को राज, पायो कविजन परम समाज।
चक्रवर्तिसम जगमें भयो, फेरत आनि उदधि लो गयो।
जाके राज परम सुख पाय, करी कथा हम जिन गुन गाय।"
-- कवि विनोदीलाल

तत्कालीन दिगम्बर मुनि

दिगम्बर मुनि श्री सकल चन्द्र जी सं. 1667 में विद्यमान थे उनके एक शिष्य ने भक्तामर कथा की रचना की थी,[597] सं. 1680 का लिखा हुआ एक गुटका दि. जैन पंचायती बड़ा मन्दिर मैनपुरी के शास्त्रभण्डार में विराजमान है। उसमें श्री दिगम्बर मुनि महेन्द्रसागर का उल्लेख उस समय में मिलता है।[598] संवत् 1719 में अकबराबाद में मुनि श्री वैराग्यसेन ने आठ कर्म की 148 प्रकृतियों का विचार चर्चा ग्रंथ लिखा था।[599] सन 1783 में गुरु देवेन्द्रकीर्ति का अस्तित्व ढूंढारि देश में मिलता है। वहां पर दिगम्बर मुनियों का प्राचीन आवास था।[600] सं. 1757 में कुण्डलपुर में मुनि श्री गुणसागर और यश.कीर्ति थे। उनके शिष्य ने महाराजा छत्रसाल की विशेष सहायता की थी।[601] कवि लालमणि ने औरंगजेब के राज्य में 'अजितपुराण' की रचना की थी। उससे काष्ठासघ में श्री धर्मसेन, भावसेन, सहस्त्रकीर्ति, गुणकीर्ति यश:कीर्ति , जिनचन्द्र, श्रुतकीर्ति आदि दिगम्बर मुनियों का पता चलता है।[602] स 1799 में कवि खुशालदास जी ने एक मुनि महेन्द्रकीर्ति जी का उल्लेख किया है।[603]

मुनि धर्मचन्द्र मुनि विश्वसेन, मुनि श्रीभूषण का भी इसी समय पता चलता है[604] साराशत. यदि जैन साहित्य और मूर्ति लेखों का और भी परिशीलन और अध्ययन किया जाय तो अन्य अनेक मुनिगण का परिचय उस समय में मिलेगा।

---

597 जैप्र पृ १४३

598 "गुरु मुनि माहिदसेनि नमिजी, भनत भगवतीदासु।" - वीर जिनेन्द्र गीत
"मुनि माहेन्द्रसेनि गुरु तिहं जुग चरन पसाई।" - ढमाखु राजमती नेमिसुर
"मुणि माहेंद्रसेन इह निसि प्रणामा तासो।
थानि कपस्थलि नीकइ भनत भगौती दासी।।" -- स्ज्ञानी ढाल

599 "संवत् १७१६ वर्षे फाल्गुण सुदि १३ सोमे लिखित मुनि री वैराग्य सागरेण।"

600 "देसढं ढाहड जाणु सार --- मूलसघ भविजान सुगं सिवकार बषान्यूम। आगे भये रिषीस गुणाकर तिनि इह ठान्यूम।।
कुन्दकुन्द मुनिराइ जिहाजधर्म जामाहिं, कलैकिलकाल वितीत भए मुनिवर अधिकाहीं।
देवेन्द्रकीर्ति अवै चितधारि ताहि विषै। लक्ष्मीसुदास पण्डित तहा विनू सुगुरु अति सैरपै।।
सतरासै तियासिये पोस सुकुल तिथिजानि ----।" -- पद्मपुराण भाषा

601 "तस्यान्वये संजातौं ज्ञानवान गुणसागर । भवस्वी संघ संपूज्यों यश कीर्तिर्महामुनि ।"।
--दिजैइ पृ २५६

602 जैहि , १२-१६४ "श्रीमच्छ्रीकाष्ठासंघेमुणिगणगणनातिदिगम्बयुष्टे।

603 "भट्टारक पद सौभै जास - मुनि महेन्द्रकीर्ति पट तास।" - उत्तरपुराण भाषा

604 श्री मूलसंघेयभारतीये गच्छे बलात्कार गणेतिरम्ये। आमीन्सु देवेन्द्रशोमुनीन्द सधर्माचारी मुनि धर्मचन्द्र । - श्रीजिनसहस्त्रनाम
x x x x
श्री काष्ठासंघे जिनराजसेनस्तदन्वये श्री मुनि विश्वसेन।
विद्याविभै: मुनिराट् बभूव श्रीभूषणो वादि गजेन्द्रसिंह ।।" - पंचकल्याणक पाठ.

आगरे में तब दिगम्बर मुनि

कविवर बनारसी दास जी बादशाह शाहजहा के कृपापात्रों में से थे। उनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक बार जब कविवर आगरे में थे तब वहा पर दो नग्न मुनियों का आगमन हुआ। सब ही लोग उनके दर्शन-वन्दन के लिये आते जाते थे। कविवर परीक्षा प्रधानी थे। उन्होंने उन मुनियों की परीक्षा की थी।[605] इस उल्लेख से उस समय आगरे में दिगम्बर मुनियों का निर्बाध विहार हुआ प्रकट है।

फ्रेंच-यात्री डा. बर्नियर और दिगम्बर साधु

विदेशी विद्वानों की साक्षी भी उक्त वक्तव्य की पोषक है। बादशाह शाहजहा औरगजेब के शासनकाल में फ्रास से एक यात्री डा बर्नियर (Dr Bernier) नामक आया था। वह सारे भारत में घूमा था और उसका समागम दिगम्बर मुनियों से भी हुआ था। उनके विषय में वह लिखता है कि -[606]

"मुझे अक्सर साधारणत किसी राजा के राज्य में, इन नंगे फकीरों के समूह मिले थे, जो देखने में भयानक थे। उसी दशा में मैंने उन्हें मादरजात नगा बडे-बडे शहरों में चलते फिरते देखा था। मर्द, औरत और लडकिया उनकी ओर वैसे ही देखते थे जैसे की कोई साधु जब हमारे देश की गलियों में हो कर निकलता है तब हम लोग देखते हैं। औरतें अक्सर उनके लिये बडी विनय से भिक्षा लाती थी। उनका विश्वास था कि वे पवित्र पुरुष है और साधारण मनुष्यों से अधिक शीलवात और धर्मात्मा हैं।"

ट्रावरनियर आदि अन्य विदेशियों ने भी उन दिगम्बर मुनियों को इसी रुप मे देखा था। इस प्रकार इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि मुसलमान बादशाहों ने भारत की इस प्राचीन प्रथा कि साधु नगे रहें और नगे ही सर्वत्र विहार करें, को सम्माननीय दृष्टि से देखा था। यहां तक कि कतिपय दिगबर जैनाचार्यों का उन्होंने खूब आदर सत्कार किया था। तत्कालीन हिन्दू कवि सुन्दरदासजी भी अपने सर्वांगयोग नामक ग्रन्थ से इन मुनियों का उल्लेख निम्न शब्दों में करते है -[607]

---

605 बवि, चरित्र, पृ\ ८७-१०२

606 "I have often met, generally in the trrritory of some Raja, bands of these naked fakirs, hideous to behod ---- In this trim I have seen them shamelessly walk stark naked, through a large town, men, women and girls looking at them without any more emotion than may be created when a hermit passes through our streets Females would often bring them alms with much devotion, doubtless believing that they were holy personages, more chaste and discreet than other men " - Bernier p 317

607 फाहायान, भूमिका

"केचित कर्म खपावहि जैसा, केश लुंचाई करहि अति फैना।"

केशलुंचन क्रिया दिगम्बर मुनियों का एक खास मूलगुण है, यह लिखा ही जा चुका है। इससे तथा सं. 1870 में हुये कवि लालजीत जी के निम्न उल्लेख से तत्कालीन दिगम्बर मुनियों का अपने मूलगुणों को पालन करेन में पूर्णतः दत्तचित्त रहना प्रगट है:-

"धारे दिगम्बर रूप भूप सब पद को परसी,
लिये चरन वैराग मोक्षमारग को दरसी।
जे भवि सेवें चरन तिन्हें सम्यक् दरसावें,
करें आप कल्याण सुखद्रुमभावन भावें।।
पंच महाव्रत धरें वरें शिवसुन्दर नारी,
निज अनुभौ रसलीन परम-पद के सुविचारी।
दशलक्षण निजधर्म गहे रत्नत्रयधारी।।
ऐसे श्री मुनिराज चरन पर जग-बलिहारी।।।"



धन्य मुनीश्वर आतम हित में.....

धन्य मुनीश्वर आतम हित में छोड़ दिया परिवार, ।
कि तुमने छोड़ा सब घरबार ।।टेक।
काया की ममता को टारी, करते सहन परीषह भारी।
पञ्च महाव्रत के हो धारी, तीन रतन के बने भंडारी।।
धन छोड़ा वैभव सब छोड़ा, समझा जगत असार।।१।।
राग-द्वेष सब तुमने त्यागे, वैर विरोध हृदय से भागे।
परमातम के हो अनुरागे, बैरी कर्म पलायन भागे।।
सत सन्देश सुना भविजन को, करते बेड़ा पार।।२।।
होय दिगम्बर वन में विचरते, निश्चल होय ध्यान जब करते।
निजपद के आनंद में झूलते, उपशम रस की धार बरसते।।
मुद्रा सौम्य निरख कर मस्तक, नमता बारम्बार।।३।।

ब्रिटिश-शासनकाल में दिगम्बर मुनि।

"All shall alike enjoy the equal and impartial protection of the Law, and We do strictly charge and enjoin all those who may be in authority under us that they abstain from all interferance with the religious belief or worship of any of our subjects on pain of our highestdispleasure "

- Queen Victoria [608]

महारानी विक्टोरियाने अपनी 1 नवम्बर सन् 1858 की घोषणा में यह बात स्पष्ट करदी है कि ब्रिटिश शासन की छत्र-छाया में प्रत्येक जाति और धर्म के अनुयायी को अपनी परम्परागत धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं को पालन करने में पूर्णस्वाधीनता होगी और कोई भी सरकारी कर्मचारी किसी के धर्म मे हस्तक्षेप न करेगा। इस अवस्था में ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत दिगम्बर मुनियों को अपना धर्मपालन करना सुगम-साध्य होना चाहिये और वह प्राय सुगम रहा है।

गत ब्रिटिश शासन काल में हमें कई एक दिगम्बर-मुनियों के होने का पता चलता है। स 1870 में ढाका शहर में श्री नरसिंह नामक मुनि के अस्तित्व का पता चलता है।[609] इटावा के आसपास इसी समय मुनि विनय सागर व उनके शिष्यगण धर्मप्रचार कर रहे थे। लगभग पचास वर्ष पहले लेखक के पूर्वजों ने एक दिगम्बर मुनि महाराज के दर्शन जयपुर रियासत के फागी नामक स्थान पर किये थे। वह मुनिराज वहा पर दक्षिण की ओर से विहार करते हुये आये थे।

- दक्षिण भारत की गिरि-गुफाओं में अनेक दिगम्बर मुनि इस समय में ज्ञानध्यानरत रह हैं। उन सबका ठीक-ठीक पता पालेना कठिन है। उनमें से कतिपयजो प्रसिद्धि में आ गये उन्हीं के नाम आदि प्रकट हैं। उनमें श्री चन्द्र कीर्तिजी महाराज का नाम उल्लेखनीय है। वह संभवत गुरमडया के निवासी थे और जेनवद्री में तपस्या करते थे। वह एक महान् तपस्वी कहे गये हैं। उनके विषय में विशेष परिचय ज्ञात नहीं है।[610]

---

608 Royal Proclamation of 1st Nov. 1858

609 "संवत् अष्टादश शतक व सतर बरस प्रमाण।
ढाका सहर सुहामण, देश बंग के माँहि। जैनधर्मधारक जिहां श्रावक अधिक सुहाहि। -----
तासु शिष्य विनयी विबुध हषचंद गुणवंत। मुनि नरसिंह धिमेयविधि पुस्तक एह लिखंत।।"
-- दि जैन बड़ा मंदिर का एक गुटका

610. दिजै., वर्ष ८ अंक १ पृ २३

किन्तु उत्तर भारत के लोगों में सम्भवतः दिगम्बर मुनि श्री चन्द्रसागरजी का ही नाम पहले-पहल मिलता है। वह फल्टन (सतारा) निवासी हूमड़जातीय पदमसी नामक श्रावक थे। स. 1969 में उन्होंने कुरुन्दवाड़ग्राम (सोलापुर) में दिगंबर मुनि श्री जिनप्पास्वामी के समीप क्षुल्लक के व्रत धारण किये थे। सं. 1969 में झालरापाटन के महोत्सव के समय उन्होंने दिगंबर मुनि के महाव्रतों को धारण करके नग्न मुद्रा में सर्वत्र विहार करना प्रारंभ कर दिया। उनका विहार उत्तर भारत में आगरा तक हुआ प्रतीत होता है।[611]

सन् 1921 में एक अन्य दिगंबर मुनि श्री आनन्दसागर जी का अस्तित्व उदयपुर (राजपूताना) में मिलता है। श्री ऋषभदेव केशरिया जी के दर्शन करने के लिये वह गये थे, किन्तु कर्मचारियों ने उन्हें जाने नहीं दिया था। उस पर, उपसर्ग आया जानकर वह ध्यान माड़कर वहीं बैठ गये थे। इस सत्याग्रह के परिणाम-स्वरूप राज्य की ओर से उनको दर्शन करने देने की व्यवस्था हुई थी।[612]

किन्तु इनके पहले दक्षिण भारत की ओर से श्री अनन्तकीर्तिजी महाराज का विहार उत्तर भारत को हुआ था। वह आगरा, बनारस आदि शहरों में होते हुये शिखरजी की वदना को गये थे। आखिर ग्वालियर राज्यान्तर्गत मोरेना स्थान में उनका असामयिक स्वर्गवास माघ शुक्ला पंचमी स 1974 को हुआ था। जब वह ध्यानलीन थे तब किसी भक्त ने उनके पास आग की अगीठी रख दी थी। उस आग से वह स्थान ही आग मई हो गया और उसमें उन ध्यानारूढ़ मुनिजी का शरीर दग्ध हो गया। इस उपसर्ग को उन धीर वीर मुनिजी ने समभावों से सहन किया था। उनका जन्म स 1940 के लगभग निल्लोकार (कारकल) में हुआ था। वह मोरेना में सस्कृत और सिद्धान्त का अध्ययन करने की नियत से ठहरे थे, किन्तु अभाग्यवश वह अकाल काल -कवलित हो गये।

श्री अनन्तकीर्तिजी के अतिरिक्त उस समय दक्षिण भारत में श्री चन्द्रसागर जी मुनि मणिहली, श्री सनत्कुमार जी मुनि और श्री सिद्धसागरजी मुनि तेरवाल के होने का भी पता चलता है।[613] किन्तु पिछले पाच-छ वर्ष में दिगबर मुनिमार्ग की विशेष वृद्धि हुई है और इस समय निम्नलिखित सघ विद्यमान हैं, जिनके मुनिगण का परिचय इस प्रकार है.-

(1) श्री शान्तिसागरजी का संघ - यह संघ इस समय उत्तर भारत में बहुत प्रसिद्ध है। इसका कारण यह है कि उत्तर भारत के कतिपय पण्डितगण इस संघ के साथ हो कर सारे भारतवर्ष में घूमे है। इस सघ ने गत चातुर्मास भारत की राजधानी दिल्ली में व्यतीत किया था। उस समय इस सघ में दिगम्बर-मुद्रा को धारण किये हुये सात मुनिगण और कई क्षुल्लक-ब्रम्हचारी थे। दिगम्बर साधुओं में श्रीशान्ति सागर ही मुख्य हैं। स. 1928 में उनका जन्म बेलगाम जिले के ऐनापुर-भोज नामक ग्राम में हुआ था। शान्तिसागरजी को

---

611 Ibid , p. 18-20

612 दिजै., वर्ष १४ अक ५-६ पृ. ७

613. दिजै., विशेषांक वीर नि सं २४४३

सब लोग सातगौड़ा पाटील कहते थे। उनकी नौ वर्ष की आयु में एक पांच वर्ष की कन्या के साथ उनका ब्याह हुआ था। और इस घटना के 7 महीने बाद ही वह बाल-पत्नी मरण कर गई थी। तबसे वह बराबर ब्रह्मचर्य का अभ्यास करते रहे। उनका मन वैराग्य-भाव में मग्न रहने लगा। जब वह अठारह वर्ष के थे, तब एक मुनिराज के निकट से ब्रह्मचारी पद को उन्होंने ग्रहण किया था। सं. 1969 में उत्तरग्राम में विराजमान दिगम्बर मुनि श्री देवेन्द्र कीर्तिजी के निकट उन्होंने क्षुल्लक का व्रत ग्रहण किया था। इस घटना के चार वर्ष बाद संवत् 1973 में कुंभोज के निकट बाहुबलि नामक पहाड़ी परिस्थित श्री दिगम्बर मुनि अकलीकस्वामी के निकट उन्होंने ऐलकपद धारण किया था। सं 1973 में येरनाल में पंचकल्याणक-महोत्सव हुआ था। उसमें वह भी गये थे। जिस समय दीक्षाकल्याणक महोत्सव सम्पन्न हो रहा था, उस समय उन्होंने भोसगी के निर्ग्रंथ मुनि महाराज के निकट मुनिदीक्षा ग्रहण की थी।[614] तबसे वह बराबर एकान्त में ध्यान और तपका अभ्यास करते रहे थे। उस समय वह एक खासे तपस्वी थे। उनकी शान्त मनोवृत्ति और योगनिष्ठा ने उत्तर भारत के विद्वानों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया। कई पंडित उनकी संगति में रहने लगे। आखिर उनके शिष्य कई उदासीन श्रावक हो गये, जिनमें से कतिपय दिगम्बर मुनि और ऐलक क्षुल्लक के व्रतों का पालन करने लगे। इस प्रकार शिष्य-समूह से वेष्टित होने पर उन्हें "आचार्य" पद से सुशोभित किया गया और फिर बम्बई के प्रसिद्ध सेठ घासीराम पूर्णचन्द्र जौहरी ने एक यात्रा संघ सारे भारत के तीर्थों की वन्दना के लिये निकालने का विचार किया। तदनुसार आचार्य शान्तिसागरजी की अध्यक्षता में वह संघ तीर्थ यात्रा के लिये निकल पड़ा। महाराष्ट्र के सांगली-मिरज आदि रियासतों में जब यह संग पहुंचा था तब वहां के राजाओं ने उसका अच्छा स्वागत किया था। निजाम सरकार ने भी एक खास हुकुम निकाल कर इस संघ को अपने राज्य में कुशलतापूर्वक विहार कर जाने दिया था। भोपाल राज्य में होकर वह संघ मध्यप्रान्त होता हुआ श्री शिखर जी फरवरी सन् 1927 में पहुंचा था। वहां पर बड़ा भारी जैन सम्मेलन हुआ था। शिखरजी से वह संघ कटनी, जबलपुर, लखनऊ, कानपुर, झांसी, आगरा, धौलपुर, मथुरा, फिरोजाबाद, एटा, हाथरस, अलीगढ़, हस्तिनापुर, मुजफ्फरनगर आदि शहरों में होता हुआ दिल्ली पहुंचा था। दिल्ली में वर्षा-योग पूरा करके अब वह संघ अलवर की ओर विहार कर रहा था और उसमें ये साधुगण मौजूद हैं:-

(1) श्री शान्तिसागरजी आचार्य (2) मुनि चंद्रसागर (3) मुनि श्रुतसागर (4) मुनि वीरसागर (5) मुनि नमिसागर (6) मुनि ज्ञानसागर।

---

614 दिजै., वर्ष १६ अंक १-2 पृ. ६

615 हुकुम नं. ६२८ (सीगे [illegible]) १३३७ फसली

(2) दूसरा संघ श्री सूर्यसागर जी महाराज का है, जो अपनी सादगी और धार्मिकता के लिये प्रसिद्ध है। कुर्दई में इस संघ का पिछला चातुर्मास व्यतीत हुआ था। उस समय इस संघ में मुनि सूर्यसागरजी के अतिरिक्त मुनि अजितसागर जी, मुनि धर्मसागर जी और ब्रह्मचारी भगवानदास जी थे। कुर्दई से अब इस संघ का विहार उसी ओर हो रहा है। मुनि सूर्यसागरजी गृहस्थ दशा में श्री हजारीलाल के नाम से प्रसिद्ध थे। वह पोरवाड़ जाति के झालरापाटन निवासी श्रावक थे। मुनि शान्तिसागर जी छाणी के उपदेश से निग्रन्थ साधु हुये थे।

(3) तीसरा संघ मुनि शातिसागर जी छाणी का है, जिसका गत चातुर्मास ईडर में हुआ था। तब इस संघ में मुनि मल्लिसागर जी, ब्र. फतहसागर जी और ब्र. लक्ष्मीचंद जी थे। मुनि शान्तिसागर जी एकान्त में ध्यान करने के कारण प्रसिद्ध है। वह छाणी (उदयपुर) निवासी दशा हूमड जाति के रत्न हैं। भादव शुक्ल १४ सं. १९७९ को उन्होंने दिगम्बर-वेष धारण किया था। उन्होंने भुखिया (बासवाड़ा) के ठाकुर कूरसिंह जी साहब को जैनधर्म में दीक्षित करके एक आदर्श कार्य किया है।

(4) मुनि आदिसागर जी के चौथे संघ ने उदगांव में पिछली वर्षा पूर्ण की थी। उस समय इनके साथ मुनि मल्लिसागर जी व क्षुल्लक सूरीसिंह जी थे।

(5) गत चातुर्मास में श्री मुनीन्द्रसागर जी का पांचवा संघ मांडवी (सूरत) में मौजूद रहा था। उनके साथ श्री देवेन्द्रसागरजी तथा विजयसागर जी थे। मुनीन्द्रसागर जी ललितपुर निवासी और परवार जाति के है। उनकी आयु अधिक नहीं है। वह श्री शिखरजी आदि तीर्थेकी वन्दना कर चुके हैं।

(6) छठा संघ श्री मुनि पायसागरजी का है, जो दक्षिण-भारत की ओर ही रहा है।

इनके अतिरिक्त मुनि ज्ञानसागर जी (सैराबाद), मुनि आनन्दसागरजी आदि दिगम्बर-साधुगण एकान्त में ज्ञान ध्यान का अभ्यास करते हैं। दक्षिण-भारत में उनकी सख्या अधिक है। ये सब ही दिगम्बर मुनि अपने प्राकृत वेष में सारे देश में विहार करके धर्मप्रचार करते है। ब्रिटिश भारत और रियासतों में ये बेरोकटोक घूमें है; किन्तु गतवर्ष काठियावाड के कमिश्नर ने अज्ञानता से मुनीन्द्रसागर जी के सघ पर कुछ आदमियों के घेरे में चलने की पाबन्दी लगा दी थी; जिसका विरोध अखिल भारतीय जैनसमाज ने किया था और जिसको रद्द कराने के लिये एक कमेटी भी बनी थी।

सच बाततो यह है कि ब्रिटिश राज की नीति के अनुसार किसी भी सरकारी कर्मचारी को किसी के धार्मिक मामले में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है और भारतीय कानून की रु से भी प्रत्येक सम्प्रदाय के मनुष्यों को यह अधिकार है कि वह किसी अन्य सम्प्रदाय या राज्य के हस्तक्षेप बिना अपने धार्मिक रीति-रिवाजों का पालन निर्विघ्न-रुप से करें। दिगंबर जैन मुनियों का नग्नवेश कोई नई बात नहीं है। प्राचीनकाल से जैनधर्म में उसकी मान्यता चली आई है और भारत के मुख्य धर्मों तथा राज्यों ने उसका सम्मान किया है, यह बात पूर्व पृष्ठों के अवलोकन से स्पष्ट है। इस अवस्था में दुनिया की कोई भी सरकार या व्यवस्था इस प्राचीन धार्मिक रिवाज को रोक नहीं सकती। जैन साधुओं का यह अधिकार

है कि वह सारे वस्त्रों का त्याग करें और गृहस्थों का यह हक है कि वे इस नियम को अपने साधुओं द्वारा निर्विघ्न पाले जाने के लिये व्यवस्था करें, जिसके बिना मोक्ष सुख मिलना दुर्लभ है।

इस विषय में यदि कानूनी नजीरों पर विचार किया जाय तो प्रगट होता है कि प्रिवी-कौन्सिल (Privy Council) ने सब ही सम्प्रदायों के मनुष्यों के लिये अपने धर्म सम्बन्धी जुलूसों को आम सड़कों पर निकालना जायज करार दिया है। निम्न उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं। प्रिवी कौन्सिल ने मन्जूर हसन बनाम मुहम्मदजमन के मुकदमें में तय किया है कि :-

"Persons of all sects are entitled to conduct religious processions through public streets, so that thay do not interfere with the ordinary use of such streets by the public and subject to such directions the Magistrate may lawfully give to prevent obstructions of the through fare or breaches of the public peace, and the worshippers in a mosque or temple, which abutted on a high road could not compel prccssionists to intermit their worship while passing the mosque or temple on the ground that there was a continuous worship there" (Manzur Hasan Vs Mohammad Zaman, 23 All Law journal, 179)

भावार्थ - "प्रत्येक सम्प्रदाय के मनुष्य अपने धार्मिक जुलूसों को आम रास्तों से ले जाने के अधिकारी हैं, बशर्ते कि उससे साधारण जनता को रास्ते के व्यवहार करने में दिक्कत न हो और मजिस्ट्रेट की उन सूचनाओं की पाबन्दी भी हो गई हो जो उसने रास्ते की रुकावट और अशान्ति न होने के लिये उपस्थित की हों। और किसी मस्जिद या मन्दिर में, जो रास्ते पर स्थित हो, पूजा करने वाले लोग जुलूस निकालने वालों को जबकि वह मन्दिर या मस्जिद के पास से निकले, मात्र इस कारण कि उस समय वहां पूजा हो रही है उन की जुलूसी पूजा को बन्द करने पर मजबूर नहीं कर सकते।"

इस सम्बन्ध में "पारथसारदी आयंगर बनाम चिन्हकृष्ण आयगार" की नजीर भी दृष्टव्य है। (Indian Law Report, Madras, Vol Vp 309) शूद्रम् चेट्टी बनाम महाराणी के मुकदमें में यही उसूल साफ शब्दों में इससे पहले भी स्वीकार किया जा चुका है। (ILR VI p 203) इस मुकदमें के फैसले में पृष्ठ 209 पर कहा गया है कि जुलूसों के सम्बन्ध में यह देखना चाहिये कि अगर वह धार्मिक हैं और धार्मिक अन्शों का ख्याल किया जाना जरूरी है, तो एक सम्प्रदाय के जुलूस को दूसरे सम्प्रदाय के पूज्य-स्थान के पास से न निकलने देना उसी तरह की सख्ती है जैसे कि जुलूस के निकलने के वक्त उपासना मन्दिर में पूजा बन्द कर देना।

मुकदमा सदागोपाचार्य बनाम रामाराव (I.L.R.VI p. 376) में भी यही राय जाहिर की गई है। इलाहाबाद ला जर्नल (भा 23 पृ 180) पर प्रिवी कौन्सिल के जज महोदय

ने लिखा है कि भारतवर्ष में ऐसे जुलूसों के जिनमें मज़हबी रसूम अदा की जाती है सरेराह निकलने के अधिकारों के सम्बन्ध में एक नज़ीर कायम करने की जरूरत मालूम होती है क्योंकि भारतवर्ष में आला अदालतों के फैसले इस विषय में एक दूसरे के खिलाफ है। सवाल यह है कि किसी धार्मिक जुलूस को मुनासिब व जरूरी विनय के साथ शाह-राह-आम से निकलने का अधिकार है ? मान्य जज महोदय इसका फैसला स्वीकृति में देते हैं अर्थात् लोगो को धार्मिक जुलूस आम-रास्तों से लेजाने का अधिकार है।"

मुकदमा शंकरसिंह बनाम सरकार कैसरे हिन्द (Al Law Journal Report 1929 pp 180-182) जेर-दफा 30 पुलिस एक्ट न 5 सन् 1861 में यह तजवीज़ हुआ कि तरतीब-व्यवस्था देने का मतलब मनाई नहीं है। मजिस्ट्रेट जिला की राय थी कि गाने-बजाने की मनाई सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस ने उस अधिकार से की थी जो उसे दफा 30 पुलिस - एक्ट की रु से मिला था कि किसी त्यौहार या रस्म के मौके पर जो गाने-बजाने आम-रास्तों पर किये जावें उनको किसी हद तक सीमितम करदे। मैं (जज हाई कोर्ट) मजिस्ट्रेट जिला की राय से सहमत नही हू कि शब्द व्यवस्था का भाव हर प्रकार के बाजे की मनाई है। व्यवस्था देने का अधिकार उसी मामले में दिया जाता है जिसका कोई अस्तित्व हो। किसी ऐसे कार्य के लिये जिसका अस्तित्व ही नहीं है, व्यवस्था देने की सूचना बिल्कुल व्यर्थ है। उदाहरणत. आने जाने की व्यवस्था के सम्बन्ध में सूचना से आने जाने के अधिकार का अस्तित्व सभवत अनुमान किया जायेगा। उसका अर्थ यह नही है कि पुलिस अफसरान किसी व्यक्ति को उसके घर मे बन्द रखने या उसका आना-जाना रोक देने के अधिकारी हैं।

दफा 31 पुलिस एक्ट की रु से पुलिस को आम रास्तों, सडकों, गलियों, घाटों आदि पर आने-जाने के सब ही स्थानों में शान्ति स्थिर रखने का अधिकार है। बनारस में इस अधिकार के अनुसार एक हुक्म जारी किया गया था कि खास सम्प्रदाय के लोग यात्रावालों (पडों) को, जो इस पवित्र नगर की यात्रा के लिये लोगों का पथ प्रदर्शन करते हैं, रेल्वे स्टेशन पर जाने की मनाई है। इस मुकदमें में हाई कोर्ट इलाहाबाद के योग्य जज महोदय ने तजवीज किया कि किसी स्थान पर शान्ति स्थिर रखने के अधिकारों के बल पर किसी खास सम्प्रदाय के लोगो को किसी खास जगह पर जाने की आम मुमानियत करने का सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस को अधिकार न था। इस तजवीज के कारण वही थे जो बमुकदमा सरकार बनाम किशन लाल में दिये गये है। शान्ति स्थिर रखने का भाव आदमियों को घरों में बन्द करने का नहीं है।[616]

यही विज्ञप्तिया दि जैन साधुओं से भी सम्बन्ध रखती है। वह चाहे अकेले निकले और चाहे जुलूस की शक्ल में, सरकारी अफसरों का कर्तव्य है कि उनके इस हक को न रोके। दिगम्बर जैन साधुगण सारे ब्रिटिश भारत और देशी रियासतो में स्वतन्त्रता से

---

616. NJ , pp 19-23

बराबर घूमते रहे हैं, कहीं कोई रोक टोक नहीं हुई और न इस सम्बन्ध में किसी को कोई शिकायत हुई। अतएव सरकारी अफसरों का तो यह मुख्य कर्तव्य है कि वे दिगम्बर मुनियों को अपना धर्म पालन करने में सहायता पहुंचावें। गत काल में जितने भी शासक यहां हुये उन्होंने यही किया, इसलिये अब इसके विरुद्ध ब्रिटिश शासक कोई भी बर्ताव करने के अधिकारी नहीं हैं। उनको तो जैनों का अपना धर्म निर्बाध पालने देना ही उचित है। ●

जिन राग-दोष त्यागा वह सतगुरु

जिन राग-दोष त्यागा, वह सतगुरु हमारा।।टेक।
तज राजऋद्ध तृणवत, निज काज सम्भारा।।१।।
रहता है वह वनखण्ड में, धरि ध्यान कुठारा।
जिन मोह महा तरु को, जड़मूल उखारा।।२।।
सर्वांग तज परिग्रह, दिक् अम्बर धारा।
अनन्त ज्ञान गुन समुद्र, चारित्र भण्डारा।।३।।
शुक्लाग्नि को प्रजाल के, बसु कानन जारा।
ऐसे गुरु को 'दौल' है, नमोऽस्तु हमारा।।४।।

[27]

दिगम्बरत्व और आधुनिक विद्वान्

"मनुष्य मात्र की आदर्श-स्थिति दिगम्बर ही है। मुझे स्वयं नग्नावस्था प्रिय है।"

– म. गांधी

संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष दिगम्बरत्व को मनुष्य के लिये प्राकृत सुसंगत और आवश्यक समझते हैं। भारत में दिगम्बरत्व का महत्व प्राचीन काल से माना जाता रहा है। किन्तु अब आधुनिक सभ्यता की लीलास्थली यूरोप में भी उसको महत्व दिया जा रहा है। प्राचीन यूनान-वासियों की तरह जर्मनी, फ्रान्स और इंग्लैण्ड आदि देशों के मनुष्य नंगे रहने में स्वास्थ्य और सदाचार की वृद्धि हुई मानते हैं। वस्तुत: बात भी यही है। दिगम्बरत्व यदि स्वास्थ्य और सदाचार का पोषक न हो तो सर्वज्ञ जैसे धर्मप्रवर्तक मोक्ष-मार्ग के साधनरूप उसका उपदेश ही क्यों देते ? मोक्ष को पाने के लिये अन्य आवश्यकताओं के साथ नंगा तन और नंगा मन होना भी एक मुख्य आवश्यकता है। श्रेष्ठ शरीर ही धर्म-साधन का मूल है और सदाचार धर्म की जान है। तथा यह स्पष्ट है कि दिगम्बरत्व श्रेष्ठ स्वस्थ शरीर और उत्कृष्ट सदाचार का उत्पादक है। अब भला कहिये वह परम-धर्म की आराधना के लिये क्यों न आवश्यक माना जाय आधुनिक सभ्य-संसार आज इस सत्य को जान गया है और वह उसका मनसा वाचा कर्मणा का कायल है।

यूरोप में आज सैकड़ों सभायें दिगम्बरत्व के प्रचार के लिये खुली हुई हैं जिनके हजारों सदस्य दिगंबर वेष में रहने का अभ्यास करते हैं। बेडल्ल स्कूल, पीटर्स फील्ड (हैम्पशायर) में बैरिस्टर-डाक्टर इंजिनियर, शिक्षक आदि उच्च शिक्षा प्राप्त महानुभाव दिगंबर वेष में रहना अपने लिये हितकर समझते हैं। इस स्कूल के मंत्री श्री बर्फोर्ड (Mr N F Barford) कहते हैं कि –

Next year, as I say, we shall be even more advanced, and in time people will get quite used to the idea of wearing no clothes at all in the open and will realise its enormous value to health, (Amrita Bazar Patrika, 8-8-31)

भाव यही है कि एक साल के अन्दर नंगे रहने की प्रथा विशेष उन्नत हो जायेगी और समयानुसार लोगों को खुले आम कपड़े पहनने की आवश्यकता नहीं रहेगी। उन्हें नंगे रहने से स्वास्थ्य के लिये जो अमित लाभ होगा वह तब ज्ञात होगा।

इस प्रकार संसार में जो सभ्यता पूज रही है उसकी यह स्पष्ट घोषणा है कि मनुष्य जाति को स्वस्थ रखने के लिये वस्त्रों की तिलाजलि देनी पड़ेगी। नग्नता रोगियों के लिये ही केवल एक महान् औषधि नहीं है, बल्कि स्वस्थ जीवों के लिए भी अत्यन्त आवश्यक है। स्विटजरलैंड के नगर लेयसन (Leysen) निवासी डा रौलियर (Dr. rollier) ने केवल नग्नचिकित्सा द्वारा ही अनेक रोगियों को आरोग्यता प्रदान कर जगत में हलचल मचा दी है। उनकी चिकित्सा प्रणाली का मुख्य अंग है स्वच्छ वायु अथवा धूप में नंगे रहना, नगे टहलना और नंगे दौड़ना। जगतविख्यात् ग्रथ इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में नग्नता का बड़ा भारी महत्व वर्णित है।[617] वास्तव में डाक्टरों का यह कहना कि जब से मनुष्य जाति वस्त्रों के लपेट में लिपटी है तब से ही सर्दी, जुकाम, क्षय आदि रोगों का प्रादुर्भाव हुआ है, कुछ सत्य-सा प्रतीत होता है। प्राचीन काल में लोग नगे रहने का महत्व जानते थे और दीर्घजीवी होते थे।

किन्तु दिगम्बरत्व स्वास्थ्य के साथ-साथ सदाचार का भी पोषक है। इस बात को भी आधुनिक विद्वानों ने अपने अनुभव से स्पष्ट कर दिया है। इस विषय में श्री ओलिवर हर्स्ट सा "The New Statesman and Nation" नामक पत्रिका में प्रकट करते हैं कि अन्तत अब समाज बाईबिल के पहिले अध्याय के महत्व को (जिसमें आदम और हव्वा के नगे रहने का जिकर है) समझने लगी है और नग्नता का भय अथवा झूठी लज्जा मन से दूर होती जा रही है। जरमनी भर में बीसों ऐसी सोसाइटिया कायम होगई हैं जिनमें मनुष्य पूर्ण नग्नावस्था में स्वच्छ वायु का उपयोग करते हुये नाना प्रकार के खेल खेलते हैं। वे नग्न रहना प्राकृतिक, पवित्र और सरल समझते हैं। शताब्दियों से जिसके लये उद्यम हो रहा था।, वह यही पवित्रता का आन्दोलन है। यह पवित्रता कैसी है ? इसको स्वय उनके निवास-स्थान गेलैन्ड (Gelande) के देखने से जाना जा सकता है, जबकि वहा सैकडों स्त्री पुरुष, बालक बालिकायें आनन्द मय स्वाधीनता का उपभोग करते दृष्टि पड़ें। ऐसे दृश्य के देखने से मन पर क्या असर पड़ता है, वह बताया नहीं जा सकता। जिस प्राकर कोई मैला कुचेला आदमी स्नान करके स्वच्छ दिखाई दे, ठीक उसी तरह यह दृश्य सर्व प्रकार के सूक्ष्म अंतरंग-विषयों से शून्य दिखाई पड़ेगा। ऐसे पवित्र मानवों के सामने जो वस्त्रधारी होगा वह लज्जा को प्राप्त हो जायेगा। ऐसे आनन्दमय वातारण में ताजी हवा और धूप का जो प्रभाव शरीर पर पड़ता है उसको सर्वसाधारण अच्छी तरह जान सकते हैं, परन्तु जो मानसिक तथा आत्मीक लाभ होता है, वह विचार के बाहर है। यह क्रान्ति दिनों दिन बढ़ रही है और कभी अवनत नहीं हो सकती। मानवों की उन्नति के लिये यह सर्वोत्कृष्ट भेंट जर्मनी ससार को देगा, जैसे उसने आपेक्षिक-सिद्धात उसे अर्पण किया है। बर्लिन में जो अभी इन सोसाइटियों की सभा हुई थी उसमे भिन्न-भिन्न नगरो के 3000 सदस्य शरीक हुये थे। उसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों और राष्ट्रीय कौन्सिल के मेम्बरों ने अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ देखा था। उन स्त्रियों के भाव उसे देखकर बिल्कुल बदल

---

617 दिमुनि , भूमिका, पृ 'ख'

गये। नग्नता का विरोध करने के लिये कोई हेतु नहीं है, जिस पर वह टिक सके। जो इसका विरोध करता है, वह स्वयं अपने भावों की गन्दगी प्रगट करता है। किन्तु यदि वह इन लोगों के निवास स्थान को गौर से देखे तो उसे अपना विरोध छोड़ देना होगा। वह देखेगा कि सैकड़ों स्त्री-पुरुषों-माता, पिता और बच्चों ने कैसी पवित्रता प्राप्त करली है।[618]

अतएव पाश्चात्य विद्वानों की अनुभव पूर्ण गवेषणा से दिगम्बरत्व का महत्व स्पष्ट है। दिगम्बरत्व मनुष्य की आदर्श स्थिति है और वह धर्म मार्ग में उपादेय है, यह पहले भी लिखा जा चुका है। स्वास्थ्य और सदाचार के पोषक नियम का वैज्ञानिक धर्म में आदर होना स्वाभाविक है। जैनधर्म एक धर्म विज्ञान है और वह दिगम्बरत्व के सिद्धान्त का प्रचारक अनादि से रहा है। उसके साधु इस प्राकृत वेष में शील धर्म के उत्कट पालक और प्रचारक तथा इन्द्रियजयी योगी रहे हैं, जिनके सम्मुख सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य और सिकन्दर महान् जैसे शासक नतमस्तक हुये थे और जिन्होंने सदा ही लोक का कल्याण किया, ऐसे ही दिगम्बर मुनियों के संसर्ग में आये हुये अथवा मुनिधर्म से परिचित आधुनिक विद्वान् भी आज इन तपोधन दिगम्बर मुनियों के चारित्र से अत्यन्त प्रभावित हुये हैं। वे उन्हें राष्ट्र की बहुमूल्य वस्तु समझते हैं। देखिये साहित्याचार्य श्रीकन्नोमल जी एम.ए. जज उनके विषय में लिखते हैं कि "मैं जैन नहीं हू, पर मुझे जैन साधुओं और गृहस्थों से मिलने का बहुत अवसर मिला है। जैनसाधुओं के विषय में बिना किसी सकोच के कह सकता हू कि उनमें शायद ही कोई ऐसा साधु हो, जो अपने प्राचीन पवित्र आदर्श से गिरा हो। मैंने तो जितने साधु देखे उनसे मिलने पर चित्त में यही प्रभाव पड़ा कि वे धर्म, त्याग, अहिंसा तथा सदुपदेश की मूर्ति हैं। उनसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता होती है।[619] बगाली विद्वान श्री बरदाकान्त मुख्योपाध्याय एम ए इस विषय में कहते हैं -[620]

"चौदह आभ्यन्तरिक और दशवाहय परिग्रह परित्याग करने से निर्ग्रन्थ होते हैं। जब वे अपनी नग्नावस्था को विस्मृत हो जाते हैं तब ही भवसिन्धु से पार हो सकते हैं। (उनकी) नग्नावस्था और नग्न मूर्तिपूजा उनका प्राचीनत्व सप्रमाण सिद्ध करती है, क्योंकि मनुष्य आदिम अवस्था में नग्न थे।"

महाराष्ट्रीय विद्वान् श्री वासुदेव गोविन्द आपटे बी ए ने एक व्याख्यान में कहा था कि "जैनशास्त्रों में जो यतिधर्म कहा गया है वह अत्यन्त उत्कृष्ट है, इसमें कुछ भी शका नहीं है।"[621] प्रो डा शेषागिरि राव, एम ए पी एच डी बताते हैं कि -[622]

618 जैमि , वर्ष ३३ पृ ७१२
619 दिमु, पृ २३
620 जैम , पृ. १४१
621 जैम , पृ ४७
622 SSIJ , pt. II. p 30

"(The Jaina) faith helped towards the formation of good and great character helpful to the progress of Culture and humanity. The leading exponents of that faith continued to live such lives of hardy discipline and spiritual culture etc."

भावार्थ - "जैनधर्म संस्कृति और मानवसमाज की उन्नति के लिये उत्कृष्ट और महान् चारित्र को निर्माण कराने में सहायक रहा है। इस धर्म के आचार्य सदा की भांति तपश्चरण और आत्मविकास का उन्नत जीवन व्यतीत करते रहे।"

ईसाई मिशनरी ए.डुबोई सा. ने दिगम्बर मुनियों के सम्बन्ध में कहा था कि :-

"सबसे उच्चपद जो कि मनुष्य धारण कर सकता है वह दिगम्बर मुनि का पद है। इस अवस्था में मनुष्य साधारण मनुष्य न रहकर अपने ध्यान के बल से परमात्मा का मानो अंश हो जाता है।.. .जब मनुष्य निर्वाणी (दिगम्बर) साधु हो जाता है तब उसको इस संसार से कुछ प्रयोजन नहीं रहता और वह पुण्य-पाप, नेकी-बदी को एक ही दृष्टि से देखता है-उसको संसार की इच्छायें तथा तृष्णायें नहीं उत्पन्न होती हैं। न वह किसी से राग और न द्वेष करता है। वह बिना दुख मालूम किये सर्व प्रकार के उपसर्गों को सहन कर सकता है। .. अपने आत्मिक भावों में जो भी जा हो उसको क्यों इस संसार की और उसकी निस्सार क्रियायों की चिन्ता होगी।[623]

एक अन्य महिला मिशनरी श्री स्टीवेन्सन ने अपने ग्रंथ "हार्ट आव जेनीज्म" में लिखा है कि -

"Being rid of clothes one is also rid of a lot of other worries. no water is needed in which to wash them Our knowledge of good and evil, our knowledge of nakedness keeps us away from salvation. To obtain it we must forget nakedness. The Jain Nirgranthas have forgot all knowledge of good and evil Why should they require clothes to hide their nakedness ?" (Heart of Jainism, p 35)

भावार्थ - "वस्त्रों की झंझट से छूटना, हजारों अन्य झझटों से छूटना है। कपड़े धोने के लिये एक दिगम्बर वेषी को पानी की जरूरत नहीं पड़ती। वस्तुत. पापपुण्य का भान ही नग्नता का ध्यान ही मनुष्य को मुक्त नहीं होने देता। मुक्ति पाने के लिये मनुष्य को नग्नता का ध्यान भुलादेना चाहिये। जैन निर्ग्रन्थों ने पापपुण्य के भान को भुला दिया है। भला उन्हें अपनी नग्नता छिपाने के लिये वस्त्रों की क्या जरूरत ?"

---

623 जैन., पृ १०४

सन् 1927 में जब लखनऊ में दिगम्बर मुनिसंघ पहुंचा तो श्री अल्फ्रेड जेकबशा (Alfred Jacob Shaw) नामक एक ईसाई विद्वान् ने उसके दर्शन किये थे। वह लिखते हैं कि प्राचीन पुस्तकों में सम्मेदशिखिर पर दिगम्बर मुनियों के ध्यान करने बाबत पढ़ा जरूर था लेकिन ऐसे साधुओं को देखने का अवसर अजिताश्रम में ही मिला। वहां चार दिगम्बर मुनि ध्यान और तपस्या में लीन थे। आगसी जलती हुई छत पर बिना किसी क्लेश के वह ध्यान कर रहे थे। उनसे पूछा तो उन्होंने कहा कि हम परमात्मस्वरूप आत्मा के ध्यान में लीन रहते हैं। हमें बाहरी दुनिया की बातों और दुःख सुख से क्या मतलब ? यद्यपि मैं पक्का ईसाई हूं पर तो भी मैं कहूंगा कि इन साधुओं का सम्मान हर सम्प्रदाय के मनुष्यों को करना चाहिये। उन्होंने संसार के सभी सम्बन्धों को त्याग दिया है और एक मात्र मोक्ष की साधना में लीन हैं।"[624]

सचमुच इन विद्वान् को उक्त कथन दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनियों की महिमा का स्वतः द्योतक है। यदि विचार शील पाठक तनिक इस विषय पर गम्भीर विचार करेंगे तो वह भी नग्नता के महत्व और नग्न साधुओं के स्वरूप को मोक्ष प्राप्ति के लिये आवश्यक जान जायेंगे। कविवर वृन्दावन के शब्द स्वतः उनके हृदय से निकल पड़ेंगे -

"चतुर नगन मुनि दरसत,
उमग उर सरसत।
थुतिथुति करि मन हरसत,
तरल नयन जल बरसत।।"

624. JG. XXIII p. 139

उपसंहार ।

वाह्यो ग्रन्थोऽङ्गमक्षाणामांतरो विषयैषिता ।
निर्मोहस्तत्र निर्ग्रन्थः पांथः शिवपुरेऽर्थतः ।। - कवि आशाधर[625]

"यह शरीर वाह्य परिग्रह है और स्पर्शनादि इन्द्रियों के विषयों में अभिलाषा रखना अन्तरंग परिग्रह है। जो साधु इन दोनों परिग्रहों में ममत्व-परिणाम नहीं रखता है, परमार्थ से वही परिग्रह-रहित गिना जाता है। तथा वही निर्वाण नगर व मोक्ष में पहुंचने के लिये पाथ अर्थात् नित्य गमन करने वाला माना जाता है। इसका कारण यह है कि मोक्षमार्ग में निरतर गमन करने की सामर्थ्य एक मात्र यथाजात-रूपधारी निर्गन्थ ही के है। जो मनुष्य शरीर-रक्षा और विषय कषायों की चिंताओं में फसकर पराधीन बना हुआ है, भला वह साधु पद को कैसे धारण कर सकता है ? और जब दिगम्बर वेष को धारण करके वह साधु नही हो सकता तो फिर उसका निरन्तर मोक्षमार्ग पर गमन करना अथवा मोक्ष-पद को पालेना कैसे सभव है ? इसीलिये दिगम्बरत्व को महत्व देकर मुमुक्षु शरीर से नाता तोड लेते हैं और नगे तन तथा नंगे मन होकर आत्म-स्वातत्र्य को पा लेते है। शास्वत-सुख को दिलाने वाला यही एक राजमार्ग है और इसका उपदेश प्राय ससार के सबही मुख्य-मुख्य मत प्रवर्तकों ने किया था।

मनोविज्ञान की दृष्टि से जरा इस प्रश्न पर विचार कीजिये और फिर देखिये दिगम्बरत्व की महिमा। जिसका मन शरीर में अटका हुआ है, जो लज्जा के बन्धन मे पडा हुआ है और जो साधु वेष को धारण कर के भी साधुता का नही पा पाया है, वह दिगम्बरत्व के महत्व को क्या जाने ? मन की शुद्धि - भावों की विशुद्धता ही मुमुक्षु क लिये आत्मोन्नति का कारण है और वस्तुत वही साक्षात् मोक्ष को दिलाने वाली है। किन्तु मन की यह विशुद्धता क्या बनावट और सजावट में नसीब हो सकती है ? वस्त्रादि परिग्रह के मोह में अटका हुआ प्राणी भला कैसे निग्रन्थ पद को पा सकता है ? इसीलिये ससार के तत्ववेताओं ने हमेशा दिगम्बरत्व का प्रतिपादन किया है। भगवान ऋषभदेव के निकट मे प्रचार में आकर यह महत सिद्धान्त आज तक बराबर मुमुक्षुओं का आत्मकल्याण करता आ रहा है और जब तक मुमुक्षुओं का अस्तित्व रहेगा बराबर वह कल्याण करता रहेगा।

दिगम्बरत्व मनुष्य को रंक से राव बना देता है। उसको पाकर मनुष्य देवता हो जाता है। लेकिन दिगम्बरत्व खाली नंगा-तन नहीं है। वह नगे होने से कुछ अधिक है। नगे तो पशु भी हैं पर उन्हें कोई नहीं पूजता ? इसका कारण है। वह यह कि मानव जगत जानता है कि पशुओं को अपने शरीर ढकने और विवेक से काम लेने की तमीज नही है। पशुओं ने

---

625 सागार, पृ. ५१३

विषय विकार पर भी विजय नहीं पाई है। इसके विपरीत दिगंबर-मुनि के सम्बन्ध में उसकी धारणा है और ठीक धारणा है जैसे कि पूर्व पृष्ठों में हम निर्दिष्ट कर चुके हैं कि वे साधु तन से ही नंगे नहीं होते बल्कि उनका मन भी विषयविकारों से नंगा है। दिगम्बरत्व का रहस्य उसके आभ्यन्तर रूप में गर्भित है। इस रहस्य को समझकर ही मुमुक्षु दिगम्बर वेष को धारण करके विकार विवर्जित होने का सबूत देते हैं। और आत्मकल्याण करते हुये जगत के लोगों का हित साधते हैं। श्री ऋषभदेव दिगंबर मुनि ही थे जिन्होंने संसार को सभ्यता और धर्म का पाठ पढ़ाया। श्री सिंहनन्दि आचार्य दिगम्बर वेष में ही विचरे थे जिन्होंने गंगवंश की स्थापना कराई और उन क्षत्रियों को देश तथा धर्म का रक्षक बनाया। कल्याणकीर्ति आदि मुनिगण नंगे साधु ही थे जिन्होंने सिकन्दर महान् जैसे विदेशियों के मन को मोह लिया था और उन्हें भारत भक्त बनाया था। वे दिगम्बर ऋषि ही थे जिन्होंने अपने तत्वज्ञान का सिक्का यूनानियों के दिलों पर जमा दिया था और उन्हें बाद में निग्रहस्थान को पहुंचा दिया था। श्री वादिराज और वासवचन्द्र जैसे दिगम्बर मुनि धीर-वीरता के आगार थे कि उन्होंने रणांगण में जाकर योद्धाओं को धर्म का स्वरूप समझाया था। और श्री समन्तभद्राचार्य दिगम्बर साधु ही थे जिन्होंने सारे देश में विहार करके ज्ञान-सूर्य को प्रकट किया था। सम्राट् चन्द्रगुप्त, सम्राट अमोघवर्ष प्रभृति महिमाशाली नर-रत्न अपनी अतुल राज-लक्ष्मी को लात मारकर दिगम्बर ऋषि हुये थे। ये सब उदाहरण दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनियों के महत्व और गौरव को प्रकट करते हैं। दिगम्बर मुनियों के मूलगुणों की सख्या-परिमाण प्रस्तुत परिच्छेदों में ओत-प्रोत दिगम्बर गौरव का बखान है। सचमुच दिगम्बर मुनि, श्रीशिवव्रतलाल वर्म्मन् के शब्दों में[626] "धर्म-कर्म की झलकती हुई प्रकाशमान् मूर्तिया है। वे विशाल हृदय और अथाह समुन्दर हैं जिसमें मानवी हितकामना की लहरें जोर शोर से उठती रहती हैं। और सिर्फ मनुष्य ही क्यों ? उन्होंने संसार के प्राणी मात्र की भलाई के लिये सब का त्याग किया। प्राणीहिंसा को रोकने के लिये अपनी हस्ती को मिटा दिया। ये दुनिया के जबरदस्त रिफार्मर, जबरदस्त उपकारी और बड़े ऊंचें दर्जे के वक्ता तथा प्रचारक हुये हैं। ये हमारे राष्ट्रीय इतिहास के कीमती रत्न हैं। इनमें त्याग, वैराग्य और धर्म का कमाल-सब कुछ मिलता है। ये जिन हैं, जिन्होंने मोहमाया को और मन और काया को जीत लिया। साधुओं की नग्नता देखकर भला क्यों नाक-भौं सकोड़ते हों ? उनके भावों को क्यों नहीं देखते ? सिद्धांत यह है कि आत्मा को शारीरिक बन्धन से और ताउल्लुकात की पोशिश से आजाद करके बिल्कुल नगा कर लिया जाय, जिससे उसका निजरूप देखने में आवे।" यह वजह है इन साधुओं के जाहिरदारी के रस्मोरिवाज से परे रहने की। यह ऐब की बात क्या है ? ईश्वर-कुटी में रहने वालों को अपना जैसा आदमी समझा जाय, तो यह गलती है या नहीं ? इस लिये आओ सब मिलकर राष्ट्र और लोक के कल्याण के लिये स्पष्ट घोषणा करो और कविवर वृन्दावन की तान में तान मिला कर कहो- 'सत्यपन्थ निर्ग्रंथ दिगम्बर"

---

626. जैन , पृ ३-५

परिशिष्ट

तुर्किस्तान के मुसलमानों में नग्नत्व आदर की दृष्टि से देखा जाता है, यह बात पहले लिखी जा चुकि है। मिस लुसी गार्नेअ की पुस्तक "Mysticism & Magic in Turkey" के अध्ययन से प्रगट है कि "पैगम्बर सा. ने एक रोज मुरीदों के सत्य और मारफत की बातें अली सा. को बता दी और कह दिया कि वह किसी को बतायें नहीं। इस घटना से ४० दिन तक तो अली सा. उस गुप्त संदेश को छुपाये रखे किन्तु फिर उसको दिल में छुपाये रखना असम्भव जानकर वह जंगल को भाग गये (पृष्ट ११०)"। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि मुहम्मद सा. ने राजे-मारफत अर्थात् योग की बातें बताई थी, जिनको बाद में सूफि दरवेशों ने उन्नत बनाया था। इन दरवेशों में "अजालुलीब" और "अब्दाल" श्रेणी के फकीर बिल्कुल नंगे रहते हैं। (मि. जे.पी. ब्राउन नामक साहब को एक दरवेश मित्र ने खालिफअली की जियारतगाह में मिले हुए एक "अजालुलीब" दरवेश का हाल कहा था।) उसका नाम जमालुद्दीन कूफिय था। उसका शरीर मझोले कदका था। और वह बिल्कुल नंगा (Perfectly naked) था। उसके बाल और दाढ़ी छोटे थे और शरीर कमजोर था। उसकी उम्र लगभग ४०-५० वर्ष की थी (पृ. ३६)। इन दरवेशों के संयम की ऐसी प्रसिद्धि है कि देश में चाहे कहीं बेरोकटोक घूमते हैं - कभी अर्द्धनग्न और कभी पूरे नंगे वे हो जाते हैं। जितने ही वह अद्भुत दिखते हैं उतने ही अधिक पवित्र और नेक वे गिने जाते हैं।

(The result of this reputation for sanctity enjoyed by Abdals is that they are allowed to wander at large over the country, sometimes half-clad, sometimes completely naked) वे अपने ज्ञान का प्रयोग खूब करते हैं। घर और साथियों से उन्हें मोह नहीं होता। वे मैदानों और पहाड़ों में जा रमते हैं। वहाँ वनफलों पर गुजरान करते हैं। जंगल के खूंखार जानवरों पर वे अपने अध्यात्मबल से अधिकार जमा लेते हैं। सारांशतः तुर्कीस्तान में वह नंगे दरवेश प्रसिद्ध और पूज्य माने जाते हैं।

यूरोप में नंगे रहने का रिवाज दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। जरमनी में इस की खूब वृद्धि है। अब लोग इस आन्दोलन को एक विशेष उन्नत जीवन के लिए आवश्यक समझने लगे है। देखिये, २ फरवीर के "स्टेट्समैन" अखबार में यह ही बात कही गई है -

"Germany is at present challenging the traditional view that clothes are requisite for health and virtue. The habit of wearing only the sun and air at exercise is growing and the "Nudist" movement at first laughed at and blushed at else where, is now seriously studied as probably the way to a saner morality ' - The Statesman, 2 2 32

भारतवर्ष में नग्न रहने का महत्व बहुत पहले ही समझा जा चुका है। विदेशों में अब वही बात दुहराई जा रही है।
